पूर्व मध्ययुगीन धार्मिक आस्थाएं

एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

पूर्व मध्ययुगीन धार्मिक आस्थाएं

एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ॰ शरद पगारे

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
34, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-3

ISBN 81-214 0082 1

The publication of the thesis was financially supported by the Indian Council of Historical Research and the responsibility for the facts stated, opinions expressed or conclusions reached is entirely that of the author and Indian Council of Historical Research accepts no responsibility for them

मूल्य · 80 00

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण 1987 / © डॉ० शरद पगारे / कला भारती, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 में मुद्रित। [459 1 08 187/N]

PURVA MADHYAYUGEEN DHARMIK ASTHAYEN
Ek Aitihasik Sarvekshan (650 to 1150 A D) by Dr Sharad Pagare
Price Rs 80 00

बनाया मुझे लेखक जिन्होने
और
कृपा से जिनकी
पाया जीवन इस शोध-प्रबध ने
उन / परम श्रद्धेय
श्री बी० एन० लुणिया जी को
सादर समर्पित

अपनी बात

प्राचीनतम काल से ही, भारत मे धर्म की भूमिका प्रधान रही है। वह इस देश की सभ्यता-सस्कृति ही नही वरन जीवन पद्धति की भी आधार शिला रहा है। धर्म की सामाजिक प्रतिबद्धता, सास्कृतिक चेतना और दार्शनिक रहस्यवादिता अनेक देशो के विद्वानो, धर्म के अध्येताओ और जिज्ञासुओ के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। एक ओर जहा उसकी उपस्थिति विवादास्पद रही है, वही दूसरी ओर उसने दिशा-निर्देश देने और जनसाधारण के रोजमर्रा के जीवन को नियमित एव अनुशासित करने का काम भी किया है। डॉ० राधाकृष्णन का यह मत समीचीन है कि, "धर्म को अकादमिक भिन्नता के रूप में ही स्वीकारा नही जा सकता। वह तो जीवन की एक शैली अथवा अनुभव है। वह दर्शन की प्रकृति के परिज्ञान अथवा यथार्थता की अनुभूति है। धर्मस्व का एक निश्चित बिंदु है। वह स्वत सिद्ध है, और कुछ नही। यद्यपि सामान्यतया उसमे बौद्धिक दृष्टिकोण, सौंदर्य परक लालित्य और नैतिक मूल्यो का मिश्रण भी है।" (हिंदू व्यू आफ लाइफ)

अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे धर्म की रहस्यवादिता, दार्शनिक श्रेष्ठता, कलात्मक उपलब्धियों और नैतिक एव व्यावहारिक आचारवादी रूप ने स्पृहणीय प्रतिमान कायम किए हैं। साहित्य समेत समस्त कलाए धर्म की चेरी रही हैं। धर्म का उत्कृष्ट एव उदात्त रूप जहा हमे अभिभूत करता है, वही धार्मिक विग्रह, धर्म के नाम पर किये जानेवाले अत्याचार एव शोषण की कथाए वितृष्णा से भर देती हैं। इन धार्मिक त्रासदियो ने फ्रेंच दार्शनिक हॉलबेक को इतना दुखी किया कि उसे कहना पडा, "धर्म ने इस ससार को आसुओ की घाटी मे बदल दिया है।" इसका मुख्य कारण एक ही धर्म का अनेक मत मतातरो मे बटना और कई धर्म-सप्रदायो का उद्भव एव प्रसार है। भारतीय सदर्भों मे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ससार के अनेक धर्म-सप्रदायो और उनकी उप शाखाओ ने इस देश मे अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। विश्व के विभिन्न देशो म जितने धर्म एव सप्रदाय हैं, उन सभी की शाखाए तो भारत मे हैं, यहा तक कि साम्यवादी देशो की ईश्वर एव धर्म

की नकारात्मकता और पश्चिमी राष्ट्रो के आधुनिक भौतिकतावाद के अनुयायियो की सख्या भी इस देश मे कम नही है। इसके विपरीत इस देश मे जितने धर्म-सप्रदाय हैं, उनमे से अनेक अन्य देशो मे नही है। इसने भारत को विभिन्न धर्म-सप्रदायो का मिलन तीर्थ मे बदल दिया है। वह धर्मों का सग्रहालय बन गया है। इसने एक विविधता प्रदान की है।

भारत की यह विशेषता रही है कि उसने सभी धर्म सप्रदायो और उनके सास्कृतिक अवदान को स्वीकार किया है। आदरपूर्वक उन्हे अगीकार किया है। इसने एक मिश्रित सस्कृति और सभ्यता के विकास मे सहायता प्रदान की। विविधता मे एकता स्थापित हुई। हमारे महर्षियो ने 'उदार चरितानाम् वसुदैव कुटुबकम्' की शिक्षा दी। उन्होंने कामना की, "अद्वेषे द्यावा पृथिवी हुवेम्—यह पृथिवी और स्वर्ग ईर्षा, द्वेष, घृणा से रहित होवें—" (यजुर्वेद 12-21)। अपने इतिहास के प्रत्येक युग मे भारतीय धर्मों ने अनेक उतार-चढाव देखे। अनेक धक्के सहे, परतु उनकी निरतरता मे कमी नही आयी। इसका कारण उनकी ग्रहणशीलता, लचीलापन, समय और परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तनशीलता और सजीवनी शक्ति मे निहित है।

भारतीय धर्मों का अध्ययन अनेक स्तरो पर किया गया है। उनके विविध एव बहुआयामी स्वरूपो का अनेक कोणो से अध्ययन हुआ है। अनेक विद्वानो ने उनके दार्शनिक पक्षो का उद्घाटन किया। इनमे डॉ॰ राधाकृष्णन प्रमुख है। अन्यो ने उनके कला पक्ष, सामाजिक चेतना यहा तक कि साम्यवाद को दृष्टिगत रखते हुए उसकी भौतिकतावादी व्याख्या भी प्रस्तुत की। धर्मों का धार्मिक स्तर पर तो काफी शास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण हुआ है। परतु उनका ऐतिहासिक आधार पर अध्ययन नही के बराबर है। वर्तमान शोध-प्रबध इसी उद्देश्य से लिखा गया है। धर्मों का व्यापक ऐतिहासिक सर्वेक्षण कर एक कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया गया है। इतिहास के विभिन्न युगो म धर्म-सप्रदायो का स्वरूप कैसा, क्या था, उनका ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ, प्रस्तुत ग्रथ म उसका आकलन है।

विषय को जान बूझकर पूर्व मध्ययुग (सन् 650-1150 ईस्वी) शीर्षक मे बाधा गया है। मेरे विचार से इस काल तक आते-आते और इस युग मे धार्मिक आस्थाए एव आदर्श, कर्मकाड और रीति रिवाज तथा धार्मिक क्रिया-कलाप इतने परिपुष्ट हो गये थे कि आगामी सदियो मे किसी आमूल-चूल अथवा क्रातिकारी परिवर्तनो की सभावनाए कम ही रह गयी थी। मध्यकाल मे इस्लाम के प्रादुर्भाव के अलावा भारतीय धर्म-क्षेत्र मे कोई विशेष परिवर्तन दिखायी नही देता। सल्तनत एव मुगल काल मे मामूली परिवर्तनो के साथ उनका मूल रूप यथावत बना रहा। सुल्तानो और मुगल सम्राटो की धार्मिक विग्रह की नीतियो के बावजूद इन कालो के सतो, सूफियो, साहित्यकारो और पीर-फकीरो ने सास्कृतिक एकता, भाईचारे

और मानव प्रेम को बढावा देकर भारत की समन्वयवादी विचारधारा को मजबूत ही बनाया। महान मुगल सम्राट अकबर ने इसे वाणी दी, "अनेक धर्मो एव सप्रदायो की तुलना मे इस्लाम एक नया धर्म है। पर इन अलग-अलग रास्तो का एक ही उद्देश्य है—उस महान ईश्वर की प्राप्ति।"

विदेशी आक्रमणो के काल मे भारत के धर्म सप्रदायो ने कछुवे के समान अपने हाथ-पाव गर्दन अदर समेटकर सफलतापूर्वक अपना बचाव किया। अपने अस्तित्व की रक्षा कर ली। इतना ही नही उन्होने आगतुको के धार्मिक विश्वासो के साथ मैत्री, समन्वय और ताल मेल का प्रयास किया। आज भी यह मनोवृत्ति, बदलते परिवेशो के अनुरूप जारी है। विश्व के अनेक देश और स्वय भारत भी अनक धर्म-सप्रदायो के उत्थान पतन का साक्षी है। परतु कमोवेश हिंदू धर्म और उसके विविध सप्रदायो की गौरवशाली परपरा आज भी जस की-तस कायम है। पाच हजार से भी अधिक वर्षो से चली आ रही यह धार्मिक परपरा आज भी अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान है। विदेशी हमले और वैचारिक दबाव भी उसे डिगा नही पाये। प्रत्येक स्थिति के अनुरूप उसने अपने को ढाला। अनेक विदेशियो को अपने मे ऐसा आत्म-सात किया, उनके अस्तित्व के चिह्न भी आज दिखायी नही देते। आज भी उसकी यह जिजीविषा आश्चर्य एव आकर्षण का केंद्र है। शोध के लिए उसने एक विस्तृत क्षेत्र प्रदान कर रखा है। मैं भी उसी का शिकार बना।

कोई भी कृति गुरुजनो परिजनो मित्रो सहयोगियो एव सस्थाओ की सामयिक सहायता एव मार्गदर्शन के विना पूरी नही हो सकती। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर्तव्य है।

मैं अपने गुरु श्री बी० एन० लुणिया, जो कि शोध प्रबध के निर्देशक भी थे, का हृदय से कृतज्ञ हू। उनके मार्गदर्शन एव सतत प्रेरणा के कारण ही यह शोध ग्रथ पूरा कर सका। उनके प्रति आभार प्रकट करने हेतु मेरे पास शब्द नही है। और उन सभी का आभारी हू जिन्होने मुझे सहायता दी।

बबई, बडोदा, इदौर एव विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, एलफिस्टन कॉलेज, बबई, भारतीय विद्या भवन, बबई, शासकीय कला एव वाणिज्य महाविद्यालय, इदौर, हमीदिया कालेज, भोपाल, मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इदौर, शासकीय महाविद्यालय, रतलाम के पुस्तकालयो ने अमूल्य सहयोग प्रदान किया। इन सस्थाओ का कृतज्ञ हूं।

विशेषकर मैं भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद्, नयी दिल्ली का हृदय से आभारी हू जिनके अनुदान के कारण ही शोध-प्रबध प्रकाशित हो सका है।

मैं नेशनल पब्लिशिग हाउस, नयी दिल्ली के श्री सुरेंद्र मलिक एव श्री उपेंद्र झा को कैसे भूल सकता हू जिनके सौजन्य एव तत्परता से ग्रथ प्रकाशित हुआ।

और अत म मैं श्रीमती सुमन पगारे, अजली, सुशीम-सदीप को भी धन्यवाद

देता हू जिनके अनथक परिश्रम से समस्त सामग्री का सकलन, विश्लेषण एव व्यवस्थित रूप से एकीकरण किया जा सका।

ग्रथ की कमिया मेरी अपनी हैं। उसकी अच्छाइया विद्वानो की। अनेक विद्वानो, इतिहासविदो की कृतियो का मुक्त रूप से उपयोग करने के कारण मैं उनका चिर ऋणी रहूगा।

—शरद पगारे

'सुमन कुज',
110, स्नेह नगर,
नौलखा, इदौर (म० प्र०)

अनुक्रमणिका

अपनी बात vii

अध्याय 1

पूर्व मध्ययुगीन राजनीतिक दशा 1-32

हिमालय का प्रदेश—काश्मीर, नेपाल, आसाम अथवा कामरूप, हिंदुस्थान के राज्य अथवा सिंधु-गंगा का मैदान—सिंध, अफगानिस्तान और उत्तरी-पश्चिमी सीमांत, कन्नौज, मालवा, गुजरात, राजस्थान, जेजाकभुक्ति (बुंदेलखंड), बंगाल, दक्षिण—चालुक्य, राष्ट्रकूट, यादव, कदंब गंग-होयसाल, सुदूर दक्षिण—पल्लव, चोल, पांड्य, चेर।

अध्याय 2

धर्म का स्वरूप 33-47

धर्म की व्याख्या, तत्कालीन धर्म का स्वरूप, उप-समुदायों का विकास, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, धार्मिक अनुष्ठान, अहिंसा का प्रचार, तंत्रवाद, धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता।

अध्याय 3

शैव संप्रदाय 48-86

शैव संप्रदाय की उत्पत्ति, व्याख्या, वैदिक रुद्र, शिव-रुद्र समन्वय, गण-वाहन समन्वय, शिव के नाम, शिव आकृति, शैव धर्म का विकास, दक्षिण भारत में शैव धर्म, पूर्व मध्ययुग में शिव की लौकिकता, शैव-दर्शन, पाशुपत-लाकुलिश सिद्धांत, काश्मीरी शैव-दर्शन, वीर-शैव अथवा लिंगायत, शैव सिद्धांत, शिव-विशिष्टाद्वैत, कापालिक एवं कालमुख दर्शन, शैव दर्शन की विशेषताएं, शैव मतों का राज्याश्रय।

अध्याय 4

शाक्त सप्रदाय 87-108

शाक्त सप्रदाय की उत्पत्ति, व्याख्या, आर्य और शक्ति, शक्ति का आर्यीकरण, शक्ति के नाम, शक्ति का सहारात्मक रूप, शक्ति का रहस्यात्मक रूप, योनि-पूजा, ऐतिहासिक सर्वेक्षण, दक्षिण मे शक्ति-उपासना, पूर्व मध्ययुग मे शक्ति का लौकिक रूप, बलि-प्रथा, शक्ति के सप्रदाय, शाक्तो का सुधारवादी रूप, शक्ति मत का प्रभाव, शाक्त-दर्शन, शाक्त-मत को राज्याश्रय।

अध्याय 5

वैष्णव सप्रदाय 109-142

वैष्णव सप्रदाय के नाम, वैष्णव मत से अभिप्राय, वैष्णव मत की उत्पत्ति, विष्णु, वासुदेव और वैष्णव मत, कृष्ण और वैष्णव मत, गोपाल कृष्ण और वैष्णव मत, नारायण और वैष्णव मत, वासुदेव पौंड्रक और वैष्णव मत, वैष्णव धर्म की समन्वयता, अवतारवाद, लक्ष्मी और विष्णु, महाकाव्य और वैष्णव मत, वैष्णव मत और पुराण, वैष्णव मत के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा, वैष्णव-दर्शन, चतुर्व्यूहवाद एव पाचरात्र-दर्शन, गीता, रामानुज और भागवत दर्शन, वैष्णव मत को राज्याश्रय, दक्षिण भारत मे वैष्णव मत।

अध्याय 6

अन्य सप्रदाय एव लौकिक धर्म 143-173

बौद्ध धर्म, वज्रयान, काल चक्रयान, सहजयान, सिद्ध-सप्रदाय, जैन धर्म, अन्य देवी-देवताओ का पूजन, सूर्य-पूजन, गणेश-पूजन, नवग्रह-पूजन, अष्ट दिक्पाल, हनुमान-पूजन, अन्य देव, नाथ-सप्रदाय, धार्मिक दान-पुण्य, त्योहार-उत्सव-मेले, उपवास, तीर्थ-यात्राए।

अध्याय 7

भक्ति सप्रदाय 174-204

भक्ति की व्याख्या और स्वरूप, भक्ति के लक्षण, सातवी सदी के पूर्व भक्ति, आर्यो के पूर्व भक्ति का स्वरूप, पूर्व वैदिक काल मे भक्ति का स्वरूप, उपनिषद काल मे भक्ति, भक्ति और वैष्णव मत, महाकाव्य-काल मे भक्ति, भक्ति का ऐतिहासिक विकास, भक्ति और महायान

बौद्ध धर्म, भक्ति और जैन धर्म, शुग-सातवाहन काल मे भक्ति, भक्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व, भक्ति पर विदेशी प्रभाव, भक्ति की भारतीयता, बौद्ध धर्म का प्रभाव, भक्ति और जैन प्रभाव, भक्ति और मूर्ति पूजा, भक्ति और समाज सुधार, भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति और गीता, भक्ति को पूर्व मध्ययुगीन आचार्यों-सतो की देन, शैव-नायनार भक्त, वैष्णव-आलवार भक्त, दक्षिण भारत मे भक्ति के आचार्य।

अध्याय 8

धर्म का तत्कालीन सस्कृति पर प्रभाव 205-240

धर्म व शासन, धर्म व समाज, धर्म व अर्थ-व्यवस्था, धर्म व दर्शन, धर्म व कला, धार्मिक समन्वय एव सामजस्य।

आधार एव संदर्भ-ग्रंथ 241-255

पूर्व मध्ययुगीन धार्मिक आस्थाएं

एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

अध्याय 1

पूर्व मध्य युगीन राजनीतिक दशा

इतिहास का चक्र कभी भी स्थिर नही रहता। वह प्रगतिशील और परिवर्तनशील है, आगे बढता ही रहता है। समकालीन परिस्थितियो का वह सदैव आकलन और सक्लन, निस्पृह होकर करता है। पूर्व मध्य युग इसका अपवाद न था। सन् 647 ईस्वी म हर्ष की मृत्यु के साथ ही एक युग और एक ऐसी व्यवस्था की समाप्ति हो गयी जिसके अनर्गत भारत पिछली कई शताब्दियो तक शासित हुआ था।[1] आगामी सदियो मे भारतीय इतिहास ने एक मोड लिया। उन परिस्थितियो मे ऐसा होना अनिवार्य था। भारतीय जीवन की एक नयी प्रक्रिया प्रारभ हुई थी। अत आर० एस० आर० शर्मा[2] हर्ष की मृत्यु को एक युग परिवर्तनकारिणी घटना मानते है जहा से इतिहास के एक नये काल का प्रारभ हुआ था। यद्यपि हर्ष के बाद गुर्जर-प्रतीहार और गहडवाल राजाओ एव राष्ट्रकूटो ने हर्ष से भी बडे साम्राज्यो का निर्माण किया[3], परतु हर्ष का व्यक्तित्व, उसका प्रभाव तथा आदर उसके समकालीन राजा नरेशो पर इतना अधिक था कि वे उसे एक प्रकार से तत्कालीन राज्य-सघ का केद्र स्तभ मानते थे। भारत राजनीतिक रूप से एक था। 'सकल उत्तरापथनाथ' की पदवी से भूषित हर्ष को प्राचीन आर्य युग का अतिम सम्राट मानना अनुचित न होगा।[4]

इसमे सदेह नही कि हर्ष को अतिम हिंदू राजा मानना उचित नही है, क्योकि ललितादित्य मुक्तापीड, यशोवर्धन, ध्रुव, गोविद तृतीय तथा कृष्ण प्रथम ने तद्युगीन राजनीति पर काफी हद तक आधिपत्य जमाये रखा था। राजेंद्र चोल ने सा गगा के मुहाने से कुमारी अतरीप और बगाल की खाडी के पार के राज्यो को अपने अधीन ले लिया था।[5] इस काल के शासको ने दिग्विजय की प्राचीन परपरा को सक्रिय रखा। यद्यपि मौर्यों और गुप्तो की केंद्रीय शासन परपरा के दिन लद गये थे, फिर भी सभी राजवश उन्हे आदर्श मानकर उनका अनुसरण कर रहे थे।[5A]

इतिहास उन सकल सम्राटो की ही वदना करता है, जिन्होने देश को राजनीतिक एकसूत्रता से बांधा था। हर्ष के बाद की आगामी पाच शताब्दिया चद्रगुप्त,

अशोक[6] अथवा हर्ष के स्तर का एक भी सम्राट प्रयुक्त न कर सकी, जो संघर्षरत विरोधी तत्त्वो को एकबद्ध कर देश मे समान व्यवस्था की स्थापना कर पाता।[6A] इसके विपरीत समस्त भारत कई राज्यो मे बिखर गया। इन शताब्दियो में राजनीतिक दृष्टि से भारत एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। देश मे राजनीतिक अव्यवस्था और विकेंद्रीकरणवादी तत्त्व सक्रिय हो उठे थे। एक राज्य दूसरे से लड रहा था। बहुराज्य व्यवस्था (Multi-State System) ने देश मे जडें जमा ली थी।

विवरण की दृष्टि से भारत चार मुख्य राजनीतिक क्षेत्रो मे—(1) हिमालय का प्रदेश, (2) सिधु-गगा का मैदान। हिंदुस्तान, (3) दक्षिण, (4) दक्षिणी प्रायद्वीप मे विभक्त किया जा सकता है। इनमे से प्रत्येक भाग मे राज्यो का उत्थान-पतन हुआ।[7]

हिमालय का प्रदेश : हिमालय प्रदेश के राज्यो मे काश्मीर, नेपाल तथा आसाम प्रमुख थे। इन्होंने तद्युगीन भारतीय राजनीति व सैनिक गतिविधियो को प्रभावित किया था।

काश्मीर : काश्मीर[8] मडल के जिन राजवशो की सूची कल्हण ने दी है, उनमे गोनद वश को वह वहा का प्रथम राजवश मानता है। इसके बावन राजाओ ने 2268 वर्ष काश्मीर पर राज्य किया।[9] ऐतिहासिक दृष्टि से काश्मीर अशोक मौर्य के साम्राज्य का भाग था। उसने श्रीनगर बसा कर कई स्तूपो का निर्माण कराया।[10] अशोक के उत्तराधिकारी जालौक के समय मे भी काश्मीर मौर्य साम्राज्य का अग था।[11] कनिष्क व हुविष्क कुषाणो ने भी यहा राज्य किया।[12] पूर्व मध्य युग मे कार्कोट वश के राजाओ ने काश्मीर पर अधिकार जमाया। इस वश मे दुर्लभक का पुत्र ललितादित्य मुक्तापीड (सन् 724-760 ई०) सर्वाधिक शक्तिमान राजा था। अपनी दिग्विजय के अतर्गत उसने गगा-यमुना के मध्यवर्ती अतर्वेद मे अपना आतक जमाया।[13] उसने कान्यकुब्ज के यशोवर्मन को हराया।[14] उसने तुरुष्को को भी परास्त किया।[15] यदि 'राजतरगिणी' के मत को मान लें तो उसने अवती-कर्नाटक तक के प्रदेश को रौंद डाला।[16] ललितादित्य के पौत्र जयापीड ने अपने महान पूर्वज की परपरा को जारी रखा।[17] उसने गौड और कान्यकुब्ज नरेशो को हराया।[18] वह ललितादित्य के समान काव्यप्रेमी था। क्षीर, दामोदर गुप्त, भट्ट जैसे साहित्यविद उसकी राजसभा की शोभा थे। लबे समय तक शासन करने के बाद ब्राह्मण-षड्यत्र से वह मारा गया।[19] उसके बाद ललितापीड, समग्रामपीड (द्वितीय) जैसे दुर्बल शासक गद्दी पर बैठे।[20] इस काल मे उत्पलको का प्रभाव काश्मीर राजनीति मे बढ गया। उन्होंने कई कठपुतली शासको को गद्दी पर बैठाया।

अवतिवर्मन उत्पल वश का सस्थापक था। उसने कार्कोटो की अराजकता को दूर करने मे अपना अधिकाश समय लगाया। इस काम मे उसे अपने मत्री सुय्य का

सहयोग मिला।[21] उसने नहरें आदि बनवायी और कई निर्माणकारी कार्य किये। इसका लाभ उसके उत्तराधिकारी शकरवर्मन (सन् 883-902 ई०) को मिला। उसने दर्वमिसार और त्रिगर्त जीते। उसने गुर्जरराज अल्लखान को पराजित किया। काश्मीर राजनीति में दखल देनेवाले डामरो और उनके नेता सग्राम को भी उसने कुचला।[22A] उसके युद्धो के कारण राजकोष खाली हो गया। सन् 902 ई० मे उसकी हत्या कर दी गई।[23] उत्तरकालीन उत्पल शासक दुर्बल सिद्ध हुए। आगामी सैंतीस वर्षों मे कई शासक सिहासन पर बैठे। परतु वे सभी व उनके मत्री धन-लोलुप थे। जिन्होंने दुर्भिक्ष के काल मे अनाज ऊचे दामो मे बेचकर काफी धन कमाया।[24] सन् 939 मे इस वश के अतिम राजा शूरवर्मन द्वितीय के साथ ही इस राजकुल का पतन हो गया। यशस्कर ने काश्मीर मे शाति-स्थापना का प्रयत्न किया। उसने कई मठ काश्मीर में बनवाए। पर्वगुप्त की राय पर उसने अपने पुत्र समग्रामदेव को उत्तराधिकारी घोषित किया। परतु पर्वगुप्त ने उसकी हत्या कर गद्दी हड़प ली।[25] सन् 950 ई० मे उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र क्षेमगुप्त शासनारूढ हुआ। उसने लोहारवशी सिहराज की कन्या दिद्दा से विवाह किया। अत्यत महत्त्वा-काक्षिणी और चतुर होने से दिद्दा ने काश्मीर की राजनीति मे विशेष भाग लिया। सन् 958 ई० मे क्षेमगुप्त की मृत्यु के बाद दिद्दा अपने पुत्र अभिमन्यु की अभि-भाविका बनी। काश्मीर, राज भवन के षड्यत्र का शिकार हो गया। मत्री फाल्गुन और दिद्दा मे तनातनी हो गयी।[26] फाल्गुन को पदच्युत कर उसने यशोधर व उसके विद्रोही अनुयायियो को कुचला। सन् 980 म वह स्वय सिहासन पर बैठ गयी। अपने सहयोगी मातग की सहायता से उसने सन् 1003 ई० तक सफलतापूर्वक शासन किया।[27] मृत्यु के पूर्व उसने भाई, लोहारवशी विग्रहराज के पुत्र एव अपने भतीजे सग्रामराज को काश्मीर का राज्य दे दिया।[28]

सन् 1003-28 ई० तक सग्राम ने शासन किया। वह दुर्बल चरित्र का था। अब काश्मीर लोहार वश के अधीन चला गया। सग्राम, तुग को शासन सौंप, भोग-विलास म डूब गया। सन् 1004 के आसपास महमूद गजनवी ने शाही राजा त्रिलोचनपाल पर हमला किया तो तुग ने उसे सहायता दी।[29] लोहार वशी श्री हर्ष ने सन् 1089 से 1101 तक शासन किया। उसके शासन-काल म काश्मीर की राजनीति न कई उतार-चढाव देखे। उसने तुर्क सैनिको को अपना अगरक्षक बनाया। पहली बार मुसलमान काश्मीर घाटी मे पहुचे।[30] सन् 1172 ई० मे अतिम लोहार वशी नरेश वतिदेव की मृत्यु के साथ ही उस वश का अत हो गया। कालातर मे काश्मीर मुस्लिम आधिपत्य म चला गया।

डॉ० आर० सी० मजुमदार काश्मीर के इतिहास का विवेचन करते हुए लिखते हैं, "राजनैतिक विकास और बर्बर क्रूरता मे काश्मीरियो की तुलना यूरोपियनो से की जा सकती है, तथापि परिष्कृत सूचियो, सस्कृति और सभ्यता की निर्माणात्मक

प्रवृत्तियो मे उन्होने स्पृहणीय प्रगति कर ली थी। काश्मीर मे शिक्षा की अभूतपूर्व उन्नति हुई। उसे सार्वजनीन मान्यता मिली। धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे उल्लेखनीय काम हुए। सगीत, नृत्य और वास्तुकला के क्षेत्रो मे अनुकरणीय काम किये गये। यहा तक कि निकृष्ट राजाओ, सामतो और अधिकारियो ने भी मदिरो, मठो और प्रासादो का निर्माण जारी रखा।[30A] काश्मीर को यह सास्कृतिक विरासत प्राचीन परपराओ से मिली थी। कुषाण कालीन सास्कृतिक एव शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर वह आधारित थी।

नेपाल भारत और नेपाल के सबध भौगोलिक, सास्कृतिक और राजनैतिक स्तर पर अत्यत घनिष्ठ रहे हैं। इस देश का इतिहास पौराणिक गाथाओ मे उपलब्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से नेपाल मौर्य सम्राट अशोक के अधीन था। अपनी पुत्री चारुमती के साथ उसने नेपाल की यात्रा की थी। उन्होने ललितपाटन व देवपाटन नामक नगर बसाये थे।[31]

समुद्रगुप्त ने भी सभवत नेपाल जीता था।[32] नेपाल पुष्यभूतियो के प्रभाव मे भी रहा।[33] हर्ष का समकालीन नेपाली राजा अशवर्मन उसका करद था।[34] उसी के काल मे हर्ष सवत का यहा प्रवेश हुआ। कल्हण से विदित होता है कि ललितादित्य के पौत्र जयापीड का नेपाल नरेश अरिमडी से सघर्ष हुआ था।[35] सन् 755-97 के बीच नेपाल तिब्बत *खी स्तान-इड बसान के भी अधीन रहा।*[36]

पाल वश ने भी यहा कुछ समय तक अपना प्रभाव जमाया था।[37] चालुक्येश *विक्रमादित्य षष्ठ ने भी नेपाल जीता था।*[38] बारहवी शती के पूर्वार्द्ध मे तिरहुत के कर्णाट राजा नान्यदेव ने नेपाल पर अधिकार कर लिया था।[39] भारत-नेपाल के मध्य धार्मिक, सास्कृतिक और व्यापारिक सबध भी रहे। बौद्ध धर्म के पतन के बाद पूर्व मध्य युग मे नेपाल शैव हो गया।

आसाम अथवा कामरूप प्राचीन काल मे कामरूप के नाम से ज्ञात आसाम की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। पौराणिक नरक वश के शासक यहा राज्य करते थे।[40] इसी वश के भगदत्त ने महाभारत मे कौरवो का साथ दिया था। कामरूप शायद मौर्य साम्राज्यांतर्गत भी था। प्रयाग प्रशस्ति स्पष्ट ही उसे समुद्रगुप्त के करद राज्यो मे मानती है।[41] हर्ष के पूर्व सुस्थितवर्मन कामरूप का अधिपति था। इसे उत्तरकालीन गुप्त नरेश महासेन गुप्त ने परास्त किया था।[42] सुस्थितवर्मन का पुत्र भास्करवर्मन हर्ष का समकालीन व मित्र था। कर्ण सुवर्ण के शशाक के विरुद्ध उसने हर्ष से चिरकालीन मैत्री कर ली। वह कुमार राजा नाम से भी जाना जाता था।[43] हर्ष की मृत्यु के बाद इसने कन्नौज की राजनीति मे हस्तक्षेप किया। शशाक की मृत्यु के बाद कुमार राजा ने कर्ण-सुवर्ण पर अधिकार कर लिया।[44] निधनपुर लेखानुसार उसकी राजधानी कर्ण-सुवर्ण थी जहा उसने कई दान दिये।[45] उसकी *मृत्यु के पश्चात शालस्तभ राजवश ने यहा नवी सदी तक शासन किया।*[46] इसी

वश के श्री हर्ष ने आठवी सदी म गौड, कलिंग ओड्र (उडीसा) व कोशल जीता था।[47] सन् 829 ई० म यहा के हर्जरावर्मन ने 'महाराजाधिराज परमेश्वर-परम-भट्टारक' का विरद धारण किया था।[48] नवी शताब्दी के आसपास एक नये राजवश की यहा स्थापना हुई। यहा के एक शासक रत्नपाल ने ग्यारहवी सदी म गौडराज, चालुक्येश विक्रमादित्य षष्ठ तथा केरलेश को सत्रस्त किया था।[49] कालातर मे यह पालो व बाद मे मुस्लिम आधिपत्य मे चला गया। यहाँ बौद्ध धर्म की अपेक्षा वैदिक धर्म का जोर अधिक रहा। वैदिक मे भी शैव व विशेषकर शाक्तो ने आसाम को अपना केंद्र बनाया। कामाख्यादेवी को आराध्या मान जादू-टोने व गुह्य प्रथाओ का यहा जोर रहा।[49A]

हिंदुस्थान के राज्य अथवा सिंधु-गगा का मैदान

उत्तर म हिमालय तथा दक्षिण मे विंध्य की पर्वतमालाओ से घिरा क्षेत्र ही हिंदुस्तान कहलाता है। इस मैदानी इलाके म कई नदियो का जाल बिछा होने से यहा की जमीन उर्वर एव साम्राज्यो के निर्माण हेतु अधिक उपयोगी रही।

सिंध मुलतान से समुद्र तक सिंधु के निचले भाग का क्षेत्र सिंध कहलाता था। मौर्यकाल म सिंध अशोक साम्राज्य का अग था।[50] मेहरौली के चद्र स्तभ को चद्रगुप्त विक्रमादित्य का मान लें तो गुप्तो ने सप्त सिंधु को पार कर बाल्हीको को भी हराया था।[51] परतु डा० आर० सी० मजुमदार एव डा० ए० एस० अलतकर सिंध को गुप्त साम्राज्य के बाहर मानते हैं।[52] सिंध के इतिहास के बारे म वैसे भी कम सूचनाए मिलती है। हर्षकाल मे वहा एक शूद्र (Shuto-10) जाति का शासक था। वह ईमानदार और बौद्ध धर्म का आदर करने वाला था।[53] *प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन ने सिंध पर विजय की थी।*[54] *हर्ष की मृत्यु के बाद* सिंध स्वाधीन हो गया। यहा साहसी नामक राजा ने शासन किया। उसकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा से ब्राह्मण मत्री चच (छछ) ने विवाह कर सत्ता हथिया ली। उसके बाद चद्र व दाहिर सिंध के शासक बने।[55] पूर्व मध्य युग मे अरब आक्रमण के समय दाहिर शासन कर रहा था। चाचनामा से विदित होता है कि मुहम्मद बिन-कासिम ने सिंध को दाहिर से जीता। पूर्व मध्य युग मे सिंध म मुस्लिम शासन कायम हो गया।[56]

अफगानिस्तान और उत्तरी-पश्चिमी सीमात · भारत की सीमाए मौर्य साम्राज्य के काल म अफगानिस्तान तक फैल गयी थी।[57] पूर्व मध्य युग म मुसलमान लेखको ने इसे काबुल-जाबुल का राज्य कहा है। ऋषिक-तुषारो अथवा कुषाणो के वशज इस क्षेत्र म लबे समय तक राज्य करते रहे। समुद्रगुप्त के समय मे वे दवपुत्र शाहानुशाही कहलाते थे।[58] हर्ष काल म, ह्वेनसाग के अनुसार, यहा एक क्षत्रिय शासक था जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था।[59] पूर्व मध्य युग मे भी कुषाण

वंशी नरेश शाहीय नाम से शासन करते रहे। अलबरूनी इन्हें हिंदू तुर्क कहता है।[60] इसी वंश के जयपाल को, सन् 1003 ई०[61] में और उसके उत्तराधिकारी आनंदपाल को सन् 1008 ई० में सुलतान महमूद गजनवी ने परास्त किया।[62] यद्यपि इस समय उसे सीमांत के कई हिंदू राजाओं का सहयोग मिला पर वे महमूद की रणनीति के सामने टिक न पाये। संकटपूर्ण स्थिति में त्रिलोचनपाल सन् 1014 में गद्दी पर बैठा। महमूद की आंधी के सामने सन् 1021 में वह भी टिक न सका।[63] उसके उत्तराधिकारी भीमपाल ने सन् 1026 में महमूद का असफल सामना किया। उसके हारते ही अफगानिस्तान गजनवी साम्राज्य का अंग बन गया।

कन्नौज : हर्षवर्धन के कारण ही कन्नौज (कान्यकुब्ज) को भारत की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ था। परंतु हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद की शताब्दियों में उसे कई दुखांत नाटकों को देखने का दुर्भाग्य मिला। फिर भी उत्तर भारत का प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी शासक नेत्रों के उस ध्रुव तारे को जीत कर उस पर शासन करना चाहता था। ईसा के बाद की आठवीं नवीं सदी में उदीयमान राजकुलों के लिए राजनीति की धुरी कन्नौज था।[63A] सन् 672 ई० के लगभग मालवा-मगध के शासक आदित्यसेन ने इस संघर्ष में विजयी होकर कान्यकुब्ज पर अधिकार कर लिया।[64] यह सफलता क्षणिक थी। आठवीं सदी में यशोवर्धन ने, जो अपने को चंद्रवंशी कहता है, कन्नौज जीत लिया।

कुछ विद्वान इसे 'मध्य भारत का राजा' मानते हैं।[65] डा० राजबली पांडे के मत से उसके 'वर्मन' से वह मौखरी हो सकता है।[66] समकालीन साहित्यकार वाक्पति के 'गौडवहो' नामक प्राकृत काव्य में यशोवर्मन की विजयों का विस्तृत उल्लेख है।[67] उसकी विजयवाहिनी ने मगध (मगहनाथ), गौड और वंग को जीता।[38] परंतु वह स्वयं काश्मीर नरेश ललितादित्य के हाथों हारा।[69]

यशोवर्मन के दुर्बल उत्तराधिकारियों को 'आयुध वंश' ने सन् 770 ई० के लगभग उखाड़ फेंका। इस वंश के वज्रायुद्ध ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसने सन् 816 ई० तक शासन किया। उसके बाद इंद्रायुध राजा बना। उसके काल में पाल-राष्ट्रकूट कन्नौज नरेशों के बीच संघर्ष छिड़ गया। इसमें इंद्रायुध परास्त हुआ।[70] चक्रायुध को राजा बनाया गया। परंतु उसे राष्ट्रकूटेश गोविंद तृतीय के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा।[71] फलस्वरूप अव्यवस्था फैल गयी। प्रतीहारों ने लाभ उठाते हुए चक्रायुध को हटाकर कन्नौज में नये कुल की स्थापना की।[72]

नागभट्ट द्वितीय 'गुर्जर प्रतीहारान्वय' था।[73] अतः इन्हें विदेशी मूल का माना गया। परंतु ये स्वयं को अपने मूल पुरुष लक्ष्मण का वंशज मानते थे।[74] डा० राजबली पांडे इन्हें भारतीय व गुर्जर प्रदेश का वासी बतलाते हैं।[75] नागभट्ट के पिता वत्सराज ने अवंति जीता। नागभट्ट प्रथम ने शक्तिमान म्लेच्छों को हराकर

भडौच तक धावे मारे।[76] नागभट्ट द्वितीय ने इस काम को आगे बढाया। उसने आनर्त, मालव, तुरुष्क प्रात (सिंध का कुछ भाग) और कोशाबी के कुछ भाग जीते।[77] उसने 805-33 ई० के मध्य शासन किया।

सन् 836 ई० मे मिहिरभोज ने इस काम को आगे बढाया। उसने दक्षिण मे नर्मदा और सौराष्ट्र तक अपना प्रभाव फैलाया। सन् 867 मे उसने राष्ट्रकूट राज ध्रुव द्वितीय धारावर्ष को परास्त किया।[78] सन 875-881 के मध्य उसका राष्ट्र-कूटेश कृष्ण द्वितीय से भी सघर्ष चला। पर परिणाम अस्पष्ट रहा।[79] पूर्व मे बगाल नरेश देवपाल के कारण वह अपने साम्राज्य को उस ओर न फैला सका। उसके पुत्र महेद्रपाल ने सन् 885-910 तक शासन किया। अपने पिता के दबदबे को बनाये रखने मे उसने सफलता पायी। मगध, बिहार और उत्तर बगाल, कन्नौज राज्य मे मिला लिये गये। उसने राजशेखर जैसे साहित्यविद् को अपना सरक्षण दिया था। उसकी मृत्यु के साथ ही गृह कलह आरभ हो गया। भोज द्वितीय व महीपाल आपस मे लड पडे। भोज का साथ चेदि नरेश कोक्कल्लनदेव[80] ने और महीपाल का चदेल-राज हर्षदेव ने दिया।[81] अत मे महीपाल को सफलता मिली। परतु कन्नौज के प्रतीहारो को काफी हानि उठानी पडी। इस अव्यवस्था से लाभ उठाते हुए दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश इद्र तृतीय ने कन्नौज को लूटा। यह प्रयाग तक बढ आया। पालो ने भी लाभ उठाने का प्रयत्न किया परतु उसके लौट जाने के बाद अपनी विजय-यात्रा प्रारभ की। 'प्रचड-पाडव'[82] नामक ग्रथ के अनुसार उसने मुरल (नर्मदा प्रदेश), मेखल, कलिंग-केरल-कुतल-रमठ आदि जीते। इतिहासकार इसे सदिग्ध मानते हैं।

महीपाल (विनायक पाल) के पुत्र महेद्रपाल द्वितीय (सन् 944-948 ई०) ने यथास्थिति बनाये रखने का यथासभव प्रयत्न किया। परतु उसके उत्तराधिकारियो के काल मे चदेलो[83] के कारण प्रतीहारों का पतन शीघ्र होने लगा। गुजरात के चालुक्यों, जेजाकमुक्ति के चदेलो, डाहल के चेदि, मालवा के परमार तथा ग्वालि-यर-अजमेर के चाहमानो व राजस्थान के गुहिलो ने उसे आपस मे बाट लिया। महमूद के हमलो के समय कन्नौज मे राज्यपाल था। उसने जयपाल व आनदपाल को सहायता दी थी।[84] सन् 1018 ई० मे महमूद ने कन्नौज पर हमला किया। राज्यपाल डरकर भाग गया।[85] उसकी इस दुर्बलता से नाराज हो गड ने उसे हटाकर उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को राजा बनाया। इस कुल के अतिम राजा यशपाल के बाद गहडवालो ने कन्नौज जीत लिया।

गहडवालो को राष्ट्रकूटो या राठौरों की शाखा माना जाता है। पर डा० राजबली पाडे[86] इन्हे प्रतिष्ठान या कोशाबी के चद्रवशियो की संतान मानते हैं। मिर्जापुर की गुहाओ में वास करने से ये गहडवाल (गुहावाले) कहाये। इस वश के चद्रदेव ने गोपाल को परास्त कर अपने वश की नीव डाली।[87] इस वश के गोविंद-

चद्र (सन् 1114-1154) ने सर्वाधिक कीर्ति पायी। उसने पालो को हराया व पूर्वी मालवा का कुछ भाग जीता।[88] उसने कलचुरियो व चदेलो से भी युद्ध किया। उसका राज्य दिल्ली से मुगेर तक और हिमालय की तराई से यमुना के दक्षिण तक विस्तृत था।[89] उसने चोल, तुम्माण-कलचुरि, चालुक्येश जयसिंह सिद्धराज व काश्मीर के जयसिंह से मैत्रीपूर्ण कूटनीतिक संबध कायम किये थे। सन् 1154 मे उसके पुत्र विजयचद्र को गद्दी मिली। उसने महमूद के उत्तराधिकारी अमीर खुसरो के पुत्र खुसरो मलिक को हराया।[90] चाहमानो ने बीसलदेव के नेतृत्व मे उससे दिल्ली छीन ली। सन् 1170 मे जयचद्र कन्नौज की गद्दी पर बैठा। सन् 1194 तक उसने शासन किया। इस बीच उसने यादवों, अन्हलवाड के सिद्धराज, तथा मुहम्मद गोरी से युद्ध लडे। अत मे वह गोरी के हाथो हारा। थोडे समय तक उसके पुत्र हरिश्चद्र व बाद मे श्री हर्ष ने शासन किया। परतु ऐबक व इल्तुतमिश ने कन्नौज को दिल्ली सल्तनत मे मिला लिया।

मालवा : मालवा मे प्रतीहारो की शक्ति के पतन के साथ ही दसवी सदी मे परमारो का उदय हुआ। हरसोल अभिलेख[91] उन्हे राष्ट्रकूटो की एक शाखा मानता है। डा० डी० सी० गागुलि[92] उन्हे दक्षिण के राष्ट्रकूटो मे से मानते हैं। परतु डा० राजबली पाडे[93] उन्हे वीर एव युद्धप्रिय मालवो का वशज बतलाते है। सीयक-हर्ष ने इस वश की राजसत्ता कायम की थी। उसने खोटिग को हराया।[94] उसके पुत्र वाक्पतिराज मुज ने अनेक सफलताए पायी। पर वह तैलप के हाथो सन् 997-98 मे मारा गया। इस वश के भोज ने भी काफी लोकप्रियता पायी। उसने दक्षिण के विक्रमादित्य पचम को हराया।[95] पर स्वय गुजरात के जयसिंह द्वितीय से हारा।[96] वह स्वय एक अच्छा साहित्यकार व विद्वानो का सरक्षक था। उसने कई ग्रंथो का प्रणयन किया था। कालातर मे परमारो को मुसलमानो ने मालवा से उखाड फेका।[97] परमारो की छोटी शाखाए आबू, बागड, जालोर, भीनमल आदि मे बारहवी-तेरहवी व उसके बाद की सदियो मे शासन करती रही।[98]

गुजरात : यह क्षेत्र गुर्जराट, लाट और अन्हलवाड या अन्हल-पाट के नाम से भी जाना जाता था। ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी मे गुजरात मौर्य साम्राज्य का अग था।[99] हर्षवर्धन का समकालीन वल्लभीराज ध्रुवसेन उसका मित्र था। ध्रुवसेन के बाद इस क्षेत्र मे हरिश्चद्र नामक ब्राह्मण के वशजो ने शासन किया।[100] बाद मे मूलराज के नेतृत्व मे चालुक्यो के प्रभाव मे गुजरात आ गया। ये मूलत. दक्षिण के थे।[101] इन्होने अन्हलवाड-पाटन को अपनी राजधानी बनाया। महत्वाकाक्षी मूलराज ने सारस्वत मडल अपने अधीन ले लिया। उसने प्रतीहार नरेश महीपाल के सामत धरणी वराह को हरा कर सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया।[102] उसने चाहमानवशी शाकभरी के विग्रहपाल से भी युद्ध किया। मूलराज के पुत्र चामुडराज ने दक्षिण के तैल द्वितीय के पुत्र बारप्प को युद्ध मे मार डाला। त्रिपुरी का कलचुरि

लक्ष्मणराज भी उससे हारा। उसने सन् 942 से सन् 995 ई० तक शासन किया। इस कुल का नाम मूलराज के पौत्र भीम ने उजागर किया। सन् 1021 में भीम गुजरात का शासक बना। इसने अधिक प्रसिद्धी पायी। इसी के शासन काल में सन् 1026 ई० में महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया।[103] उसने भीम की राजधानी अन्हलवाड पर हमला कर लूटा।[104] भीमदेव मुसलमानों का सामना न कर सका और भाग गया।[105] महमूद के जाने के बाद उसने पुन निर्माण हेतु प्रयत्न किया। उसने आबू और मालवा के परमारो को भी हराया। इस काल में उसे कलचुरि लक्ष्मीकर्ण की सहायता मिली। बाद मे उसने लक्ष्मीकर्ण को भी परास्त किया।

भीम के बाद कर्ण गद्दी पर बैठा। उसने तीस वर्ष यानी सन् 1063 से 1093 ई० तक शासन किया। इस वश के जयसिंह सिद्धराज (सन् 1093-1143 ई०) ने भी काफी ख्याति अर्जित की। उसने नाडोल के चाहमान व सौराष्ट्र के चूडासमराज को जीता। उसने मालवा के नरवर्मन और यशोवर्मन को दीर्घकालीन सघर्ष में हराकर 'अवतीनाथ' का विरुद धारण किया।[106] उसके बाद कुमारपाल शासनारूढ हुआ।[107] उसने कई सफलताए प्राप्त की। उसने सन् 1172 ई० तक शासन किया। उसकी मृत्यु के बाद चालुक्यो का पतन प्रारभ हो गया। कालातर में गुजरात मुस्लिम साम्राज्य मे मिला लिया गया।

राजस्थान छठी सदी में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उनके सामत गुहदत्त ने उदयपुर के पश्चिम में एक छोटे राज्य का निर्माण किया। उसके वशज 'गहिल' या 'गुहिल पुत्र' कहलाये। इस वश मे आठवी सदी मे बप्पा रावल हुए। जिसने इस वश को, अपने शौर्य से मुसलमानो को हराकर कीर्ति दिलायी।[108] इस वश में गुहिल शक्तिकुमार व अम्बाप्रसाद हुए। अम्बाप्रसाद ने मेदपाट या मेवाड के सिंहासन को शोभित किया।[109] इसके बाद तेरह शासक हुए।[110] मेवाड ने मुगल काल में काफी नाम कमाया।

चाहमानो को चारणों की विरुदावलि मे नर्मदा किनारे की महिष्मति का शासक बताया गया है।[111] परतु व अपने को शाकभरी का मानते हैं।[112] सभवतया इस वश की कई शाखाए थी जो भारत के कई भागो में शासन कर रही थी। शाकभरी शाखा ने विशेष ख्याति पाई। इस क्षेत्र में सवा लाख गाव थे अत इसे सपादलक्ष भी कहा गया। इस वश का भतृबद्द द्वितीय प्रतीहार शासन नागभट्ट प्रथम का सामत था।[113] शाकभरी के चौहानो का सस्थापक वासुदेव था। इसके बाद कई शासक हुए। इनमें दुर्लभराज प्रथम उल्लेखनीय था। वह प्रतीहार वशी वत्सराज (सन् 780 805 ई०) का सामत था। उसके पुत्र गुवक या गोविंद राज प्रथम ने मुस्लिम हमले को विफल किया।[114] वाक्पति राज प्रथम चाहमान ने काफी शक्ति अर्जित की। इसने दसवी सदी के उत्तरार्द्ध में शासन किया। उसने प्रतीहारो

से स्वाधीन होने का प्रयत्न किया। उसके पुत्र सिंहराज ने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण कर अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी।[115] इसके पुत्र विग्रहराज द्वितीय (सन् 973-999) ने गुजरात के मूलराज पर हमला किया। इसी वश के अजयराज ने अजयमेरू नगर बसाया। इसने मालवा के नरवर्मन को युद्ध मे हराया। इसने तीन शासको—छाचिगा, सियुला और यशोराज को जय किया।[116] इस कुल का दूसरा प्रसिद्ध राजा वीसलदेव या विग्रहराज चतुर्थ (सन् 1153-64) था। कहा जाता है कि उसने हिमालय से विंध्याचल तक के सारे क्षेत्र को जीत लिया था।[117] यह अतिशयोक्ति हो सकती है। पर इसम कोई सदेह नही कि उसने कन्नौज नरेश विजयचद्र गहडवाल स दिल्ली छीन ली थी।[118] साहित्यविद् वीसलदेव ने 'हरि केलि' नाटक की रचना की। इस राजवश के राय पिथौरा या पृथ्वीराज तृतीय (सन् 1179-92) ने अपनी वीरता के कारनामो से इतिहास मे कई जनश्रुतियो को जन्म दिया। चदबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' और जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' ने उसकी ख्याति को स्थायी रूप दिया। चदबरदाई के अनुसार उसने इच्छनीदेवी के अलावा भी कई विवाह किये। उसकी वीरता से प्रभावित हो सयोगिता भी उसे चाहन लगी। और पृथ्वीराज गहडवालो के स्वयवर से उसे उठा लाया। पृथ्वीराज न महोबा-बुदेलखड के राजा परमार्दि को भी हराया।[1 9] उसने सन् 1182 ई० मे चदेल की राजधानी को लूटा। गुजरात के चालुक्येश भीम द्वितीय से भी उसने टक्कर ली।[120] सन् 1191-92 मे मुहम्मद गोरी से तराइन के मैदान म उसका सामना हुआ और वह गोरी को परास्त करने मे सफल हुआ।[121] इस अपमान को गोरी भूला नही और आगामी वर्ष ही उसने तराइन के मैदान मे पृथ्वीराज को न केवल हराया वरन उसे सरस्वती नदी के तट पर मार डाला।[122] उसके पुत्रो ने कुछ समय तक अजमेर मे गोरी के सामत के रूप मे शासन किया। पर उनका प्रभाव क्षीण हो गया था।

जेजाकभुक्ति (बुदेलखड) : बुदेलखड के चदेलो की उत्पत्ति अस्पष्ट है। चदेलो को चद्रात्रेय भी कहते हैं। प्रतीहार साम्राज्य के खडहरो पर नन्नुक चदेल ने नवी सदी मे अपने राज्य व वश की स्थापना की।[123] उसके पौत्र जेजा या जयशक्ति के नाम पर इनका जेजाकभुक्ति नाम पडा। इस वश के हर्षदेव ने कन्नौज के उत्तराधिकार युद्ध म महीपाल की सहायता की थी।[123a] उसने साभर के चौहानो व चेदि के कलचुरियो से विवाह कर अपनी स्थिति को दृढ किया।[124] उसने सन् 900 से 925 ई० के मध्य शासन किया। यशोवर्मन के काल मे चदेल पर्याप्त रूप से स्वाधीन हो गये। परतु श्री हर्ष ने धग के एक अभिलेखानुसार 'परम भट्टारक' की उपाधि ले ली थी।[125] यशोवर्मन ने कालिजर कलचुरियो से जीता।[126] उसने 'कालिजराधिपति' का विरुद धारण किया। इस राजकुल के धगदेव ने राज्य-विस्तार का बीडा उठाया। मऊ अभिलेख से पता चलता है कि उसने कान्यकुब्ज

राज को हराया।[127] उसने भी 'कालिंजराधिपति' की उपाधि ली थी।[128] धग की शक्ति के भय से कोशल, क्रथ, सिंहल, कुतल के शासक विनीत भाव से उसके आदेश सुनते थे।[129] उसन कई गाव दान म दिये व खजुराहो म उसके काल मे कई मदिरो एव देवालयो का निर्माण हुआ।

धग के बाद गड, गद्दी पर बैठा। सन् 1008 ई० मे महमूद के हमले के समय गड ने आनदपाल को सैन्य सहायता दी थी। महमूद ने गड को सन् 1019 ई० मे व 1022 ई० मे दो बार परास्त किया।[130] कीर्तिवर्मन तथा मदनवर्मन के बाद परमार्दि गद्दी पर बैठा। उसने सन् 1165 से 1203 ई० तक शासन किया। उसे पृथ्वीराज चौहान ने हराया।[131] परमार्दि के बाद ऐबक ने यह भाग जीत लिया।

बगाल बगाल पूर्व मे नद मौर्य-गुप्तो के मगध साम्राज्य का अग था।[132] गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद बगाल मे अनेक छोटे बडे राज्य उठ खडे हुए। हर्ष का समसामयिक शशाक कर्ण-सुवर्ण का शक्तिशाली राजा था। उसने गजाम प्रदेश के शैलोम्दव तक अपना अधिकार-क्षेत्र बढा लिया था।[133] शशाक की मृत्यु के बाद कर्ण-सुवर्ण पर थोडे समय के लिए आसाम के भास्करवर्मन का अधिकार रहा। उसके बाद पुन बगाल मे अराजकता छा गयी। सन् 725-35 के आसपास बगाल को यशोवर्मन और बाद म ललितादित्य के हमलों का सामना करना पडा। इस अव्यवस्था से परेशान हो जनता ने गोपाल को अपना राजा चुना। बगाल मे पाल वश की स्थापना हुई। इसने सन् 750 से 770 ई० तक शासन कर अराजकता को दूर करने का सफल प्रयत्न किया।[135]

गोपाल का उत्तराधिकारी पुत्र धर्मपाल (सन् 770 810) अत्यत महत्त्वाकाक्षी था। उसे गगा के काठे मे प्रतीहारेश वत्सराज ने हराया।[136] उसने कन्नौज की राजनीति मे भी हस्तक्षेप किया। और चक्रायुध को इद्रायुध के स्थान पर कन्नौज का शासक बनने मे सहायता दी। बाद मे उसने इद्रायुध को हराया।[137] उसने विक्रमशिला विद्यालय को काफी दान दिया। बगाल बिहार सीधे उसके अधिकार मे थे और कन्नौज उस पर आधारित था। पजाब, राजस्थान, मालवा और बरार के कई स्थानीय शासक उसका अधिकार मान उसे कर आदि देते थे।[138] सभवतया नेपाल भी उसके प्रभाव मे था।[139]

देवपाल (सन् 810 850 ई०) को अपने पिता से विरासत मे एक अच्छा राज्य मिला था। उसने अपने पिता की साम्राज्यवादी नीति को जारी रखा। मुगेर के दान अभिलेख मे उसे गौरी गुरु (हिमालय) से रेवा के पिता (विंध्याचल) तक का स्वामी कहा गया है।[140] उसके चचेरे भाई व सेनापति ने आसाम-उत्कल जीते।[141] उसने बौद्ध होने से कई मठ बनवाये। गुर्जरेश नागभट्ट द्वितीय से भी उसका सघर्ष था। बगाल-बिहार के अलावा भी वह उत्तर भारत का प्रभावशाली राजा था।[142]

उसकी मृत्यु के बाद कई छोटे-बडे राजा आठ वर्ष म हुए।[143] पर नारायण

पाल (सन 858-912 ई०) ने कुछ सफलता पाने का प्रयत्न किया। धार्मिक वृत्ति का शांतिवादी होने से वह अधिक कुछ नहीं कर सका। पाल वंश का पतन आरंभ हो गया। प्रतीहार महेन्द्रपाल ने उससे उत्तर बंगाल छीन लिया। उसके कई अधीनस्थ स्वतंत्र हो गये। महीपाल तथा बाद में नागपाल ने शासन किया। वे उल्लेखनीय कार्य न कर सके। सेनों के उत्कर्ष ने पालों की कीर्ति को धूमिल कर दिया।

सेन नरेशों से पूर्व कई छोटे शासकों ने बंगाल में शासन किया था।[144] इससे अराजकता को बढ़ावा मिला। तब सेन बंगाल के राजनीतिक क्षितिज पर आये। इस वंश का अधिष्ठाता सामंतसेन अपने को 'चन्द्रवंश' में उत्पन्न कर्नाट-क्षत्रिय, ब्रह्म-क्षत्रिय या क्षत्रिय मानता है।[145] सामंतसेन के पौत्र विजयसेन ने सन् 1095 से सन् 1158 ई० तक शासन किया। उसने इस राजवंश को प्रतिष्ठा दिलायी। रामपाल के पतनोन्मुख राज्य से लाभ उठाते हुए उसने सारे बंगाल को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया।[146] उसने तिरहुत के नान्यदेव और कामरूप-कलिंग के शासकों को हराया।[147] उसके पुत्र बल्लालसेन ने अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाया। इस वंश के अंतिम शासक लक्ष्मणसेन अथवा रामलखमनिया से बंगाल-बिहार सन् 1197 में कुतुबुद्दीन ऐबक के सिपहसालार ने छीन लिया। बंगाल सदैव के लिए दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।[149]

इन प्रमुख राजघरानों के अतिरिक्त भी पूर्व मध्य युगीन उत्तर भारत अनेक छोटे-बड़े राजवंशों में विभाजित था। मुगल साम्राज्य की पतनोन्मुख दशा में सन् 1707 के बाद भारत की जो राजनीतिक दशा थी वही इस काल में थी। गुजरात में नंदीपुर, वल्लभी,[150] सैंधव्य, आभीर, सूर्य मंडल के वराह,[151] दोहद में गुहिल तथा चाहमाना और कलचुरियों की शाखाएं शाकंभरी, रत्नसभपुर, नादोल, जाबालिपुर सत्यपुर त्रिपुरी-रत्नपुर में शासनारूढ़ थी।[152]

दक्षिण

दक्षिण को भी सामान्यतया दो भागों—दक्षिण और सुदूर दक्षिण—में विभाजित कर सकते हैं। दक्षिण उत्तर से अलग होते हुए भी सांस्कृतिक बंधनों से उत्तर से बंधा हुआ था, पूर्व मध्ययुग में दक्षिण भारत के धार्मिक प्रयोगों ने ही कालांतर में उत्तर भारत को नये सिरे से एक सूत्र में आबद्ध किया था। राजनीतिक दृष्टि से दक्षिण व सुदूर दक्षिण भी अनेक राज्यों में बटे थे। साम्राज्यवादी विस्तार के लिए युद्ध एक सामान्य प्रक्रिया बनकर रह गये। दक्षिणी भारत या दक्षिणापथ में आर्यों ने आर्य संस्कृति का प्रचार किया था।[153] राजनीतिक दृष्टि से दक्षिण भारत पहली बार मौर्यों की अधीनता में ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी में आया था।[154] परंतु कुछ विद्वान् नंद-काल में दक्षिण को उसके साम्राज्य का अंग मानते हैं।[155] इसमें कोई संदेह नहीं कि मौर्यों ने विंध्य पार करके कई भागों पर अपना आधिपत्य जमाया

था।[156] मौर्यों के बाद सम्राट समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के कई नरेशों को हराया।[157] हर्ष के काल में पूर्व सातवाहनों ने दक्षिण को महत्त्व दिलाया। पुलकेशिन द्वितीय ने हर्ष को बराबरी की टक्कर दी।[158]

चालुक्य : पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के बाद बादामी के चालुक्यों की शक्ति को धक्का लगा। उसके पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने सन् 655-81 तक शासन किया। उसने अपने पिता के राज्य को यथावत् बनाए रखने का प्रयत्न किया। पल्लवों और चालुक्यों के बीच संघर्ष छिड़ गया। उन्होंने बादामी को नष्टभ्रष्ट किया।[159] विनयादित्य ने पल्लव, कालभार, केरल, हैहय, चोल और पाड्यों को हराकर 'पालिध्वज' का विरद धारणा किया।[160] ऐसा कहा जाता है कि सिंहल व पर्शियन सामंतों ने उसके यहां शरण ली थी।[161] उसने सन् 733 तक शासन किया। उसके बाद विक्रमादित्य द्वितीय (सन् 734-745) और कीर्तिवर्मन द्वितीय (745-757) के काल में दक्षिण में श्रेष्ठता पाने के लिए चालुक्यों का पल्लवों से संघर्ष जारी रहा। पर वे पुराना गौरव न पा सके। चालुक्यों की एक अन्य शाखा ने जो पूर्वी चालुक्य कहलाती थी, वेंगी में शासन किया। इस शाखा का संस्थापक पुलकेशिन द्वितीय का भाई विष्णुवर्धन था। इसके वंशज जयसिंह प्रथम (सन् 633-63 ई०) महाराज इंद्रवर्मन, विष्णुवर्धन द्वितीय (सन् 663-72), जयसिंह द्वितीय (सन् 696-709)। और विक्रमादित्य प्रथम (सन् 746-764) थे।[162] इस वंश के विजयादित्य द्वितीय (सन् 799-847) ने राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय से संघर्ष कर उसकी राजधानी को लूटा।[163] ऐसा कहा जाता है कि उसने 108 युद्ध लड़े और दक्षिण में गंगों को नष्ट किया।

इसी वंश के विजयादित्य तृतीय (सन् 848 892) ने दिग्विजय की नीति को जारी रखा। उसने पल्लवों से नेल्लोर छीना और पांड्यों को हराया। चोल नरेश ने उसके यहां शरण ली। गंग भी उससे हारे। उत्तर में उसने कृष्ण तृतीय और कलचुरियों की सम्मिलित सेना को धूल चटायी।[164] चालुक्यों की वेंगी शाखा सन् 999 ई० तक शासन करती रही। बाद में राजराज प्रथम और शक्तिकुमार ने उनका उन्मूलन कर दिया।

उत्तरकालीन चालुक्यों में मान्यखेत (कल्याणी) के चालुक्य भी उल्लेखनीय थे। दसवीं सदी में तैलप ने इस वंश की स्थापना की थी। उसकी नसों में वातापी (बादामी) के चालुक्यों का रक्त था।[165] वह राष्ट्रकूटों का सामंत था।[166] पर उसने शीघ्र ही उनके पतन पर स्वाधीन सत्ता मान्यखेट में कायम कर ली। उसने नर्मदा-तुंगभद्रा के मध्य अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया।[167] उसने दक्षिण शीलहार अवसर तृतीय से कोंकण छीना[168] और गुजरात पर भी धावा मारा। तैल का संघर्ष मालवा के परमार मुंज से हुआ। कई युद्धों के बाद वह मुंज को समाप्त करने में सफल हुआ। उसे कर्णाट-कुंतल का राजा कहते हैं। उसके राज्य में शिमोगा,

चीतलदुर्ग बेलारी व दक्षिण कोकण सम्मलित थे।[169] उसके पुत्र सत्याश्रय ने उसे सभी युद्धो मे सहयोग दिया था। उसने सन् 993 से 997 ई० तक शासन किया।

सत्याश्रय (सन् 997-1008 ई०) अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा। उसने 'अकलक चरित्र', 'अहवमल्ल' आदि के विरुद धारण किये। उसका मालवेश सिंधुराज से सघर्ष हुआ जिसने उससे कई भाग छीन लिये।[170] चोलो से भी उसका युद्ध चला। सत्याश्रय, शीलहार अपराजित को हराने मे सफल हुआ। कोकण पर भी उसने अधिकार कर लिया। वह मूलराज के पुत्र चामुडराज गुर्जरेश्वर को हराने मे भी सफल हुआ।[171] परतु चोल नरेश राजराज महान ने उससे उसके राज्य के दक्षिण के कई भाग छीन लिये।[172] सत्याश्रय के बाद कई शासक हुए। पर उन्हे दक्षिण के चोलो के हमलो का सामना करना पडा। बाद के शासको मे सोमेश्वर प्रथम आहवमल (सन् 1042-1068 ई०), सोमेश्वर द्वितीय भवनैकमुल्ल (सन् 1068-1076), विक्रमादित्य षष्ठ (सन् 1076-1126) इस वश के उल्लेखनीय शासक थे। सन् 1183 ई० तक चालुक्य वश शासन करता रहा। बाद मे इस वश का इतिहास अधकार मे खो गया।

राष्ट्रकूट तथा यादव दक्षिण भारत की राजनीति मे राष्ट्रकूटो[173] ने भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इस वश का सस्थापक दतिदुर्ग या दतिवर्मन चालुक्यो के अधीनस्थ था। उसने 752 ई० के आसपास स्वाधीनता प्राप्त कर ली।[174] राष्ट्रकूटो की उत्पत्ति विवादास्पद है। दतिदुर्ग ने, कहा जाता है, महानदी-माही-रेवा के तटो पर कई युद्ध लडे। उसने काची, कलिंग श्रीशैल-कौशल, मालवा, लाट और टाक जीता। उसकी ये सफलताए विवादास्पद हैं। पर इसमे सदेह नही कि वह एक महत्त्वाकाक्षी शासक था और उसने कई युद्ध लडे होगे। उसने कीर्तिवर्मन द्वितीय चालुक्य को हराया था।[175] उसके बाद इद्र प्रथम, गोविंद प्रथम, कर्क प्रथम और इद्र द्वितीय ने शासन किया।

सन् 772 ई० के बाद गोविंद द्वितीय ने इस वश को विशेष कीर्ति दिलायी। युवराज के रूप मे उसने वेंगी के शासको को हराया था। पर राजा बनते ही वह भोग-विलास मे डूब गया। उसने 'प्रभूतवर्ष-विक्रमावलोक' का विरुद धारण किया। उसके उत्तराधिकारी भाई ध्रुव तिरूपम अथवा धारावर्ष श्रीवल्लभ ने अपने भाई को हटाकर 780 ई० मे गद्दी पायी। जिन शासको ने उसके भाई गोविंद की सहायता की थी, उन्हें उसने दडित करना आरभ किया। उसने गग नरेश श्रीपुरुष और युवराज शिवमार को हराया।[176] उसने गगावाडी पर अधिकार कर लिया। वेंगी के विष्णुवर्धन चतुर्थ को भी उसने दबाया। नर्मदा-तट पर एक शक्तिशाली सेना एकत्र कर उसने मालवा के वत्सराज पर हमला किया। वत्सराज हार कर राज-पूताना भाग गया।[177] उसने सभवत दोआब पर धर्मपाल के विरुद्ध भी अभियान किया था। उसने इद्रायुध को हराकर अपने झडे पर गगा-यमुना का चिह्न अकित

किया।[178] सन् 790 मे लूट के सामान के साथ वह दक्षिण लौटा।

ध्रुव के बाद गोविंद जगतुग राजा बना। उसके भाइयो की महत्त्वाकाक्षा के कारण गृहयुद्ध छिड गया। शीघ्र ही उसने अपने विरोधियो को सन् 795 तक दबा दिया। उसने काची के पल्लव नरेश दन्तिग को हराया। इसी प्रकार पूर्वी चालुक्य विक्रमादित्य को भी परास्त किया। उसने उत्तर मे भी विजय अभियान छेडा। सन् 806-808 ई० के मध्य उसने नागभट्ट द्वितीय को जीता।[176] कान्यकुब्ज के चक्रायुध और गौडेश धर्मपाल ने 'स्वय (उसे) आत्मसमर्पण कर दिया।'[180] उत्तर मे उसके व्यस्त रहने से दक्षिण के पाड्य-चोल-कांची गगावाडी तथा केरल के सयुक्त सघ ने उसके राज्य पर हमला कर दिया, पर गोविंद उन्हें भी हराने मे सफल हुआ। उसकी अपराजेय सेना ने कन्नौज से कन्याकुमारी और बनारस से भडोच तक के क्षेत्र को रौंदा था। वेंगी मे उसके नामजद शासक शासन कर रहे थे।[181]

अमोघवर्ष, जो गोविंद का पुत्र था, सन् 814 मे सिंहासनारूढ हुआ। उसने 'नृपतुग', 'अतिशय धवल', 'वीर नारायण' आदि की उपाधिया धारणा की। उस पर उसके वेंगी-गगावाडी के शत्रुओ ने हमला कर दिया। कुछ समय के लिए उसे सत्ता से हटा दिया गया। परतु शीघ्र ही सन् 821 ई० मे सूरत दान लेखानुसार उसने अपना प्रभाव जमाया। उसने वेंगी के चालुक्यो को कुचला।[182] वह स्वय कवि व लेखक था। उसने गगावाडी पर भी आक्रमण किया। पर बाद मे उनसे विवाह सबध कायम कर लिये। सिरुर अभिलेख मे उसे मालवा अग-वग मगध का विजेता कहा गया है।[183] अपना अतिम काल उसने धार्मिक कृत्यो मे बिताया। 60 वर्ष के लबे शासन के बाद सभवतया सन् 878 ई० मे उसका देहावसान हुआ।[184]

कृष्ण द्वितीय (सन् 878 914 ई०) शासनारूढ हुआ। उसके बाद [illegible] हुए। इनमे कृष्ण तृतीय (सन् 940 ई०) ने काफी कीर्ति पायी। उसने [illegible] हमले किये।[185] गुर्जर नरेश को उसने त्रस्त किया। दक्षिण में भी [illegible] जीता। सन् 968 मे उसके बाद, राष्ट्रकूटो का पतन आरभ हो गया। [illegible] परमारो और पश्चिम के चालुक्यो ने राष्ट्रकूटो की शक्ति को काफी धक्का [illegible]

यादव यादव अपने को यदु-वशी मानते है। प्राचीन काल में [illegible] आकर बस गये थे।[186] प्रारभ मे वे राष्ट्रकूटो और कल्याणी के [illegible] थे। उनके पतन के समय वे स्वाधीन हो गये। सन् 1187 ई० [illegible] महत्त्वाकाक्षी भिल्लम ने सोमेश्वर चालुक्य को परास्त कर [illegible] के सपूर्ण चालुक्य राज्य पर अधिकार कर लिया।[187] देवगिरि [illegible] राजधानी बनाया। इसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि [illegible] 1191 ई० तक ही शासन कर सका। शायद इस सन् में [illegible] करते समय वह वीर बल्लाल प्रथम होयसाल द्वारा [illegible] उत्तराधिकारी जैतुगी या जैत्रपाल प्रथम (सन् 1191-1211 ई०, [illegible]

पूर्व मध्य [illegible]

जाता है।[214] डा० के० पी० जायसवाल उन्हे अभिजात कुलीय ब्राह्मण मानते हैं, जिन्होंने सैनिक वृत्ति अपना ली थी।[215] तालगुड अभिलेख के आधार पर उन्हे क्षत्रिय माना गया है।[216] जबकि तमिल मे पल्लव का अर्थ लुटेरा भी होता है।[216A] पल्लवों की शाखा ने काची, वेंगी, पल्लकड (पालघाट) मे शासन किया था।[217] इनमे काची शाखा मुख्य व अधिक प्रभावशाली थी।

अभिलेखो के आधार पर पल्लव शक्ति का उदय ईसा की तीसरी-चौथी शता०दी माना गया है।[218] बप्पदेव इस वश का सस्थापक था। इसके अधीन आध्रपथ और टाडमडल थे।[219] इसके पुत्र शिवस्कदवर्मन 'धर्म महाराज' ने उत्तर-दक्षिण दोनो ओर अपने राज्य का विस्तार किया। उसने अग्निष्टोम, बाजपेय और अश्वमेध यज्ञ विजयो के उपलक्ष मे किये।[220] सातवी सदी मे इस वश के महेद्रवर्मन प्रथम (सन् 600-630 ई०) ने विशेष ख्याति अर्जित की। उसका सघर्ष चालुक्येश पुलकेशिन द्वितीय से हुआ। उसने उसे परास्त किया।[221] महेद्रवर्मन का पुत्र नरसिंहवर्मन (सन् 630-668 ई०) अपने पिता से भी अधिक प्रतापी था। द्वितीय पुलकेशिन ने उस पर जब चढाई की तो नरसिंह ने न केवल उसे पीछे धकेला वरन् चालुक्यो की राजधानी वातापी पर हमला कर पुलकेशिन को युद्ध मे मार डाला।[222] उसने विजय के उपलक्ष मे 'वातापी कोड' और 'महामल्ल' की उपाधिया धारण की। बाद मे महेद्रवर्मन द्वितीय (सन् 668-670 ई०), परमेश्वरवर्मन प्रथम (सन् 670-695 ई०) तथा नृसिहवर्मन द्वितीय (सन् 695-722 ई०) ने शासन किया। इसके उत्तराधिकारी परमेश्वरवर्मन द्वितीय (सन् 722-730 ई०) को चालुक्य युवराज विक्रमादित्य द्वितीय ने हराया था।[223] उसके बाद नदिवर्मन (सन् 730-800 ई०) को प्रजा ने अपना राजा निर्वाचित किया। पल्लवो का चालुक्यो से सघर्ष चल पडा। राष्ट्रकूटो, चोलो और पाड्यो से भी इनका सघर्ष चला। परिणामस्वरूप पल्लवो को काफी हानि उठानी पडी। इस वश का अतिम राजा अपराजितवर्मन (सन् 876-977 ई०) था। इसने गगो की सहायता से पाड्यो को हराया। किंतु चोल राजा आदित्य प्रथम ने इसे युद्ध मे मार डाला। पल्लव राज्य को चोल राज्य म मिलाते ही उनकी शक्ति का अत हो गया।[224] पल्लवो ने दक्षिण भारत म शैव-वैष्णव तथा जैन धर्मों और कला के विकास मे श्रेष्ठ योगदान दिया था।

चोल[225] : चोल देश या 'चोल मडलम' के उत्तर मे पेन्नार तथा दक्षिण मे वेल्लूर नदी है। पूर्व मे नेल्लोर से पुडुकोट्टाई तथा पश्चिम मे कुर्ग तक उसकी सीमाए हैं।[226] यद्यपि ये परपरागत सीमाए हैं, परतु उसकी वास्तविक सीमाओं का निर्धारण तो प्रजाति और राजनीतिक प्रभाव के आधार पर भी किया जा सकता है।[227] चोलो को चोड (सस्कृत), तमिल-'चोलम' अथवा 'कोल' से जाना जाता है। इनके विविध अर्थ जैसे चोड या चुल (चोली, अगिया), चोलम—एक प्रकार का अन्न, तथा कोल पर से एक प्रकार की जाति की व्युत्पत्ति अर्थ भी लगाये गये हैं।[228] इस पर

से इन्हे आर्यों के आगमन के पूर्व की दक्षिण भारत की एक कृष्णकाय जाति भी माना गया।[229] जब कि चोल स्वय को अन्य क्षत्रियो की शाखाओ के समान सूर्यवंशी क्षत्रिय मानते है।[230] डा० राजबली पाडे चोल से सबधित सभी व्युत्पत्तियो को अशोभन और अस्वाभाविक मानकर 'चोलो' को 'चूल' अथवा चूड = शिर = श्रेष्ठ मानते है। उनके विचार से द्रविड प्रदेश के प्राचीन राजाओ मे चोल शिरोमणि थे जो उत्तर भारत से द्रविड देश गये थे। शिरोमणि होने से ही वे चोल कहलाये।[231] सभी इतिहासकारो ने चोलो को भारत के प्राचीन राजवशो मे स्थान दिया है। 'महावश', 'महाभारत', 'मेगास्थनीज', पेरीप्लस तथा तालेमी की 'ज्याग्रफी' व कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' मे भी इनका उल्लेख मिलता है। वैयाकरण कात्यायन भी इनकी जानकारी देते है। एक परपरानुसार मौर्यों ने जब चोल राज्य पर हमला किया तो चोलो को कलिंगो ने सहायता दी। चोल अपनी स्वाधीनता कायम रखने मे सफल भी हुए।[232] सातवी सदी का बौद्ध चीनी यात्री भी चोलो को 'चु लि-ये' नाम से सबोधित करता है।[233]

प्रारभ मे चोल पल्लवो के सामत थे।[234] पल्लव शक्ति के ह्रास के बाद इनका सघर्ष आरभ हुआ। वैसे चोलो की शक्ति का आरभ चौथी सदी से नौवी सदी तक होता रहा पर नवी सदी के बाद ही विशेष रूप से वे प्रकाश मे आये।[235] द्वितीय शताब्दी मे चोल नरेश करिक्ल (सन् 190 ई०) ने चोलो को ख्याति दिलायी थी।[236] इसने अपने पाड्य और चेर विरोधियो को हराया था।[237] उसके पुत्र नेदुमुदिकिल्ली ने भी कुछ सफलता पायी। फिर उसके बाद चोल शक्ति का पतन हुआ।

सन् 850 ई० म विजयालय के साथ ही चोल प्रकाश में आये। वह पल्लवो का सामत था। उसके उत्तराधिकारी पुत्र आदित्य प्रथम (सन् 880-907 ई०) ने स्वाधीनता घोषित कर दी। परतु वास्तव मे चोल, परतक प्रथम (सन् 907-947 ई०) के काल मे स्वाधीन हुए।[238] परतक ने कई विजए प्राप्त की। उसने मदुरा को जीतकर 'मदुरातक' और 'मदुरैकोड' की उपाधिया धारण की।[239] वह पाड्य नरेश राजसिंह द्वितीय को हराने मे भी सफल हुआ। बैडुवो को उसने जीता।[240] पल्लवो की शक्ति को उखाड फेंकने मे भी परतक सफल हुआ।[241] परतु सन् 949 ई० मे राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने टोडमडलम् पर आक्रमण किया। तोस्कलम के युद्ध म चोलो को उसने परास्त कर दिया। उस युद्ध मे चोल युवराज राजादित्य मारा गया।[242] इस युद्ध ने चोल शक्ति को धक्का पहुचाया। वह कुछ समय तक अधकार मे डूबी रही।

राजराज प्रथम (सन् 985-1014 ई०) के राजसिंहासन पर बैठते ही चोलो के उत्कर्ष का प्रारभ हुआ।[243] एक शक्तिशाली जहाजी बेडा गठित कर वह चेर नौ-सैनिक शक्ति को दबाने मे सफल रहा।[244] उसने पश्चिमी गग वश से गगा-

वाडी, तादिगैवाडी और नोलबवाडी छीने।[245] चालुक्यो से भी उसने बदला लिया। चार वर्ष के लबे सघर्ष के बाद उसने उन्हे हराया।[246] रट्टपाडी उसके अधिकार मे आ गया। उसने कलिंग और समुद्र के 1200 द्वीप जीते जिनमे शायद लक्कदीव-मालदीव थे।[247] इस प्रकार राजराज प्रथम ने सपूर्ण वर्तमान मद्रास प्रात, कुर्ग, मैसूर और सिंहल के अनेक भागो व द्वीपो का स्वामित्व प्राप्त किया।[248] इन सफलताओ के कारण उसने 'मुम्मुडि चोलदेव', 'जयगोड', 'चोल मार्तंड', 'पाड्य कुलाशनी', 'केरलातक' व 'सिंघलातक' के विरुद धारण किये। उसने कई निर्माणकारी कार्य भी किये।

राजेंद्र प्रथम गगैकोड (सन् 1014-1044 ई०) ने अपने पिता के कार्य को आगे बढाया। उसने तिरुमलै शिलालेख के अनुसार इदैतुरैनाडु (रायचूर दोआब), बनवासी, कोलीप्पाक्कै (हैदराबाद के निकट), मन्नैक्कदक्कम (मान्यखेट), इलाम (सिंहल), मालदीव, सादिमत्तिकू (अरब सागर का एक प्रसिद्ध द्वीप), चालुक्यो, जगदमेक्क ल्लम्, नागवशी नरेशो, सोमवशी राजा, मासुनीदेशम (बस्तर), जाजनगर (उडीसा), कोसलनाडु (महानदी के किनारे), तदभुक्ति (दडभुक्ति) के धर्मपाल, रणसूर्य एव गोविंदचद्र को जीता।[249] उसकी विजयवाहिनी गगा तट तक जा पहुची और गौड नृपति महीपाल से जा टकरायी।[250] वह इस वश का प्रसिद्ध एव प्रतापी नरेश सिद्ध हुआ।

राजेद्र के बाद राजाधिराज प्रथम (सन् 1044-52 ई०), राजेंद्रदेव द्वितीय (सन् 1053-63), वीर राजेंद्र (सन् 1063-70), अधिराजेंद्र (सन् 1070) और कोलुतुग प्रथम (सन् 1070-1122 ई०) ने शासन किया। समसामयिक नरेशो से उनका सघर्ष चलता रहा। उन्होंने कई सफलताए पायी। परतु धीरे धीरे चोल शक्ति का पतन होने लगा। सन् 1251-72 मे चोलो पर सुदर पाड्य ने सांघातिक चोट की। चोल देश पाड्य सेना ने रौंद डाला। चोल साम्राज्य बिखर गया।

पाड्य : पाड्य[251] देश सुदूर दक्षिण मे दक्षिण वेल्लारू नदी से उत्तर-दक्षिण के कामोरिन (कन्याकुमारी) तक फैला है। पूर्व-पश्चिम समुद्र से लेकर अच्चन कोविल दर्रे तक यह विस्तृत है जो केरल या त्रावणकोर तक जाती है।[252] सामान्यतया पाड्य-राज्य को पाच प्रदेशो मे विभाजित किया गया था। ये 'पच पाड्य' कहलाये।[253] प्रारभ मे कोरकाई और बाद मे मदुरा पाड्यो की राजधानी बना। पाड्य राज्य दक्षिणी समुद्र तट पर फैला होने से उसका व्यापार-व्यवसाय काफी बढ़ा। इसने उसे आर्थिक समृद्धि दी। उसके रोमन साम्राज्य से भी व्यापारिक-राजनीतिक सबध कायम हुए।[254]

पाड्यो की उत्पत्ति भी इतिहास की एक अनबूझ पहेलियो मे से है। एक जनश्रुति पाड्यो को उन तीन कौरवँ भाइयो मे से एक मानती है जिन्होने चेर-चोल-पाड्य राज्यो की स्थापना की थी।[255] जब कि एक अन्य अनुश्रुति एव स्वय पाड्य

शासक भी अपने-आपको महाभारत के वीर-पाडवो का वशज बतलाते हैं। पाड्यो का प्राचीन इतिहास अधकारमय है। डाक्टर नीलकठ शास्त्री ने सगमकालीन साहित्य 'शिल्पादिकारम्', 'मणिमेक्लई' के आधार पर उनके इतिहास को तैयार कर एक वशावली दी है।[256]

इस वश के आरभिक राजाओ मे हमे मुडुकुडुमी पेरुवालुदि का उल्लेख मिलता है। इसने 'परमेश्वर' की उपाधि धारण की थी। अनेक सफल युद्ध लडकर उसने कई यज्ञ किये।[257] परतु छठी सदी के उत्तरार्द्ध से शासको की एक वश-परपरा ज्ञात होती है। इनमे कदुगोन (सन् 590-620 ई०), मारवर्मन अवनिशूलामणि (सन् 620 645 ई०), सेदान (सन् 645-670 ई०), अरिकेसरी मारवर्मन (सन् 670 700 ई०), कोक्कादयान (सन् 700-730 ई०), मारवर्मन, राजसिंह (सन् 730 765 ई०), जटिलपरतक नेंडुजादयेन (सन् 765-815 ई०), श्रीमार श्रीवल्लभ (सन् 815-862), वरगुणवर्मन द्वितीय (सन् 862-885 ई०), परातक वीरनारायण (सन् 860-905 ई०), मारवर्मन राजसिंह द्वितीय (सन् 905-920 ई०) का उल्लेख मिलता है।[258] इनमे से अरिकेसरी परातुश मारवर्मन प्रथम (सन् 670-700) ने चालुक्यराज विक्रमादित्य को पल्लव नरेश परमेश्वरवर्मन के विरुद्ध सहायता दी थी।[259] इसके पुत्र कोक्कादयेन रणधीर ने अपने पडोसियो से सफल युद्ध किये और कागू प्रदेश जीता।[260] रणधीर के पुत्र मारवर्मन राजसिंह प्रथम ने चालुक्य विक्रमादित्य द्वितीय के साथ मिलकर कई युद्ध लडे। उनका पल्लवो से भी सघर्ष हुआ। उसने पल्लवो को जीतने की खुशी मे 'पल्लव भजन' विरद धारण किया।[261] उसके पुत्र दुजउयन ने सन् 765-815 के मध्य कई सफलताए पायी। उसने कोगु (कोयम्बटूर सालम) तथा वेनाडु (त्रावणकोर) को पाड्य राज्य मे मिला लिया।[262] श्रीमार श्रीवल्लभ (सन् 815-862 ई०) ने उसके कार्य को आगे बढाया। विलीनाम के युद्ध मे उसने केरल के राजा को परास्त किया।[263] वह गगा-पल्लव चोल-कलिग मगध के सयुक्त सघ को हराने मे भी सफल हुआ।[264] इस वश के परातक वीरनारायण (सन् 880-900) ने भी कई विजए पायी। उसने कोगुदेश म कई युद्ध लडे। चोलो से पाड्यो का सघर्ष जारी रहा। चोल नरेश परातक प्रथम ने इस वश के राजसिंह द्वितीय को हराया। राजसिंह ने सिहल मे शरण ली। इस विजय के फलस्वरूप उसने 'मदुरैकोड' की उपाधि ली।

इस हार के कारण पाड्य वश दक्षिण मे अपनी प्रभुता खो बैठा। प्राय सन् 920 ई० से 13वी सदी तक पाड्य देश को चोलो के प्रभुत्व मे रहना पडा।[265] सन् 949 ई० मे पाड्य नरेश वीर पाड्य ने स्वतत्र होने का असफल प्रयत्न किया। चोलश राजराज प्रथम (सन् 1014-1044 ई०) ने अपने पुत्र जटावर्मन सुदर को पाड्य देश का शासक बना दिया। इस प्रकार पाड्य देश चोल साम्राज्य का एक

प्रांत बन गया।[266]

चेर द्रविड प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम मे समुद्र तट पर प्राचीन चेर राज्य था। आजकल यहा मद्रास का मलाबार जिला, त्रावणकोर-कोचीन तथा पुदुकोट्ट है।[267] शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर चेर और केरल प्राय पर्यायवाची है।[268] प्रारंभिक काल म चेर राज्य के अतर्गत केरल था।[269] कभी कभी सलेम का दक्षिणी भाग और कोगु प्रदेश (कोयबटूर) भी चेर राज्य मे सम्मिलित कर लिये जाते थे।[270]

चेरो का उल्लेख अशोक के शिलालेखो[271] मे केरल-पुत्त (केरल-पुत्र) के नाम से किया गया है।[272] चेर-चोल पाड्यो का इतिहास एक-दूसरे मे इतना गुथा हुआ है कि उसे अलग करना कठिन है।[273] चेरो के विषय म सगम साहित्य से सबधित 'शिल्पादिकारम्' मे सूचना मिलती है। चोल व पाड्यो से घिरे होने से चेर शासको ने अवसर के अनुरूप कभी चोलो का साथ दिया कभी पाड्या का।[274] चेरो के प्रथम शासक उदियनजेराल (सन् 130 ई०) के बारे मे सूचना मिलती है। इसके पुत्र नेंदुगेराल आदन ने एक स्थानीय शासक की नौ-सना को नष्ट किया और कई युद्ध लडे। यह यवन व्यापारियो को भी बदी बनाने मे सफल हुआ। इसने अरिराज' की पदवी और 'इमयवरबन' का विरुद धारण किया।[275]

सगम साहित्य से ही सबधित ग्रथ पदिट्रुप्पत्तु' मे चेर नरेश सेनगुत्तुवन के कार्यों की प्रशसा की गयी है। चेर वशी पेरुम सेरल आदन ने पाड्य नरेश को चोल राज करिकल के विरुद्ध सहायता दी थी।[276] जब कि चोल-नरेश नेंदूजेलियम ने चेर राज को हराया। इसी प्रकार एक अन्य चेर शासक कनैक्कल इरुमपोराड् को सेनगनान चोल ने परास्त किया।[277]

पूर्व मध्य युग मे चेर वशी स्थानुरवि (सन् 860 905 ई०) ने चोलेश आदित्य प्रथम से मैत्रीपूर्ण सबध रखे। उसने अपनी पुत्री का विवाह परातक से कर दिया।[278] परतु दसवी सदी के अत मे चेर-चोल सबध बिगड गये और राजराज प्रथम (सन् 985-1014 ई०) ने चेर राज्य पर हमला कर उनका जहाजी बेडा नष्ट कर दिया। राजेंद्र प्रथम गगैकोड (सन् 1015-44 ई०) ने भी चेरो को जीता।[279] चेरो को पल्लवो व पाड्यो के हमलो का भी सामना करना पडा। पल्लवेश नरसिहवर्मन प्रथम, नदिवर्मन तृतीय (सन् 846-869 ई०) तथा पाड्य सेंनदन के आक्रमण भी चेरो को झेलने पडे। बारहवी सदी मे चेर देश म वेनाउ तथा चेरनाडू के शासन की जानकारी मिलती है।[280]

सुदूर दक्षिण मे उपरोक्त प्रमुख शक्तिया के अलावा भी कई छोटे बडे सामत थे। इनमे नोलब, वैंदुब, आलुवखेड, कागु,[281] कालभार और अरूपो[282] की गणना की जा सकती है।

राजनीतिक फूट और परस्पर विरोध की भावना, सुदृढ केंद्रीय सत्ता की स्थापना मे बाधक सिद्ध हुई। क्योंकि प्रत्येक नरेश और सामत सीमित दृष्टिकोण को सामने

रखकर काम कर रहा था। फलस्वरूप देश में एकरूप शासन स्थापित न हो सका। प्रत्येक छोटी इकाई ने अपने अनुरूप प्रशासकीय व्यवस्था का गठन किया। देश म समान शासन-प्रणाली विकसित न हो सकी। हर्ष के बाद वह छिन्न-भिन्न हो गयी।

इस प्रथा ने स्थानीय सामतवाद को प्रोत्साहन दिया। सामतवादी प्रथा की जड़ें भारत मे जम गईं। उसके कुपरिणाम देश को ग्यारहवी सदी मे महमूद गजनवी और बारहवी सदी के अतिम चरण में मुहम्मद गोरी के हमलो के समय मे उठाना पड़े। ये छोटे-मोटे सामत राजनीति मे अवसरवादी रोल अदा कर रहे थे।[283] अपने सीमित और सकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे परस्पर विरोधी नरेशो का साथ दे रहे थे। समय आने पर अपने स्वामी के विरुद्ध विद्रोह कर अपने स्वाधीन राज्य की स्थापना की घोषणा कर देना एक साधारण रीति बन गयी थी। इसने देश मे राजनीतिक अव्यवस्था, अराजकता और अकारण के युद्धो की मनोवृत्ति को बढावा दिया।[284] इस व्यवस्था ने षड्यत्र की राजनीति को जन्म दिया। इसने समाज का शोषण भी किया हो तो आश्चर्य नहीं। इसलिए परस्पर विरोधी सामत जब आपस मे टकराते हैं तो जनसाधारण यथावत स्थिति मे ही बने रहते हैं। विकास के सभी मार्ग इस कारण से अवरुद्ध हो जाते हैं। मात्र विशेषाधिकारी वर्ग के कुछ चुने हुए सामत-राजा ही समृद्धि का उपभोग कर पाते हैं।[285]

युद्ध करना एक धार्मिक मान्यता-प्राप्त कृत्य मान लिया गया था। इसलिए तथाकथित प्रभुता सपन्न राज्य परस्पर सदैव सघर्षरत रहने लगे। इस कारण से राजनीतिक स्तर पर देश एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित करने मे पूरी तरह से असफल रहा। ग्यारहवी-बारहवी सदी के विदेशी हमलो के समय मे इसी आपसी राजनीतिक फूट के कारण एक व्यक्ति के रूप मे देश उनका सामना न कर सका। राजनीतिक दृष्टि से ही भारत सात शताब्दियो मे बहुत भेद्य हो गया था। वह सार्वदेशिक राजनीतिक सघर्षों से पीडित था। प्रादेशिक और स्थानीय भक्ति का बोलबाला था।[286] अत मुस्लिम हमले के समय वह ताश के महल की तरह ढह गया।

इसका एक परिणाम और हुआ। अकारण के महत्त्वाकाक्षी युद्धो के कारण यदि व्यापक पैमाने पर जन धन की हानि हुई हो तो आश्चर्य नही। युद्धों मे अकारण ही सैकडो की सख्या मे व्यक्ति मारे गये तथा कई लाख रुपये की सपत्ति का भी नाश हुआ होगा। इसका सदुपयोग अन्य विकासवादी कार्यों तथा जनता के कल्याण के लिए किया जा सकता था।

सकुचित राजनीतिक दृष्टिकोण समस्त भारत को, नेतृत्व देने मे असफल रहा। जनता भी शायद निरतर युद्धो के प्रति उदासीन हो गयी थी। तत्कालीन शासक उनमे राजनीतिक चेतना और जागृति उत्पन्न कराने मे असफल रहे। धर्म की अपेक्षा

यही सकुचितता देश के पतन के लिए अधिक उत्तरदायी थी। इसने केंद्रीकरण की अपेक्षा विकेंद्रीकरणवादी तत्त्वो को प्रोत्साहित किया। इसने आगामी सदियो मे मुस्लिम आक्रांताओ को जनता पर लाद दिया। जनता की राजनीतिक उदासीनता की भावना भी घातक सिद्ध हुई। 'चाहे कोई भी शासक बन, हम तो चेरी पद छोड़कर रानी बनना नही' की भावना उनम विकसित हो गयी थी। जनसाधारण ने राजकर्म, प्रशासन और विशेषकर सैन्य कर्म को राजपूतो और क्षत्रियो का एक अनिवार्य कर्त्तव्य मान लिया था। अत वे इन कार्यों के प्रति सजग नही रहे।[287] इन महत्त्वपूर्ण कामो के प्रति जन-सामान्य की अरुचि देश, काल, समाज एव भावी पीढियो के लिए घातक एव महगी सिद्ध हुई। इसमे कोई सदेह नही कि समकालीन नरेश राजनीतिक विग्रह और आपसी सघर्षों के बाद भी धर्म, कला, सस्कृति, साहित्य और लोक-कल्याण के प्रति उदासीन नही थे, पर जन-चेतना के लिए उन्होने कोई कार्य नही किया। आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक बुराइया, जिन्हे कुछ सीमा तक धार्मिक मान्यता मिली हुई थी, उन्हे भी शासकीय स्तर पर दूर करने का कोई प्रयत्न नही किया गया। इसने लोगो म राष्ट्रभक्ति और देश के प्रति कर्त्तव्य की भावना को जन्म लेने ही न दिया। युद्ध और सैन्य कर्म को राजा-नरेशो-सामतो का कर्त्तव्य मान लेने से भी, जनसाधारण सैनिक गतिविधिया के प्रति उदासीन हो गया। इसका लाभ मुस्लिम हमलावरो को खूब मिला। अपनी कमियो के बावजूद भी धार्मिक प्रवृत्तियो ने सास्कृतिक एकता को सुदृढ करने मे सफलता पायी। वे स्वतत्र रूप से इस काल मे विकसित हो रही थी। यही इस शोध की विषयवस्तु है।

सदर्भ

1 डा० ईश्वरीप्रसाद मेडिवल इडिया, भूमिका, पृ० XXVII
2 डा० एस० आर० शर्मा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 23
3 द एज आफ इपीरियल कन्नौज भूमिका।
4 डा० परमात्मा सरन मध्य युगीन भारत, पृ० 20
5 डा० रतिभानुसिंह नाहर प्राचीन भारत पृ० 615
5A वही पृ० 616
6 डा० ए० एल० श्रीवास्तव *अशोक को भारत का अतिम सम्राट मानते हैं देखिए—दिल्ली सल्तनत* पृ० 21
6A डा० ई० प्र० मेडिवल इडिया पृ० XXXVIII
7 डा० एस० आर० शर्मा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 3

80 एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 256-64
81 वही, भाग I, पृ० 182, खजुराहो शिलालेख।
82 राजशेखर, भूमिका—श्लोक 7, पृ० 2, इसे 'बाल भारत' भी कहते हैं। यह नाटक महीपाल की राजसभा में अभिनीत भी किया गया था।
83 आर० एस० त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० 267-68
84 फरिश्ता, भाग I, पृ० 46
85 अल-उत्बी तारीख-ए-यामिनी (अनु० इलियट डाउसन), पृ० 309
86 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 301
87 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XVIII, पृ० 16-18
88 विमलचंद्र पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 148-49
89 वही, पृ० 150
90 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XV, पृ० 7 9
91 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XIX, पृ० 7 9
92 डी० सी० गांगुली हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 9
93 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 394
94 एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 235-37
95 डी० सी० गांगुली हिस्ट्री आफ द परमार डायनेस्टी, पृ० 90-91
96 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग V, पृ० 17
97 बी० एन० लूनिया युगयुगीन धार, पृ० 23-33 एवं 40-41
द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 69-71
98 वही, पृ० 72 74
99 राधाकुमुद मुकर्जी चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 68 70
100 द क्लासिकल एज, पृ० 65 एवं 153
101 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 317
102 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग VI, पृ० 191
103 अल-काजविनी असर-उल बिलाउद (अनु० इलियट डाउसन), भाग I II, पृ० 97-98 एवं 476-77
105 इब्न उल-अथिर भाग IX, पृ० 242, अलबीरूनी-सरसाऊ, भाग II, पृ० 103
104 वही, एस० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, अनूदित अंश, पृ० 59
106 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 230
107 जयसिंह रचित 'कुमार पाल चरित'।
स्वयप्रभाचार्य कुमार पाल प्रतिबोध (गायकवाड ओरियंटल सिरीज), भाग XIV
108 द क्लासिकल एज, पृ० 159
109 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 89
110 वही
111 एच० सी० रे : डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्थ इंडिया, भाग II, पृ० 1052
112 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 177
113 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XII, पृ० 201

44 डा० विमलचन्द्र पाडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 64
45 एपीग्राफिका इडिका, XXII, पृ० 74 77
46 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 326
47 इडियन एटीक्वेरी, भाग IX, पृ० 179
48 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 61
49 द जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बॅगाल, पृ० 115-18 (1898)
49A रा० ब० पाडे प्राचीन भारत पृ० 327
50 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 115-118
51 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 231
52 वाकाटक गुप्त युग, पृ० 153
53 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ द वैस्टर्न वर्ल्ड, XI, पृ० 272 73
54 हर्षचरित, पृ० 76 ए० एल० श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ० 3
55 ए० एल० श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० 3
56 एस० एन० धर द अरब कानक्वेस्ट आफ सिंध—द इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, XVI, पृ० 596
57 कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग I पृ० 388
58 *रा० ब० पाडे प्राचीन भारत पृ० 289*
59 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ द वैस्टर्न वर्ल्ड, I, पृ० 54 55
60 अलबीरूनी तहकीक ए-मालिल ए हिंद, अनु० सखाऊ, भाग II पृ० 10-13
61 अल उत्बी तारीख ए-यामिनी, इलियट-डाउसन, भाग II, पृ० 14 52
62 फरिश्ता तारीख ए फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग I, पृ० 18
63 कल्हण राजतरगिणी, 7-46-57
63A डा० हेमचद्र रायचौधरी एन एडवास्ड हिस्ट्री आफ इडिया भाग I, पृ० 161
64 ए० एल० श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ० 3
65 रमाशकर त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 237
66 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 296
67 श्री एस० वी० पडित ने इसका सपादन कर भूमिका लिखी है।
68 आर० एस० त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० 192 292
69 राजतरगिणी, 4 142-44
70 हरिवश 3-52 (अनुवादक स्तीन कोनो), पृ० 75 266
71 एपीग्राफिका इडिका, भाग XVII, पृ० 245 253
72 वही, पृ० 108, 112
73 राजोर अभिलेख - एपीग्राफिया इडिका, भाग III, पृ० 263-67
74 ग्वालियर अभिलेख—एपीग्राफिया इडिका, भाग XVIII, पृ० 107-110
75 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 297
76 *हसनोत अभिलेख—एपीग्राफिका इडिका, भाग XII, पृ० 203-4*
77 एपीग्राफिका इडिका, भाग XVIII, पृ० 108 112
78 इडियन ऐंटीक्वेरी, भाग XII, 184 189
79 एपीग्राफिका इडिका, भाग I, पृ० 184 190

80 एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 256-64
81 वही, भाग I, पृ० 182, खजुराहो शिलालेख।
82 राजशेखर, भूमिका — श्लोक 7, पृ० 2, इसे 'बाल भारत' भी कहते हैं। यह नाटक महीपाल की राजसभा में अभिनीत भी किया गया था।
83 आर० एम० त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० 267-68
84 परिवृता, भाग I, पृ० 46
85 अल-उत्बी तारीख-ए-यामिनी (अनु० इलियट डाउसन), पृ० 309
86 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 301
87 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XVIII, पृ० 16-18
88 विमलचंद्र पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 148-49
89 वही, पृ० 150
90 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XV, पृ० 7 9
91 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XIX, पृ० 7 9
92 डी० सी० गागुली हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 9
93 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 394
94 एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 235 37
95 डी० सी० गागुली हिस्ट्री आफ द परमार डायनेस्टी, पृ० 90 91
96 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग V, पृ० 17
97 बी० एन० लूणिया युगयुगीन धार, पृ० 23-33 एव 40-41
द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 69 71
98 वही, पृ० 72 74
99 राधाकुमुद मुकर्जी चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 68 70
100 द क्लासिकल एज, पृ० 65 एव 153
101 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 317
102 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग VI, पृ० 191
103 अल-काजविनी असर उल बिलाउद (अनु० इलियट-डाउसन), भाग I II पृ० 97-98 एव 476-77
105 इब्न उल-असिर भाग IX, पृ० 242, अलबीरूनी-सरनाऊ, भाग II, पृ० 103
104 वही, एस० आर० शर्मा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास, अनूदित अंश, पृ० 59
106 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 230
107 जयसिंह रचित 'कुमार पाल चरित'।
स्वयप्रभाचार्य कुमार पाल प्रतिबोध (गायकवाड ओरियटल सिरीज), भाग XIV
108 द क्लासिकल एज, पृ० 159
109 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 89
110 वही
111 एच० सी० रे डायनिस्टिक हिस्ट्री आफ नार्थ इंडिया, भाग II पृ० 1052
112 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 177
113 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XII, पृ० 201

114 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 82
115 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 106
116 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 82
117 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XIX, पृ० 218-19
118 आर० एस० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 250, बिजोलिया (मेवाड़ी) अभिलेख ।
119 केशवचन्द्र मिश्र चंदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 122-23
120 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 108
121 फरिश्ता (ब्रिग्स), भाग I, पृ० 172
122 वही, पृ० 214 219
123 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 83
123A खजुराहो अभिलेख एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 122
124 रा० व० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 306
125 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XII, पृ० 190
126 सी० वी० वैद्य हिस्ट्री आफ मेडिवल हिंदू इंडिया, भाग II, पृ० 126
127 एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 197-202
128 वही, भाग XVI, पृ० 203
129 वही, भाग I, पृ० 139-146
130 इलियट हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग II, पृ० 464
131 मदनपुर अभिलेख ।
132 आर० एस० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 265
133 एपीग्राफिका इंडिका, भाग VI, पृ० 141
134 द क्लासिकल एज, पृ० 143
135 कैंब्रिज शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 142
136 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XVII, पृ० 242-52
137 आर० सी० मजुमदार हिस्ट्री आफ बंगाल, पृ० 107
138 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 47
139 द इंडियन कल्चर (कलकत्ता), भाग IV, पृ० 266
140 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XVIII, पृ० 304 307
141 द इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XV, पृ० 304-10
142. द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 51-52
143 वही ।
144 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 33
145 वही, पृ० 35
146 वही ।
147 देवपाड़ा प्रस्तरलेख, एपीग्राफिका इंडिका, भाग I, पृ० 309-314
148 मिनहाज-उस-सिराज . तबकात ए-नासिरी (अनु० अतहर अब्बास रिजवी), पृ० 13
149 वही, पृ० 12, 13, 14
150 द क्लासिकल एज, पृ० 147, 155

151 द एज श्राफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 101-2, 104
152 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 61-64 एव 81-87
153 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 68-69
154 जर्नल श्राफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, पृ० 66
155 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 82 83
156 एच० सी० रायचौधरी प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ० 236
157 कारपस इन्स्क्रिप्शन इडीकेरम, भाग III, पृ० 7
158 द क्लासिकल एज, पृ० 236
159 एस० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 12-13
160 द क्लासिकल एज, पृ० 245
161 वही।
162. वही, पृ० 250-254
163 एपीग्राफिका इडिका, भाग IX, पृ० 39
164 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 135
165 आर० एस० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 310
डा० रामकृष्ण भडारकर उसे एक 'स्वतत्र और साधारण शाखा' का मानते हैं।
अर्ली हिस्ट्री आफ डेक्कन, पृ० 136
166 ए० एस० अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एड देअर टाइम्स, पृ० 130
167 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 181
168 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 162
169 वही, पृ० 163
170 वही, पृ० 164
171. वही।
172 वही, पृ० 164-65
173 ए० एस० अल्तेकर : राष्ट्रकूटाज एड देअर टाइम्स।
174 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 1
175 वही, पृ० 2-3
176 वही, पृ० 4
177 द इडियन एटीक्वेरी, भाग XI, पृ० 161
178 रा० ब० पांडे : प्राचीन भारत, पृ० 333
179 राजन लेख, एपीग्राफिका इडिका, भाग XVIII, पृ० 245-53
180 वही।
181 द एज श्राफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 8
182 द इडियन एटीक्वेरी, भाग XII, पृ० 216
183 वही।
184 ए० एस० अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एड देअर टाइम्स, पृ० 87
185 एपीग्राफिका इडिका, भाग V, पृ० 194
186 रा० ब० पांडे : प्राचीन भारत, पृ० 341
187 वही, पृ० 342

188 फरिश्ता (ब्रिग्स), भाग I, पृ० 310
189 जी० एम० मोरेस द कदंब कुल
190 द एपीग्राफिका इंडिका, भाग 8, पृ० 24 34
191 द क्लासिकल एज, पृ० 272
192 वही, पृ० 273
193 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 345
194 द क्लासिकल एज, पृ० 215-17
195 एपीग्राफिका इंडिका, भाग III, पृ० 18
196 कृष्णाराव द गगाज ग्राफ तलक्कड।
197 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 224
198 वही, पृ० 227
199 वही।
200 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 343
201 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 228-29
202 वही।
203 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 343
204 आर० एस० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास पृ० 323
205 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 186-87
206 वही।
207 जियाउद्दीन बर्नी तारीख ए-फिरोजशाही, (अनु० सैयद ग्रतहर अब्बास रिजवी), पृ० 333 34
208 वी० स्मिथ दक्षिण को डेक्कन और साउथ मे विभाजित करते हैं। सभवत साउथ से उनका अर्थ सुदूर दक्षिण से ही है—देखिए अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 323 एव 333
209 गोपालन हिस्ट्री ग्राफ द पल्लवाज आफ काची।
210 बी० वी० के० राव ए हिस्ट्री आफ द अर्ली डायनेस्टीज आफ आध्र देश, पृ० 135
211 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 348
212 हिस्ट्री ग्राफ इंडिया, पृ० 179 83
213 राव ए हिस्ट्री ग्राफ द अर्ली डायनेस्टीज आफ आंध्र देश, पृ० 173
214 ए० कृष्णास्वामी आयगार जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री, मद्रास, भाग II, पृ० 25
215 जर्नल ग्राफ द बिहार एड उडिसा रिसर्च सोसायटी (मार्च-जून, 1933), पृ० 180-83
216 एपीग्राफिका इडिका, भाग VIII पृ० 32 34
216A वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 282
217 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 347
218 सी० वी० वैद्य हिस्ट्री आफ मेडीवल हिंदू इडिया, भाग I, पृ० 281
219 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 347। बप्प को पिता का पर्यायवाची भी माना गया है।
220 गोपालन हिस्ट्री आफ द पल्लवाज ग्राफ काची, पृ० 30-35
221 कसक्कुडी अभिलेख, ऐहोल अभिलेख पुलकेशिन को विजयी बतलाता है। एपीग्राफिका इडिका भाग VI, पृ० 6 साउथ इडियन इन्स्क्रिप्शंस, भाग III, पृ० 343

222 साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शंस, भाग I, पृ० 52
223 वि० च० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 285
224 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज।
226 एन० के० शास्त्री द चोलाज, दो भाग।
226 कोंइस आफ साउथ इंडिया, पृ० 108
227 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 342
228 एन० के० शास्त्री द चोलाज, भाग I, पृ० 29
229 वही।
230 वही, पृ० 38
231 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 352
232 ए काम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग VIII, पृ० 23
233 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग II, पृ० 227
234 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 174
235 द क्लासिकल एज, पृ० 263-64
236 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 124
237 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 230
238 एपीग्राफिका इंडिका, भाग VII, पृ० 194
239 द एज आफ इंपीरिल कन्नौज, पृ० 154
240 एन० के० शास्त्री द चोलाज, पृ० 150
241 साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शंस, भाग II, पृ० 76
242 एपीग्राफिका इंडिका, भाग IV, पृ० 40
243 वही, भाग IX, पृ० 217
244 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 234
245 वही।
246 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 345
247 वही।
248 आर० एस० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 342
249 द साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शंस, भाग II, पृ० 94 95 (स्थलों की पहचान हेतु देखिए—द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 287
250 द जर्नल आफ बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग XIV, पृ० 512-20
एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 185
एन० के० शास्त्री द चोलाज, पृ० 183
251 एन० के० शास्त्री द पाड्यन किंगडम।
252 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XXII, पृ० 62
253 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 335
254 वही, पृ० 337
256 एन० के० शास्त्री द पाड्यन किंगडम, पृ० 9-13
256 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 154
257 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 232

258 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 172
259 वही, पृ० 150
260 वही, पृ० 155
261 द क्लासिकल एज, पृ० 268
262 रा० श० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 358
263 आर० गोपालन हिस्ट्री आफ दी पल्लवाज आफ कांची, पृ० 48
264 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 159
265 रा० श० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 358
266 वही।
267 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 362
268 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग XXXI, पृ० 343
269 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 341
270 रा० श० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 362
271 गिरनार शिलालेख (अनु० डा० आर० के० मुकर्जी, अशोक, पृ० 130
272 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 362, चेरो को ही वे केरल-पुत्र मानते हैं।
273 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 116
264 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 232
275 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ द साउथ इंडिया, पृ० 118
276 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 232
277. वही।
278 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 175
279 रा० श० त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 362-63
280 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 280
281 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 163-64
282 द क्लासिकल एज, पृ० 255, 274
283 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 117
275 वही।
285 जेड० ए० भुट्टो पीलू मोदी द्वारा उद्धृत—जुल्फी माय फ्रेंड, पृ० 58
286 एस० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 17
287 आर० सी० मजुमदार . एन्शियेंट इंडिया, पृ० 387-88

अध्याय 2

धर्म का स्वरूप

धर्म, मानवीय सभ्यता और संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। भारत ही नही, वरन विश्व के अन्य देशो म भी धार्मिक आदर्शों ने मानव समाज को प्रभावित और अनुप्राणित किया है। यूरोप भी इस से अछूता न बचा था। वहा के धार्मिक विग्रह इसके उदाहरण हैं। भारत पर तो धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। प्राचीन काल से ही भारतीयो का जीवन धर्मगत उत्कंठा एव धर्म-चेतना से प्रेरित रहा। समस्त देश और समाज, धर्म की विशाल छाया मे ही क्रियाशील रहा। फलस्वरूप भारतीय सभ्यता संस्कृति के विकास म भारतीय धर्मों ने विशेष योगदान दिया। भारत मे धर्म ने राजधर्म और शासनात्मक आदर्शों, सामाजिक जीवन तथा रीति-रिवाज, आर्थिक क्रियाकलाप और कला के विविध रूपो को भी नही छोडा। चित्रकला, वास्तुकला, सगीत एव नृत्य के साथ ही साहित्य को भी धर्म ने आधार-भूमि प्रदान की।[1]

धर्म ने समस्त जीवन को अनुप्रेरित किया। जन्म से मृत्यु तक धर्म-प्रवणता, कर्म और धर्म का समन्वय और परिवार एव समाज के गठन मे धर्म का अभूतपूर्व योग रहा।[1A] उसने लौकिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय और सतुलन स्थापित करने का सफल प्रयोग किया था। अत धर्म का व्यावहारिक महत्त्व कर्त्तव्य का समुचित पालन था, जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ ही साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष भी करता था।[1B] धर्म और उससे सबधित क्रियाओ और आचरण को धर्म ग्रथो के माध्यम से परिभाषित एव निर्देशित करने का प्रयत्न भी समय समय पर हुआ। फलस्वरूप स्मृतिग्रथो, पुराणो, नीतिशास्त्र और महाकाव्यो ने भारतीयो के जीवन को धर्म की रज्जुओ से बाध दिया। जीवन एव उससे सबधित सभी-कुछ का निर्णय धर्माधर्म के अतर्गत था जो शास्त्रों से सबधित हो गया।[2]

धर्म की उत्पत्ति एव विकास मे कुछ मूल तत्त्व देखे जा सकते है। प्रकृति, जन्म और मृत्यु के गूढ रहस्यो एव सृष्टि के रहस्यात्मक क्रियाकलापो ने मानव मन और मस्तिष्क को प्रारभ से ही आकर्षित एव अचभित कर रखा था। प्रकृति की

विचित्रताओं और गूढ़ व्यापार के प्रति आकर्षण ने मानव को मंत्रमुग्ध कर दिया था। वह कुछ भयभीत भी हुआ था। और तब उसने इन सब रहस्यात्मक गतिविधियों को नियंत्रित करनेवाली सर्वोच्च सत्ता की कल्पना की। अतः धर्म का स्वरूप प्रारंभ में ही रहस्यवादी रहा। मानव ने इस रहस्यात्मकता को जानने, परिभाषित करने का प्रयत्न किया। इस रहस्यात्मक क्रिया की जिज्ञासा में, तब मानव ने मानवीय सत्ता और शक्ति से परे किसी तृतीय शक्ति की कल्पना की। और तब हर काल में नये तत्त्वों को जोड़ा गया। धर्म ने धीरे-धीरे मानव-जीवन में सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर लिया। पूर्व मध्य युग तक धर्म सर्वोपरि हो गया था।

पूर्वकालीन भारतीयों ने अपने जीवन के श्रेष्ठतम और अमूल्य उपादानों को धर्म और उसके प्रतीकों को समर्पित करने में स्वयं को धन्य माना। पूर्व मध्य युगीन भारत इसका अपवाद न था। पहले से चली आ रही परंपराओं को उसने न केवल जारी रखा, वरन उन्हें अधिक विकसित किया। पूर्व एवं तत्कालीन भारतीय इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन स्पष्ट दर्शाता है कि भारत में धर्म जीवन के समस्त क्रियाकलापों पर छाया रहा। भारतीय दर्शन की नींव तो धर्म ही था। हिंदू-जैन बौद्ध धर्मों और उनके उपसंप्रदायों ने अपने अनुयायियों, उनके जीवन, व्यवहार और दर्शन को गहराई तक प्रभावित किया। संसार के अन्य देशों की तुलना में धर्म ने भारतीय सभ्यता संस्कृति पर गहरी छाप छोड़ी।

धर्म भारतीयता का केंद्रबिंदु बन गया। वह भारत में एक जीवन-पद्धति का प्रदाता साबित हुआ। वह आध्यात्मिक और भौतिक जीवन को जोड़नेवाली कड़ी या सेतु सिद्ध हुआ। भौतिक की अपेक्षा उसका आध्यात्मिक पक्ष अधिक सबल था। फलस्वरूप हर युग में भारतीयों का जनजीवन आध्यात्म की ओर अधिक उन्मुख रहा। धर्म ने एक प्रकार की विविधता के साथ ही, भारत को आधारभूत एकता भी प्रदान की। उसने सारे देश को अदृश्य सूत्रों में बांध लिया। यह धार्मिक एकता एक सुदृढ़ बंधन सिद्ध हुई।[3]

भारत में सामाजिक वर्ग विभाजन का आधार धर्म बना। विभिन्न वर्गों के कर्मों का निर्धारण भी धार्मिक स्तर पर हुआ। इसे 'वर्ण धर्म' की संज्ञा दी गई।[3A] संपूर्ण जीवन से संबंधित, वैदिक कालीन 'आश्रम व्यवस्था' भी धर्म संबंधी थी। कालांतर में आश्रम व्यवस्था का लोप हो गया, परंतु धर्म समाज का मूल प्रेरक तत्त्व बना रहा। उसने दैनिक जीवन को काफी गहरे तक नियमित कर दिया। ये सभी नियमन धार्मिक विधियों के रूप में प्रसिद्ध हुए।[4]

धर्म पर आधारित इस लौकिक व्यवस्था ने आध्यात्मिक दार्शनिक चेतना को जाग्रत किया। ऋग्वेदिक काल में ही आध्यात्मिक दार्शनिक चेतना अधिक खर और स्पष्ट थी। इसी काल से, अबाध गति से उसका उन्नयन होता चला गया।[3A] उपनिषदों ने उसे परिपुष्ट किया। ब्राह्मण ग्रंथ इसकी अगली कड़ी थे। वैदिक काल

से ही धर्म व्यक्तिगत आस्था का रूप होते हुए भी समष्टिवादी सिद्धात और आदर्श लेकर विकसित हुआ। अन्य देशो की तुलना मे भारत मे धर्म का स्वरूप अधिक सार्वजनीन और उदारवादी था। यह परपरा इस्लामिक सल्तनत की स्थापना तक कायम रही।

पूर्व मध्ययुगीन धार्मिक विश्वासो-आस्थाओ की नीव प्राचीन भारत मे ही रख दी गयी थी।[5] धर्म के आधारभूत सिद्धात, उसकी मोटी रूपरेखा एव कर्मकाडो मे अधिक अतर न था। इसी कारण से तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था प्राचीन परपरा से एकदम अलग और कटी हुई नही थी। वह सतत प्रवहमान ऐतिहासिक सरिता का ही अग थी। परतु धर्मों का स्वरूप अपने मूल रूप मे नही रह गया। देश, काल, परिस्थितियो और जन-भावनाओ के अनुरूप धर्म के स्वरूप और उससे सबधित कर्मकाडो मे परिवर्तन और परिवर्धन हो जाने मे धर्मों के शुद्ध रूप मे बडा अतर दृष्टिगोचर होता है।[6] पौराणिक हिंदू धर्म मे उपशाखाओ तथा जैन बौद्ध-सप्रदायो मे नये तत्त्वो का समावेश हुआ। फिर भी समाज पर उनका प्रभाव कम न हुआ था। नये उप-सप्रदायो ने नये क्रियाकलापो को जन्म दिया। धीरे-धीरे उन्होंने रूढिवादिता का बाना पहन लिया। और जब स्थापित धर्म रूढ, अप्रगतिशील एव एक ऐसे विश्व मे सीमित हो जाते है जिनकी सीमाए, सदियो पूर्व लिखे धर्म ग्रथो मे ही सिमट जाती हैं, तब वे अपना महत्त्व खो देते हैं।[6A] और तब प्रत्येक धर्म यह दृढतापूर्वक प्रतिपादित करता है कि उसी के धर्म ग्रथ एक प्रकार से 'ईश्वरीय शब्द' हैं। इस कारण वे अभ्रात हैं। धर्म ग्रथ हमे भ्रातिहीन मन-मस्तिष्क के अनुभवो का दिग्दर्शन मात्र कराते है जिन्होने उन्हे दैवी प्रेरणा से प्राप्त किया था। परतु उनके समापणो को भ्रातिहीन नही माना जा सकता।[6B] धर्मों का रूढ रूप अक्सर दिग्भ्रमित करता है। एक दृष्टि से इस रूढि मे जहा एक ओर दोष उत्पन्न हो गये थे वही दूसरी ओर इस रूढ़िवादिता ने समाज को बाधे रखने का काम भी सफलतापूर्वक किया। पूर्व मध्य युग मे धर्म और उसकी व्यवस्थाओ का प्रभाव जन साधारण पर इतना गहरा था कि उसने दैनदिन आचार-विचार और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रीति रिवाजो, रूढियो और सभी प्रकार के व्यवहारो को नियमित तथा नियत्रित कर दिया। कालातर मे ये ही धार्मिक नियम मान लिये गये। भारतीय समाज पर धर्म का व्यापक प्रभाव स्थापित हो गया।

धर्म की व्याख्या

सामान्यतया धर्म का अर्थ धारण करना है। अर्थात सत्कर्म की धारणा करके उसका निर्वहन करना ही सच्चा धर्म है। धर्म, न्याय, नैतिकता, सदाचार, सत्य, सुकर्म आदि सद्गुणो का समूह है। अन्याय, अनैतिकता, कदाचार, असत्य, कुकर्म आदि अधर्म हैं। अधर्म धर्म का विरोधी है। व्याकरण के अनुसार धर्म 'धृ' (धारणे) धातु

मे 'मन' प्रत्यय लगाने से बनता है। इसका सीधा अर्थ 'धारण' करना है। ऋग्वेद सहिता मे 'धर्म को किसी वस्तु या व्यक्ति की स्थायी वृत्ति, प्रकृति या स्वभाव मात्र माना है।[7] परतु विभिन्न कालो मे धर्माचार्यों ने धातुगत अर्थ के आधार पर धर्म को अनेक लक्षणात्मक और व्यजनात्मक रूप मे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

सत्य और धर्म का गहरा सबध है, पर वह सत्य विश्वास ही नहीं, वरन् सदाचारमय जीवन भी है। सच्चा धर्मानुयायी अन्यो के विश्वास की चिंता नही करता।[7A] धर्म केवल बाह्य सदाचारमय आचरण पर ही आधारित नहीं है। विचार और आचरण के साथ ही उसमे आत्मिक प्रेरणा का होना भी आवश्यक है। परतु अब तक धर्म का उपयोग ज्ञान और नैतिक गुण के अनुशासन मे विकास हेतु ही किया गया।[7B]

धर्म ने एक सतत प्रक्रिया के माध्यम से एव दिव्य कर्म के हेतु मानव को नैतिक बनाने का सदैव प्रयत्न किया। अत धर्म विश्वास की अपेक्षा व्यवहार पर अधिक बल देता है। पर कालातर मे विश्वास और व्यवहार मे खाई बढती चली गयी। विश्वास के बिना किया गया कर्म मृत कर्म के समान है। अत धर्म व्यक्ति और समाज की प्रगति के लिए एक अमूल्य माध्यम है।[7C]

धर्म का आत्मानुभूति के साथ बडा सबध है। वरना बाह्य आचरण आडबर मात्र रह जाएगा। धर्म शैक्षणिक पृथक्करण अथवा धार्मिक कर्मकाड मात्र नहीं है। वह एक प्रकार का जीवन और 'आत्मिक' अनुभूति भी है। वह दर्शन की विद्याओ का ज्ञान कराता है। वह अनुभवो पर आधारित है। यह अनुभूति भावनात्मक रोमाच अथवा रुचि पर नही टिकी है। यह तो समस्त व्यक्तित्व का अनुभव है। दर्शन का स्वीकृत रूप उसम है। धर्म 'स्व' के विशेष दृष्टिकोण को लिये हुए है। सामान्यतया उसे बौद्धिक विचार लालित्यमय स्वरूप और नैतिक मूल्या का सम्मिश्रण कहा जाता है।[8] परतु नैतिकता को धर्म से बिलकुल अलग भी नही माना जा सकता। य दोनों तो एक ही है। जहा धर्म है वहा नैतिकता है ही। दोनो अभिन्न हैं।[9] धर्म और उसमे अतर्निहित नैतिकता मानवीय स्वभाव को परिवर्तित कर देती है। धर्म आत्मिक सत्य के साथ हमारा अटूट सबध जोडता है। वह हमे निरतर शुद्ध और पवित्र रखता है।[10]

धर्म का स्वरूप व्यक्ति तक ही सीमित नही है। और न ही धर्म, व्यक्ति और समाज के बीच कोई विभाजन रेखा खीची जा सकती है। धर्म के माध्यम से ही सामाजिक नवसुधारणा का काम सभव है। परतु धर्म समाज-सुधारवादी आदोलन नही बन सकता। वह तो समाज को जोडने वाला एक तत्त्व है। एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम स मानव अपनी अभिलाषाओ को प्रकट कर उन पर विजय प्राप्त कर सकता है।[10A]

भारत मे धर्म जीवन के सभी क्रियाकलापो पर छाया हुआ है। उसका सबध अर्थ, काम और मोक्ष से भी है। इसीलिए धर्म व्यक्तिवादी के साथ समष्टिवादी तत्त्वो को भी अपने साथ लिये चलता है। अर्थात् जो मेरे लिए अच्छा और सुखकर है, वही दूसरे के लिए भी होना चाहिए।[11] धर्म और सकुचितता तथा कट्टरता परस्पर एक-दूसरे के विरोधी हैं। इसीलिए धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इतनी व्यापक हो गई है कि इसका प्रयोग मानव क्रिया के सभी रूपो के निरूपण तथा निर्माण के लिए किया गया है। भारतीय सस्कृति की तीन विशेषताए—आध्यामित्कता (Spirituality), सबलता (Vitality) और बौद्धिकता (Intellectuality) धर्म की धारणा के विभिन्न रूपो से ही आविर्भूत हुई हैं।[12]

इसका अर्थ यह नही कि धर्म ने भौतिकता को दुर्लक्षित कर रखा है। परतु उसका झुकाव अधिकतर आध्यात्मिक और नैतिक पक्ष की ओर ही रहता है। उसन अपने अनुयायियो की आध्यात्मिक बौद्धिकता को ही जाग्रत करने मे रुचि दर्शायी है। इसलिए धर्म मानव जीवन-सबधी वह धारणा बन गया है, जिसके द्वारा मानव जीवन के लौकिक और अलौकिक पक्षो को एक सूत्र मे पिरोकर, एक आदर्श समाज म व्यक्तियो के अधिकार तथा कर्तव्यो को एक व्यापक सिद्धात म निरूपित करने का प्रयास किया गया है। धर्म एक ओर मानव की सपूर्ण नैतिक क्रियाओ की विधि है और दूसरी ओर वह एक प्रकार का ऐसा दर्पण है जिसम मनुष्य की समस्त नैतिक क्रियाओ की प्रतिच्छाया स्पष्ट दिखायी देती है।[13]

धर्म ने लौकिक, अलौकिक, नैतिक, सत्य, न्याय और सदाचार आदि के पक्षो के साथ सामाजिक और व्यक्तिगत आचार-विचार तथा व्यवहारो को इस प्रकार से गूथ दिया है कि उसके किसी भी एक तत्त्व की विवेचना उसके सपूर्ण स्वरूप को हमारे सामने उजागर नही कर पाती। इसीलिए धर्म का स्वरूप और परिभाषा जटिल है। उसके अतिम और शाश्वत स्वरूप का निर्धारण एक दुष्कर कार्य है।[14] फिर भी सभी युगो मे विद्वान् पडितो ने धर्म की लक्षणात्मक और व्यजात्मक आधार पर परिभाषाए प्रस्तुत की है। वैशेषिक दर्शन के अधिष्ठाता महर्षि कणाद के विचार से "जिससे लौकिक सुख तथा पारलौकिक कल्याण अर्थात् परमार्थ की सिद्धि हो, वह धर्म है।" 'यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म.।'[15] अत धर्म भौतिकी कल्याण के साथ ही आध्यात्मिक उत्थान की प्रेरणा भी देता है। वह "धर्मादर्थं प्रभवति, धर्मात्प्रभवति सुखम्। धर्मेण लभते सर्वं,' धर्मसारमिद जगत ।।" धर्म सारे सुखो, लाभ का कारण और इस जगत् का सारा तत्त्व है। इहलौकिक सुख के साथ ही पारलौकिकत्व की ओर आकर्षित करना उसका ध्येय है। इसीलिए जीवन का उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष म निहित है। उसम एक सतुलन बनाये रखना है। इसम भी धर्म के कारण भौतिक तत्त्वो का स्थान गौण हो जाता है। फिर भी इन सभी तत्त्वो के मध्य धर्म ने सतुलन करने का प्रयत्न किया है।

कूर्म', 'वराह', 'नृसिंह', 'वामन', 'कृष्ण' आदि अवतार अत्यधिक लोकप्रिय थे। मत्स्यपुराण वायुपुराण और हरिवंश में विस्तार से इनकी चर्चा की गयी।[62] अवतारो की संख्या वैष्णव मत मे बढ़ती चली गयी। महाकवि क्षेमेंद्र का 'दशावतार चरित' इसकी प्रतिध्वनि है।[63] बुद्ध और जैन तीर्थंकर भी अवतार मान लिये गये।[64] बुद्ध के भी कई अवतारो की कल्पना की गयी। ध्यानी बुद्ध, बोधिसत्त्व, बोधिसत्त्व मंजुश्री बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर, अमिताभ आदि भी कई अवतार थे।[65] जैनो के चौबीस तीर्थंकरो के सामान हिंदुओ और बौद्धो के 24 अवतारो और बोधिसत्त्वो की कल्पना कर डाली गयी।[66] इनमे भावसाम्य स्थापित हो गया।[67] इनकी अलौकिक शक्तियो मे विश्वास किया जाने लगा। अब ये साधारण धर्म प्रवर्तक नही रह गये। इन्हे 'भगवान' और देवताओ की श्रेणी मे स्थापित कर दिया गया। गीता ने हिंदुओ के अवतारवाद के सिद्धात का समर्थन ही किया था।[68] अत अवतारवाद का पूर्व मध्ययुगीन धार्मिक विचारो पर गहरा प्रभाव पडा था। अवतारवाद व बहुदेववाद ने धर्म मे कई कर्मकाडो और अनुष्ठानो को प्रोत्साहित किया।

धार्मिक अनुष्ठान

पूर्व मध्य युग के सभी धर्मों के धार्मिक सिद्धातो म परिवर्तन आ गये थे। सभी धर्मों ने धार्मिक अनुष्ठानो को अपना लिया था। कर्मकाडो और भक्तिगीतो तथा मत्रो के साथ बुद्ध, तीर्थंकरो और पौराणिक देवी देवताओ की पूजा अर्चना की जाने लगी।[69] धूप-दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि का उपयोग पूजा हेतु किया जाने लगा। देवी देवताओ, बुद्ध तथा जैन तीर्थंकरो की भक्ति की जाने लगी थी। इनकी प्रार्थना स्तुति मे मत्रो, धारिणियो और चर्यापदो की रचना की गयी। दोहो का निर्माण भी किया गया।[70] पूजन के समय इनका जाप किया जाता था। बौद्धो के 'तारा स्तोत्र', 'प्रत्यगिरा-धारिणी' इसके उदाहरण हैं।[71] जैनो ने जिन पूजा के साथ इन कर्मकाडो को भी अपनाया।[72] बौद्धो हिंदुओ की धार्मिक तात्रिक पूजा ने भी कई कर्मकाडो को जन्म दिया। प्रत्येक देवता को लगनेवाली पूजन सबधी सामग्री भी निश्चित कर दी गयी।[73] इसन उपासना-विधि को दुरूह बना दिया। यह अधिक दर्शनीय हो गयी। इससे उपासना विधि, धार्मिक अनुष्ठानो का स्वरूप भारी भरकम, दुरूह और व्ययशील हो गया।

अहिंसा का प्रचार

इस काल के भारतीय धर्मों द्वारा अहिंसा को धार्मिक आदर्श के रूप म अपना लिया गया।[74] यह बौद्धो-जैनो को ब्राह्मण धर्म की देन थी।[75] परतु अहिंसा अत्यत प्राचीन आदर्श था। ब्राह्मण-ग्रथो मे 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' (किसी भी जीव की हत्या न करो) का उपदेश था।[76] गीता ने इसका समर्थन किया।[77] बौद्धो जैनो ने इसको

व्यापक पैमाने पर अपनाया। उसका प्रचार किया। यद्यपि हिंदुओ और बौद्धो मे उपासना की तात्रिक पद्धति गहराई तक घर कर गयी थी, परतु अब बलि का स्वरूप भी अहिंसा के प्रभाव के कारण बदल गया। पशु अथवा नर-बलि के स्थान पर जौ, तिल, तडुल, पुरोडोश (रोटी या पीठी), यव आदि का उपयोग होने लगा।[78] अहिंसा, धार्मिक विश्वास की प्रमुख कडी बन गयी।

तत्रवाद

पूर्व मध्य युग मे हिंदू-बौद्ध धर्मो मे तत्रवादी प्रवृत्तियो का जोर बढ गया था।[79] बौद्ध धर्म तो इस काल मे तात्रिक धर्म ही बन बैठा था।[80] इसने कई गुह्य और विकृत पद्धतियो को जन्म दिया। इस पर अलग से आगे प्रकाश डाला जायगा।

धार्मिक उदारता एव सहिष्णुता

पूर्व मध्य युग मे अनेक धर्मो, उप-सप्रदायो और उपासना विधियो के होते हुए भी देश मे कुल मिलाकर धार्मिक शाति, सहयोग और सामजस्य था।[81] विभिन्न धर्मावलबियो मे आपस मे धार्मिक द्वेष, घृणा और वैमनस्य न था। इसका यह अर्थ नही कि यह विरोध बिलकुल शून्य था। पौराणिक साहित्य मे बौद्ध विरोधी भावनाएं स्पष्ट झलकती हैं।[82] हिंदुओ बौद्धो के बीच साप-नेवले का सबध था।[83] अग, वग, कलिग, सौराष्ट्र और मगध मे बौद्धो-जैनो का प्रबल प्रभाव था। अत ब्राह्मणो ने धार्मिक तौर पर इन भागो की यात्रा निषिद्ध कर दी थी।[84]

इस विग्रह का स्वरूप धार्मिक कट्टरता और सकुचितता से परे था।[85] शासको की धार्मिक उदारता आदर्श थी। प्रतिहारो, गहडवारो, चदेलो और चालुक्यो ने तथा परमारो ने हिंदू, बौद्ध, जैन धर्मो को समान रूप से धन, सपत्ति, भूमि, ग्राम आदि दान मे दिये।[86] लोग धार्मिक विषयो पर बहुत कम झगडते थे। अधिक से अधिक उनकी लडाई शाब्दिक होती थी। धार्मिक शास्त्रार्थो मे वे कभी भी अपने प्राण, शरीर या सपत्ति जोखिम मे नही डालते थे।[87]

उपरोक्त तत्त्वो ने पूर्व मध्य युग मे धार्मिक एकता की आधारभूत भावना को बढावा दिया। देश मे भव्य मदिरो-देवालयो का निर्माण हुआ। पूजा की विधिया भारी-भरकम हो गयी। उसने लौकिक रूप धारण कर लिया। लोग पाप पुण्य, स्वर्ग-नरक तथा जीवन-मृत्यु के आवागमन से मोक्ष पाने की चिताओ से ग्रसित रहने लगे। उन्हें कलियुग की निस्सारता मे विश्वास होने लगा।[88] धर्म के व्यापक प्रभाव ने सारे देश को अपने घेरे मे ले लिया।

संदर्भ

1 आर० के० मुकर्जी द फण्डमेटल यूनिटी आफ इंडिया, पृ० 65 66
1A मैक्स वेबर रिलियस आफ इंडिया, पृ० 52 54
1B डा० जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 573
2 आपस्तव सूत्र-1, शास्त्रेण धर्म नियम ।
द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 232
3 आर० के० मुकर्जी द फण्डामेटल यूनिटी आफ इंडिया, पृ० 18 19
3A जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 573
4 राधाकृष्णन द हिंदू व्यू आफ लाइफ, पृ० 58
4A देखिए ऋग्वेद 1-164, 18-121, 18 129
5 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 257
6 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 297
6A राधाकृष्णन द रिकवरी आफ फेथ, पृ० 16
6B वही, पृ० 17
7 ऋग्वेद 1-22 18 'धर्माणि धारयन'
7A "रिलिजन इज नाट करेक्ट बिलिफ बट राइटियस लिविंग । द टू रिलिजस नेवर वरी अबाउट अदर पिपल्स बिलिफ" —डा० राधाकृष्णन द हिन्दू व्यू आफ लाइफ, पृ० 37
7B डा० राधाकृष्णन द रिकवरी आफ फेथ, पृ० 15
7C वही, पृ० 16/26
8 राधाकृष्णन द हिन्दू व्यू आफ लाइफ, पृ० 13
9 जे० बी० कृपलानी गाधी—हिज लाइफ एण्ड फिलासफी, पृ० 337-339
10 महात्मा गाधी मेरा धर्म—हरिजन, 10/12/1940, पृ० 445
10A राधाकृष्णन . द रिकवरी आफ फेथ, पृ० 27
11 जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रपिता, पृ० 34 35
12 बी० जी० गोखले इडियन थॉट थ्रू द एजेज, पृ० 24
13 वही ।
14 गौरीशकर भट्ट भारतीय संस्कृति—एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ० 328
15 कल्याण हिन्दू संस्कृति अक, पृ० 370
15A जयशकर मिश्र प्रा० भा० का सा० इति०, पृ० 574
15B वही ।
15C महाभाष्य 6/1/84, पृ० 217
16 द क्लासिकल एज, पृ० 372
17 रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 372
17A राधाकृष्णन अवर हेरिटेज, पृ० 32
18 एम० एल० विद्यार्थी इडियन कल्चर थ्रू द एजेज, पृ० 200
19 हॉपकिन्स रिलिजन्स आफ इडिया, पृ० 1
20 द एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257
21 वही ।

22 केशवचन्द्र मिश्र चन्देल और उनका राजत्व काल, पृ० 200
23 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 258
24 द लासिकल एज, पृ० 366
आर० के० मुकर्जी, द गुप्ता एम्पायर, पृ० 134 (1947, सस्करण)
25 बील बुद्धिस्ट रिकार्डस आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० 206-84
26 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 398
रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 370
27 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257
28 एन० के० शास्त्री हि० आफ सा० इ०, पृ० 422 23
29 के० एम० मुशी द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, फोरवर्ड, पृ० XIV
30 वही।
31 आर० सी० मजुमदार एनसियट इडिया, पृ० 457
32 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 258
33 वही।
34 वही, पृ० 257
35 वही।
35A विनयतोष भट्टाचार्य द इडियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी—इन्ट्रोडक्शन, पृ० 1 2 और 344 378
36 मिनहाज-उस सिराज तबकात ए-नासिरी (अनु० रिजवी) 148, (पृ० 12)
37 सी० वी० वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग 2, पृ० 279 80 (मराठी)
38 अलबी रूनी, भाग 1, पृ० 19 20
39 डेविड एन० लारेंजेन द कापालिक्स ऐंड कालमुख्स
द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 410-414
आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 117
40 सी० वी० वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग 2, पृ० 279-80 (मराठी)
41 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 411-14
42 द क्लासिकल एज, पृ० 404
43 वही।
44 ब्यूलहर द इडियन सेक्ट्स् आफ जैनिज्म, पृ० 77
45 इस्लामिक कल्चर (हैदराबाद), भाग VIII
रामचन्द्र वर्मा अरब और भारत सबध
46 इस्लामिक कल्चर, भाग VIII, पृ०1 30-131
47 अर्ली मुस्लिम अकाउट्स आफ द हिन्दू रिलिजन
जनल आफ द बाम्बे ब्राच आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, नम्बर 35-36 भाग IV, पृ० 9 10 एव XIV
48 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 483
49 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनैतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 74-78
50 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 452
51 वही, पृ० 461

52 पी० डी० अग्निहोत्री पातंजलि कालीन भारत, पृ० 555
53 अलबीरूनी भाग 1, पृ० 121-122
54 रामाश्रम अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए
55 जान मार्शल मोहेन जोदडो एण्ड इडस सिविलाइजेशन
55A वि० चि० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 77-78
55B ऋग्वेद 1 60, 1-1-1, 1-154-4 3-46-3, 8-41
55C बार्थ रिलिजन्स आफ इडिया, पृ० 6-13, 67-70
55D वही।
56 वासुदेव उपाध्याय पूर्वमध्य कालीन भारत, पृ० 343
57 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257
58 मजुश्री मूल कल्प, पृ० 508
59 गुह्य समाज, पृ० 2
60 मजुश्री मूल कल्प, पृ० 647-48
60A देखिए खजुराहो के जैन मदिर
61 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 343
61A अवतारवाद पर विशेष सामग्री हेतु देखिए अध्याय 5
62 मत्स्य पुराण, 262/48
भागवत पुराण
63 ए० बी० कीथ ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिचरेचर, पृ० 136
64 द एज आफ इम्पीरिकल कन्नौज, पृ० 257
65 विनयतोष भट्टाचार्य इडियन आइकोनोग्राफी, पृ० 32-154
66 चतुरसेन शास्त्री भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ० 852
67 वही।
68 गीता, 4, 718
69 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257
70 पी० सी० बागची, बौद्ध धर्म और साहित्य, पृ० 71-79
71 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 263
72 भारतीय विद्या (हिन्दी गुजराती)। 1-73
73 बाणभट्ट हर्षचरित, द्वितीय उच्छवास, पृ० 184
74 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257 (1955 सस्करण)
75 वही।
76 रामधारीसिंह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 104
डा० दिनकर अगिरस को अहिंसा का मूल प्रवर्तक मानते हैं। पृ० 105-106
77 गीता, 16-11
78 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 119
79 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 257
80 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 400
अनागारिका गरुड 2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 358
81 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 256

82 कूर्म पुराण, अध्याय 16
83 दिनकर संस्करण के चार अध्याय, पृ० 266
84 अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च ।
तीर्थ-यात्रा विना गत्वा संस्कार गर्हति ॥—सिद्धान्त कौमुदी
85 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 256
86 इंडियन एन्टीक्वेरी, भाग XI, पृ० 248
87 अलबीरूनी, भाग 1, पृ० 19
88 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 372

अध्याय 3

शैव संप्रदाय

शैव सप्रदाय की उत्पत्ति

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत म शैव धर्म प्राचीनतम है। समाज मे शिव सर्वाधिक लोकप्रिय देवता रहे हैं। समाज मे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा रही। शिव और उनसे सबधित उप-सप्रदाय *वैष्णव धर्म के समान ही काफी महत्वशाली रहे।* शिव, विष्णु के समकक्ष ही मान जाते है। शिव की उत्पत्ति, ब्रह्मा के समान विष्णु के नाभिकमल से नही हुई। वे स्वयभू माने गए। उनका अपना स्वतत्र अस्तित्व है। वे विष्णु के समान अवतारवादी नही हैं।[1] हिंदू धर्म मे शिव का स्वरूप अत्यत ही उदात्त रहा है।[2]

उत्पत्ति

शिव-उत्पत्ति-विषयक कल्पना को वैदिक साहित्य मे ढूढने का प्रयत्न किया गया। उन्हे ऋग्वेद मे वर्णित रुद्र से जोडा गया।[3] उन्हे अनार्यों से सबधित भी माना गया है। आर्यों ने शिव की कल्पना को अनार्यों से ही लिया था।[4] इसमे सदेह नही कि मानव-सभ्यता के प्रारभिक चरणो से ही शिव-पूजा के चिह्न मिलते हैं।[5] सिंधु-सभ्यता ने इसके ठोस प्रमाण प्रस्तुत कर दिए। शैव धर्म का विकास मोहेन-जोदडो के वासियो ने किया था।[6] इन्हे द्रविड और ऑष्ट्रिक (आस्ट्रोलायड) माना गया है।[7] शिव सबधी कल्पना का विकास इन्ही ऑष्ट्रिक-नीग्रो ने किया था।[8] भूमध्य-सागरीय ऑष्ट्रिक-द्रविड शिव विषयक धार्मिक भाव अपने साथ भारत लाए।[9] परतु स्थिति ऐसी नही है। बीला नदी घाटी[10] की गुफा मे पाये गये सीगधारी पशुओ से घिरे पुरुष का चित्र शिव की आदिम उपस्थिति की ओर इगित करता है।[11] मोहेन-जोदडो के प्रमाण अधिक स्पष्ट हैं।

सिंधु-सभ्यता मे शिव आकृति-उत्कीर्ण मुहरें[12] पायी गयी हैं। इसके आधार पर इन्हे शिव ही माना गया है।[13] इनमे से एक के सिर पर सीग हैं। यह पशुओ

हाथी सिंह, भैसे आदि से घिरी है।[14] यह शिव के तीन रूपो—त्रिमुख, पशुपति और योगेश्वर अथवा महायोगी का परिचायक है।[15] सिंधुकालीन चीनी मिट्टी एक मुहर मे योगासीन शिव के दोनो ओर एव सामने दो-दो नाग है। और शिव गले मे सर्प धारण करते ही हैं, अत यह योगी सर्पयुक्त शिव ही है।[16] एक अन्य मुहर मे शिव के शिकारी रूप का आकलन किया गया है।[17] अत शिव प्राग् ऐतिहासिक (Proto Historic) है।[18]

व्याख्या

शिव का तमिल नाम 'सिवन' है जिसका अर्थ रक्तवर्ण होता है।[19] आर्यों मे 'नील लोहित' देवत्व का ही परिचायक है।[20] शिव का सस्कृत नाम शभू, तमिल 'सेंबू' से मिलता है। तमिल म इसका अर्थ तावा या लाल धातु होता है।[21] उत्तरकालीन पौराणिक कथाओ के अनुसार शिव विषपान के कारण नीलकठ अथवा नील लोहित हो गए थे। वैसे शिव को कल्याण के अर्थ मे भी लिया जाना चाहिए।

सिंधु सभ्यता मे शिव की कल्पना मूर्त और अमूर्त रूपो मे की गयी थी। पशुपति, योगीश्वर, शिव का मूर्त तथा लिंग अमूर्त रूप था।[22] शिव का लिंग रूप आर्येतर जातियो की देन है।[23] वैसे धर्मानद कोसावी लिंग पूजा का आविर्भाव जैन-बौद्धो की दुर्दांत काम भावना को मानते है।[24] उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर यह अग्राह्य है। लिंग-पूजन आदि काल से चला आया है। वैसे देखा जाए तो प्राचीन काल मे, विश्व के सभी भागो मे कमोवेश, लिंग-पूजा की प्रथा प्रचलित थी।[24A] वह लौकिक धर्म का अविभाज्य अग थी। अपने उर्वर कर्म के कारण लिंग जनता की उपासना का केंद्रबिंदु बन गया था। धर्म के रहस्यवादी रूप को समझने के लिए यदि प्राकृतिक मुहावरे का उपयोग किया जाए तो हम कह सकते हैं कि पिता स्वर्ग (Father Heaven) ने पृथ्वी मा (Mothre Earth) पर जीवन के सृजन हेतु लिंग रूप धारण किया था।[24B] मगर यह इरविन की कल्पना की उडान मात्र है। लिंगोपासना सैंधव्यो से पहले भी आदिम जातियो मे सभवत प्रचलित थी।[24C] अत लिंग-पूजन आदि काल से चला आ रहा है।

सिंधु सभ्यता मे छोटे से लेकर चार फुट तक के लिंग मिले है।[25] लिंग मिस्र, यूनान-रोम मे भी था।[26] एक सीमा तक लिंग आस्टरिको की देन है।[27] ऋग्वेद मे 'शिश्नदेव' का उल्लेख मिलता है।[28] यहा शिश्न सर्प के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[28A] अत लिंग-पूजन जैन-बौद्धो से भी अधिक प्राचीन था। शिव का लिंग-रूप सृजनशीलता का परिचायक था।[29] सिंधु सभ्यता का शिव पशुपति-लिंग एक सम्माननीय देवता था। वह सृजन और कल्याण का देव था।

सिंधु सभ्यता के शिव का आर्यों के रुद्र से समन्वय हुआ था। सर जॉन मार्शल और डा० बी० के० घोष के विचार से आर्यों ने सैंधव्य शिव-पशुपति को अपना लिया था।[30] डा० एस० के० चटर्जी के मत से द्रविड़ो के रक्तवर्णी देवता (शिव) को ही आर्यों ने रुध्र (Rudhra) कहा जो उनके रुद्र से मेल खाता है।[31] परन्तु ऐतिहासिक तथ्य कुछ और ही इगित करते हैं। आर्य द्रविड़ सपर्क और सघर्ष के काल मे आर्यों ने शिव को 'शिश्नदेवा' कहकर विरोध किया।[32] वैदिक युग के प्रारभिक काल मे उन्होंने उसे सरलतापूर्वक स्वीकारा नही। इसके साथ ही आर्य साहित्य मे 'रुद्र' की एक सम्माननीय देवता के रूप मे अलग से उपस्थिति है। वैदिक रुद्र की कल्पना दो रूपो मे की गई थी। रुद्र का पहला स्वरूप सहारक है, जबकि दूसरा सौम्य। आर्यों के सहारक रुद्र तेजोमय आयुध धारण करते है।[33] इनसे वे मानवो और पशुओ का सहार करते हैं।[34] अत आर्य उनस द्विपदो (मानवो) और चतुष्पदो (पशुओ) की रक्षा की प्रार्थना करते है।[35] आर्य अपन रुद्र के प्रशसक नही है, वरन उनसे भय खाते हैं।[36] इसीलिए वे रुद्र से सहारकारी रूप के स्थान पर कल्याणकारी प्रकाश का अनुग्रह प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।[37] उग्र रूप मे रुद्र रौद्र है और शिव रूप मे जगत का मगल करनेवाले हैं।[37A] रुद्र और शिव दोनो अभिन्न है।[37B] रुद्र-शिव के रूप का निर्धारण करते हुए अथर्ववेद उन्हे 'कृष्णोदर, लाल पीठवाला, धनुर्धारी', 'नील केशी, और सहस्राक्ष' निरूपित करता है।[37C] 'इस आधार पर डा० पी० एल० भार्गव[38] के मतानुसार *वैदिक रुद्र सूर्य, उसकी किरणें और ग्रीष्म के देवता थे।* भारत म सूर्य की प्रखर किरणें और उसका ताप द्विपदो और चतुष्पदो के त्रास का कारण था।[38A] अत रुद्र सूर्य के पर्याय हैं।[38B] परतु रुद्र मात्र सूर्य से उद्भूत नही हुए हैं, न ही वे सूर्य के पर्याय है। उनकी उत्पत्ति सभी देवताओ के उग्र अश के समन्वय से हुई है।[38C] रुद्र पशुओ के रक्षक होन स पशुप अथवा पशुपति हैं।[38D] पर उनकी सहारक शक्ति आर्यों के लिए भय का कारण है। अत पूर्व वैदिक युग के रुद्र सहार के देवता है।

आर्यों के रुद्र सैधव्य शिव के समान अकेले नही हैं। उनके साथ अनेक रुद्रो का वर्णन मिलता है।[39] अथर्ववेद मे रुद्र-विषयक मान्यता को अधिक विस्तार मिला। वे आकाश अतरिक्ष, पशुओ और भूतो के स्वामी-नियत्रक माने गए। उन्हे 'उपहतु'[39A] और भूतपति[39B] स्वीकार किया गया। उन्हे 'नर बलि' से प्रसन्न किया *जाता था।*[39C] अत रुद्र ने आर्य देव मडल मे उच्च *स्थान पा लिया था।*[40] उन्हे 'महादेव', 'देवाधिदेव' और 'ईशान' भी कहा जाने लगा। कालातर म रुद्र का व्रात्यो से सबध स्थापित हुआ।[40A] ये व्रात्य स्पष्ट रूप से वैदिक धर्म-विरोधी आर्येतर अथवा अनार्य वर्ग था।[40B]

शिव-रुद्र समन्वय शिव का आर्यीकरण

सैंधव्य शिव एक ठोस आधारभूमि पर है। उनसे सबधित पुरावशेष उन्हे एक ऐतिहासिक वास्तविकता प्रदान करते है, जबकि वैदिक रुद्र एक काल्पनिक देव हैं। उनकी उत्पत्ति सूर्य एव अन्य देवो की उग्र शक्तियों के समन्वय से हुई है। पर दोनो के अधिकाश गुण धर्म समान हैं। सैंधव्य शिव और वैदिक रुद्र, दोनो ही सृजन एव सहार के साथ ही द्विपदो और चतुष्पदो के स्वामी हैं। इसीलिए कालातर मे आर्यों के वैर-विरोध के बावजूद भी शिव-रुद्र के समन्वय की ऐतिहासिक प्रक्रिया आरभ हो गई। शतरुद्रिय म रुद्र को 'गिरीश', 'गिरित्र',[41] 'कृत्तिवासस'[42] कहा गया। सभवतया वे प्रेत आत्माओ से भी सबधित हैं।[43] आर्य-पूर्वोत्तर भारतीय आदिम जातियो के एक देवता (शिव) मे भी इन्ही गुणो का समावेश है।[44] अत शिव-रुद्र का समन्वय एक सामान्य रीति थी।[45]

आर्यों ने अनार्य सुदरियो से विवाह सबध कायम करना आरभ कर दिया था। आर्यों की अनार्य पत्नियो ने अपने पितृ-गृह के देवता शिव-पशुपति लिंग की पूजा को पति-गृह मे भी जारी रखा। यद्यपि उन्हे आर्यों के तीव्र विरोध का सामना करना पडा।[46] परतु वे अपनी धार्मिक आस्थाओ पर अटल रही। उन्होंने शिव-लिंग के पूजन को जारी रखा। आर्य अनार्यों के सामाजिक सहयोग ने भी इस प्रक्रिया को गति दी होगी।

अथर्ववेद मे शिव रुद्र का समन्वय इस सक्रमणात्मक परिवर्तन का परिचायक है। वह ऋग्वेद के रुद्र से एक कदम आगे हैं।[47] इस काल मे आर्य-अनार्य देवताओ म सहयोग एव समन्वय आरभ हो गया था। आर्यों ने अनार्य देवी देवताओ को अपनाना शुरू कर दिया था।[48] शिव ने रुद्र के नाम-चिह्न धारण कर लिये। वैदिक रुद्र के पूर्वज उनके उत्तराधिकारी बन बैठे।[49]

आर्यों का ब्राह्मण वर्ग शिव की लिग-आकृति का विरोधी था।[50] वे उसे घृणित मानते थे।[51] पर वे उसका अधिक समय तक विरोध न कर सके। उपनिषद् साहित्य म लिग-योनि की 'विश्वानि रूपाणि' के अर्थों मे चर्चा मिलती है।[52] अत आर्यों द्वारा लिग का अपनाया जाना एकदम एकाकी कार्य न था। कालातर मे उन्होने शिव लिंग के स्वरूप को सुधार कर अपने अनुरूप ढाल लिया।[53] लिंग का सुधरा रूप महाभारत मे अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो गया।[54]

समन्वय की इस प्रक्रिया को प्रजापति ने गति प्रदान की। प्रजापति ही शिव के समकक्ष थे। वे सृजन और पालन के देवता थे।[55] उत्तर सहिता काल म शिव ने उन्हे अपदस्थ कर दिया, क्योंकि प्रजापति ने अपनी पुत्री से ही व्यभिचार किया था।[56] अत शिव ने सरलतापूर्वक उनका स्थान ले लिया। वे शीघ्र ही प्रजापति की अपेक्षा 'जन देवता' (God of the People) बन बैठे।[57] ब्राह्मण-उपनिषद् काल तक आते-

आते शिव की देव वर्ग मे पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई।[58] वैदिक रुद्र पूरी तरह से अनार्य शिव में समाहित हो गए।[59] इस युग के रुद्र मे वैदिक रुद्र के चिह्न दृष्टिगोचर नही होते।[59A]

समन्वय की इस प्रक्रिया का जन्मदाता सघर्ष है क्योंकि सघर्ष समन्वय और सहयोग को जन्म देता है, परस्पर विरोधी सस्कृतिया दीर्घ काल तक सघर्षरत नही रह सकती। उन्हे मैत्री के आधार ढूढना ही पडते है। अनार्य शिव-लिंग की सृजनात्मक एव आर्य रुद्र की सहारात्मक शक्तियो का भी समन्वय हो गया। धीरे-धीरे शिव सृजन सहार के देवता बन गये। शिव-रुद्र लिंग समन्वय की इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया का सर्वोत्तम उदाहरण बन बैठे। महाकाव्य काल तक दोनो मे अभेद कायम हो गया। उनके अलग अस्तित्व की कल्पना दुरूह हो उठी। समाज मे शिव उच्चतर और निम्नतर जातियो के आराध्य बन गये।[60]

गण वाहन समन्वय

रुद्र व शिव के गणो व वाहनो का भी सम्मिश्रण हो गया। आर्य-रुद्र के गण अब शिव के साथ हो गये।[61] सिंधु सभ्यता मे वृषभ शिव के साथ था।[62] श्वेत वृषभ का विवरण 'प्रभ्रर्वेवृषभाश्वितीचे' के रूप म ऋग्वेद म मिलता है।[63] यही उत्तर वैदिक काल मे शिव का वाहन बना।[64] आर्यों द्वारा शिव को अपना लिये जाने पर उनका स्वरूप निखरता चला गया।

शिव के नाम

हिंदुओ मे शिव पहले देवता हैं जिनकी मानवाकृति का चित्रण किया गया। शिवलिंग और शिव की आकृति सिंधु-सभ्यता की मुहरो म पायी जाती है।[65] आर्य देवगण मरुत, इद्र, वरुण आदि की मूर्तिया आकृतिया नही मिलती। इसी प्रकार दिना अवतारा के भी शिव के कई नाम मिलत है। आर्यों के विग्रह-विरोध के कम होत ही शिव 'आदि देव' बन गये।[66] अथर्व वद न उन्हे 'महादेव', 'शिव' और 'सदाशिव' कहा।[67] इन नामो मे भी शिव की सृजन-सहारात्मक शक्तियो के समन्वय का परिचय मिलता है। कालातर मे आर्य देवता के रूप मे उनके नाम 'पशुपति', 'शभु', 'मृत्युजय', 'विश्वनाथ', 'उमेश', 'महेश्वर' आदि हुए।[68] अपने अनार्य नामो म वे 'अघोर', 'विरुपाक्ष', 'उग्र', 'कापाल मालिन', 'भैरव', 'महाभैरव', 'भूनपति' कहे जाने लगे।[69] इतिहास की प्रवहमान धारा के साथ ही शिव के नामो की सख्या मे वृद्धि भी हो चली। वे 'नीलकठ', 'देवाधिदेव', 'शूलपाणि', 'हर', 'पिनाकिन' आदि कहलान लगे।[70]

मेगास्थनीज डायोनीसस (Dionysus) नामक देवता का उल्लेख करता है। डायोनीसस शिव ही थे।[89] मौर्यकालीन रूढ़िवादी देवताओं[90] मे शिव की गणना की गयी।[91] इस समय उनकी मूर्तियां भी बनती थी।[92] शिव पहाडी क्षेत्रो में अधिक लोकप्रिय थे।[93] अशोक अपने जीवन के आरंभिक काल मे शैव था।[94] अशोक के उत्तराधिकारियो मे से एक जालौक और उसकी महारानी ईशानदेवी बौद्ध-विरोधी और शैव-समर्थक थे।[95] जालौक प्रतिदिन नियम से नदीश क्षेत्र मे 'स्वयभू जेष्ठेश्वर' (शिव) की पूजा करता था।[96]

शैव धर्म का प्रभाव बढता चला जा रहा था। राज वश और जन साधारण मे वह समान रूप से लोकप्रिय हो रहा था। पाणिनी शिव के 'भव', 'शर्व' नामो का उल्लेख करते हैं।[97] पतजलि के समय मे त्र्यबक (शिव) को 'हवि' दी जाती थी जो शतरुद्रिय कहाती थी।[98] शिव भागवत त्रिशूल लेकर चलते थे। वे शिव की भक्ति करत थे।[98A] इस युग मे शिबी और आक्सोड्रे काई जातियां भी शिव की उपासना मे सलग्न थी।[98B] शुग-कण्व-सातवाहन काल मे शिव उपासको ने स्वतत्र सप्रदाय बना लिया था। शिव चिह्न त्रिशूल धारण करने वाले 'अय शूल' और 'आय शूलिक' कहलाते थे।[99] इसी काल मे लकुलीश नामक आचार्य ने शिव-भक्तो को व्यवस्थित रूप से सगठित कर पाशुपत धर्म का प्रवर्त्तन किया।[100] लकुलीश बाद मे शिव के अवतार माने गये।[101] पाशुपत मत से ही अन्य मतो का विकास हुआ।[102] शिव राजवशो मे भी लोकप्रिय हो गये थे। सातवाहन वशी नरेशो ने अपने नाम 'शिवश्री', 'शिवस्कद', 'रुद्र सातकर्णी' आदि रख लिये।[103]

शैव धर्म के महत्त्वपूर्ण बनते ही उसे अन्य धर्मों की प्रतिद्वद्विता का सामना करना पडा। मालवा मे ईसा पूर्व की प्रथम सदी का कालकाचार्य कथानक इस तथ्य का उद्घाटन करता है।[104] इस सघर्ष ने शैव धर्म को अधिक जनप्रिय बनाया। विदेशी भी शिव के लोकमान्य रूप से प्रभावित हुए। मथुरा के शको के नाम 'शिवदत्त', 'शिवघोष' इसका समर्थन करते हैं।[105]

शैव धर्म का प्रचार तेजी से बढा। अब देशी-विदेशी नरेश इसे अपनाने लगे थे। कुषाण राज विम कद फिसेज ने अपनी मुद्राओ पर खरोष्ट्री मे 'सर्व लोग ईसवरस महीस्वरस' उत्कीर्ण किया। मुद्राओं के पृष्ठभाग पर नदी तथा जटाजूट एव त्रिशूल-धारी, व्याघ्राम्बरयुक्त शिव का रूपाकन कराया।[106] इन मुद्राओ ने शिव की मानव-आकृति का रूप ऐतिहासिक आधार पर निश्चित कर दिया। सैधव्य पशुपति-शिव, पशुपति तो रहा, पर उसके सीग हटा दिये गये। उसने आकर्षक एव सुदर मानव-रूप धारण कर लिया। विम के कारण ही शायद पश्चिमोत्तर सीमात, बेक्ट्रिया, गाधार, हेरात आदि मे भी शिव-पूजा फैली, क्योकि ये भाग उसी के अधीन थे।

बौद्ध होते हुए भी कुषाण कनिष्क शिव से प्रभावित रहा। उसकी मुद्राओ पर भी शिव (Oesho) बने रहे।[107] कुषाणराज वासुदेव तो पूरी तरह से शैव हो गया।[108]

इंडो सीथियन म्युज और गोंडोफर्नीज को भी शिव अच्छे लगे। उन्होंने अपनी मुद्राओं पर द्विभुज तथा चतुर्भुज शिव एवं नंदी को अंकित किया।[109] अब शिव मुद्राओं तक ही सीमित न रह गए। कुषाणकाल में ही शिव पार्वती ने मूर्त रूप धारण किया।[110] शायद यह शिव की प्रथम ज्ञात मूर्ति है। इन विदेशी राजवंशों ने शैव धर्म को पश्चिम भारत में प्रचारित कर दिया।

अब शिव अधिक मान्य हो गए। विदिशा पद्मावती, मथुरा, कांतिपुरी के नाग वंशी शासक शैव थे। उन्होंने 'भार शिव' उपाधि धारण कर ली। कंधे पर शिव-लिंग धारण करने पर वे गौरव अनुभव करने लगे।[111] अपने आराध्य शिव को प्रसन्न, 'शिव परितुष्ट शासनाना' करने हेतु ही वे काम करने लगे।[112]

गुप्त काल में वैदिक धर्म के रूप में शैव धर्म का भी काफी प्रचार हुआ। उनके लौकिक रूप का निर्धारण हो गया। शिव कोकमुखस्वामी,[113] स्थाणु,[114] शूरभोगेश्वर,[115] त्रिपुरांतक[116] आदि नामों से पूजित थे। शिव के नाम पर मंदिरों का निर्माण होने लगा था। मथुरा के उदिताचार्य ने अपने गुरु कपिल और परम गुरु उपमित की स्मृति में कपिलेश्वर और उपमितेश्वर शिव की स्थापना की थी।[117] अब शिव के मंदिर भी बनने लगे थे। कांगड़ा में मिहिर लक्ष्मी नामक महिला ने मिहिरेश्वर[118] और जलधर में ईश्वरा[119] नामक महिला ने शिव-मंदिरों का निर्माण कराया। महाराज कुमार गुप्त के मंत्री पृथ्वीशेण ने पृथ्वीश्वर शिव-लिंग की स्थापना की थी।[120] शिव के नाम पर जुलूसों का भी आयोजन होने लगा। ये देव द्रोणी कहलाते थे।[121] शिव के संबंध में एक नए तथ्य की जानकारी मिलती है। प्रयाग प्रशस्ति में उनकी जटा से गंगा के निकलने का उल्लेख मिलता है। शिव-जटा से निकला गंगा-जल त्रिलोक को पुनीत करनेवाला माना गया।[122] अभिलेख शिव वंदना से आरंभ होने लगे थे। कुमार गुप्त कालीन करमदंडा का अभिलेख 'नमो महादेवाय' इसका उदाहरण है।[123] चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के मंत्री वीरसेन शाव ने 'भक्त्या भगवतश्शम्भो' भगवान शंभु की भक्ति में उदयगिरी गुहा का निर्माण कराया था।[124]

शिव और शैव धर्म ने लौकिक रूप धारण कर लिया था। शिव पूजा व्यापक रूप में होने लगी थी। लोगों की प्रवृत्ति अपने, अपने परिजनों तथा गुरुओं के नाम पर शिव मंदिर व शिवलिंग की स्थापना करने की हो गई थी। यदि महाकवि कालिदास को गुप्त काल का मान लें तो शिव की आरती पत्र, पुष्प, धूप, दीप, अगरु से होने लगी थी।[125] मालवा में उज्जैनी के महाकाल शैव धर्म के प्रमुख तीर्थ थे। कालिदास शिवभक्त थे। उज्जयनी के महाकाल की आराधना में उन्होंने अनेक पदों का निर्माण किया।[126] उनके नाटक 'कुमारसंभव' के नायक व केंद्रबिंदु तो शिव ही हैं। 'रघुवंश' में भी महाकवि ने अपने आराध्य 'पार्वती-परमेश्वरों' की वंदना की।[127]

गुप्त काल तक शिव के स्वरूप का स्पष्ट निर्धारण हो गया था। उनके चिह्न, उनके गण वाहन आदि भी निश्चित हो गए थे। कालिदास, शिव के मानवीय रूप, उनके अलकार-चिह्न चद्रमा, सर्प, गजाजिन, शिव द्वारा चिता-भस्म लेपन और उनके दिगबर होने का स्पष्ट वर्णन करता है।[128] उनके तीन नेत्र थे।

शिव परिवार के सदस्यो—पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, उनकी पत्नियो और वाहनो—के सबध मे कथाओ का समाज मे प्रचलन हो गया था। 'कुमारसभव' उसकी साहित्यिक परिणति मात्र थी। ईसा पूर्व से पहले ही इसकी रूपरेखा बनती चली गई होगी। गुप्तकाल मे वह पूर्णता पर पहुच गयी। महाकवि भारवी का 'किरातार्जुनीयम्' भी इसी तारतम्य की कडी है।

अधिकाश पुराणो का सकलन गुप्त-काल की देन मानी जाती है। 'वायु' और 'मत्स्य' पुराणो म शिव की विशेष चर्चा की गई।[129] अग्निपुराण मे शिवलिंग स्थापना, पूजा-अर्चा के नियम, शिव-होम करते समय 'ओम् नम शिवाय' मत्र का जाप तथा शिव के अनादि, आत्म-तृप्त, सर्वव्यापी रूप का विवेचन किया गया।[130] इन कथाओ ने उन्हे इतना लोकप्रिय बनाया कि बाद मे 'लिंग पुराण' और 'शिव पुराण' भी रचे गए।

पुराणो न शिव के दूसरे रूप को भी प्रस्तुत किया। वह उनके अश्लील चरित्र को प्रस्तुत करते हैं।[131] शिव का विष्णु के मोहिनी रूप पर आसक्त होने की कथा उसका उदाहरण है।[132] शिव की कामक्रीडा ने उन्हे अपमानित कराया।[133] इन सब कथाओ ने शिव को विविधता प्रदान की। वे लोकरजक बन गए। उन्होंने शिव को उदार, दयालु, भोला-भडारी, भूत प्रेतो का स्वामी, फक्कड, अघोर, मादक द्रव्यो का सेवक तथा औढर निरूपित कर दिया।[134] इस विविधता ने शिव मे आकर्षण उत्पन्न कर दिया।

यहा एक तथ्य ध्यान देने योग्य है। कालिदास ने 'कुमारसभव' मे तारक वध की कथा को अपनी विषय-वस्तु बनाया है। अत शिव-सबधी कथाए कालिदास के पूर्व ही व्यापक पैमाने पर समाज मे प्रचलित हो गई थी। इन्ही का सकलन पुराणो मे किया गया। उक्त तथ्य कालिदास के काल निर्णय मे सहायक होगा। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि गुप्तो का राजकीय सरक्षण नही मिलने के बाद भी शिव समाज के सभी वर्गों म समान रूप से पूजित थे।

पौराणिक मान्यता मिलन के बाद शैव धर्म तेजी से सारे भारत मे फैला। गुप्तो के बाद के राजवशो और विदेशी हमलावरो ने भी उन्हे अपनाया। इन्होंने अपने को शैव दर्शाने मे गौरव का अनुभव किया। परिव्राजक वश के अभिलेख उन्ह शैव बतलाते हैं।[135] वल्लभी के मैत्रक परम माहेश्वर थे।[136] वाकाटक भी शैव थे।[137] मौखरी नरेश अनतिवर्मन ने बराबर गुफा मे भूतपति की मूर्ति स्थापित की था।[138] इस युग मे विदेशी हूण नरेश मिहिरकुल स्थाणु (शिव) भक्त था।[139]

मिहिरकुल ने भी अपने आदिम देवो को छाड शिवभक्ति अपना ली थी।[140]

शैव धर्म की जनप्रियता के कारण बौद्धो स उसकी प्रतिद्वंद्विता आरभ हो गई। हर्ष काल मे शैव धर्म स सबधित वैताल साधना और अन्य साधनाए आरभ हो गई थी। शैव धर्म की इस तान्त्रिक पद्धति को भी दक्षिण और उत्तर मे अपना लिया गया था। अनार्यों से सबधित महाभैरव, जो शिव के ही रूप थे, तान्त्रिक उपासना के केंद्र बन गए। वर्धन वश के सस्थापक पुष्यभूति ने मान्त्रिक रीति से ही शिव के उग्र रूप की पूजा की थी। इस काम मे उन्हे दाक्षिणात्य महाभैरवाचार्य का सहयोग मिला था।[141]

हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म को पुन गौरव दिलाने का असफल प्रयत्न किया। परतु शिव की जनप्रियता से बाध्य होकर शिव की प्रतिमा का उसने प्रयाग सम्मेलन म पूजन किया। उसका उसने जुलूस भी निकाला।[142]

बौद्ध धर्म का पतन शैव धर्म के लिए लाभदायी सिद्ध हुआ। शैवो ने पौराणिक धर्मों के साथ मिलकर बौद्धो को भारतीय धर्म के मच पर से हटाने म पूरा सहयोग दिया। इसमे शैव भक्त नरेश उसके साथ थे। बगाल के शशाक न इस काम मे शैवो का साथ दिया। उसने कुशीनगर वाराणसी के बीच के इलाके मे बौद्ध स्तूपो विहारो का ध्वस कर बुद्ध के स्थान पर शिव को स्थापित किया।[143]

इस काल मे शैव धर्म सारे देश म लोकप्रिय आदोलन की तरह फैल गया। देश भर मे सैकडो शिव मदिरों की स्थापना साधारण जना, नरेशो और सामतो ने कर डाली। शिव मूर्ति और लिंग दोनो रूपो म पूजित थे। पाशुपत, कापालधारिन आदि शैव सप्रदाय के अनुयायी काश्मीर[144] से कन्याकुमारी और सिंध-सौराष्ट्र से बगाल-उडीसा तक फैले थे। सातवी सदी के बौद्ध-चीनी यात्री ह्वेनसाग न कपिशा, नगरहार, पुष्करावती म महेश्वर पूजको को देखा था।[145] हर्षवर्धन की राजधानी मे ही शिव का नीलवर्णी पत्थरो से बना भव्य मदिर था। लोग ढोल, ताशे, मृदग आदि वाद्य-यन्त्रो से शिव का भजन-पूजन करते थ।[146]

शैवो म मूर्तिपूजा और लिंगपूजा का व्यापक प्रचार हो गया था। मूर्तियां धातुओं की बनने लगी थी। शिवभक्त भस्म, कपाल-माला आदि धारण करन लगे थे। शैवो के उप-सप्रदाय एक ही स्थान पर एकत्र हो अपने आराध्य शिव की उपासना करते थे। वाराणसी शैवो का गढ था। यहा की शिवमूर्ति 100 फुट ऊची थी। वह आकर्षक, जीवत और सुदर थी।[147] मालवा मे शिव का महाकाल रूप और निमाड के महेश्वर में महेश्वरदेव रूप पूजित था।[148]

शिव भारत तक ही सीमित न रहे। वे अपनी मूर्ति और लिंग सहित गाधार, सिंध और लगल तक जा पहुचे। ह्वेनसाग ने इन भागो म कई पाशुपतो को देखा।[149]

दक्षिण भारत मे शैव धर्म

शिव की उपासना उत्तर-दक्षिण म साथ साथ ही आरभ हुई थी। दक्षिण के द्राविड प्रोटो-आस्ट्रोलायड और प्रोटो-मेडीटरेटियन ही थे।[150] इनमे से कुछ सीधे दक्षिण म आकर बसे थे और बाकी वे उत्तर भारत से आए। अपन साथ ये अपने देव शिव को भी लाये।[151] अतएव शैव धर्म दक्षिण भारत का प्राचीन धर्म था।[152] ईसा पूर्व की चौथी सदी म जैनाचार्य भद्रबाहु न दक्षिण म जैन मत का प्रचार तेजी से किया।[153] अत शैव-जैन प्रतिद्वद्विता दक्षिण मे आरभ हो गई।

आध्र-सातवाहन काल मे शिव धर्म की लोकप्रियता बढी। सातवाहन ने शिव की वदना म मगलाचरण की रचना की थी।[154] शिव के नाम पर नामकरण एक सामान्य प्रक्रिया हो गई थी। शिवपालित, शिवदत्त, शिवघोष, शिवभूति इसके परिचायक हैं। दक्षिण म शिव के साथ उनका वाहन भी पूजनीय माना गया। ऋषावदात, नदिन ऋषिदातक नाम इसका समर्थन करते हैं।[155]

सगम कालीन साहित्यिक कृति 'अहनानूरू' म शिव के लक्षणो का वर्णन मिलता है। अन्य रचनाओ शिल्पादिकारम',[156] 'मणिमेक्लाई' एव 'पुरम'[157] म शैव धर्म पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया।[158]

इसका फल यह हुआ कि दक्षिण के राजवश शिव पूजा की ओर आकर्षित हुए। वेंगी का सालकायन वश शैव बन गया। वैसे सालकायण का अर्थ ही नदी होता है।[159] इस वश के चित्रमेद्रवर्मन ने शिवलिंगयुक्त मदिर बनवाया।[160]

दक्षिण म शिव के भैरव रूप की भी पूजा होती थी। वाकाटक राज रुद्रसेन प्रथम महाभैरव का उपासक था।[161]

दक्षिण म शैवो का एक नया सप्रदाय चल निकला था। इसके अनुयायी जटा रखत थ। वे जटामार शैव कहलाते थे। राष्ट्रकूट नरेश अभिमन्यु ने उन्हें ग्राम दान म दिया था।[162] शैवो का प्रभाव बढता जा रहा था। शैव आचार्य अनेक जैन समर्थक शासको को शैव बनाने मे सफल हुए। पल्लवेश महेद्रवर्मन प्रथम, सत अप्पार से प्रभावित हो जैन धर्म त्याग कर शैव बन गए।[163] उसने शैव बनने के बाद कई शिव लिंगो और मूर्तियो की स्थापना की।

दक्षिण म भी शैव अनुयायियो ने अपने नाम पर शिव का नामकरण किया और मदिरो का निर्माण कराया। वे अब सोमगिरीश्वर, लोकश्वर त्रैलोकेश्वर कहलाए।[164]

शिव भारत तक ही सीमित न रहे। भारतीय उपनिवेशवादियो के साथ वे दक्षिण पूर्व एशिया के देशो मे भी जा पहुचे। जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो तथा हिंदेशिया म जिन पौराणिक देवी देवताओ की मूर्तिया मिलती हैं, उनम शिव भी हैं।[165] वहा भी शिव पर से लोग अपने नाम रुद्रवर्मन, शभूवर्मन रखने लगे।[166]

तुर्किस्तान और खेतान के लोग भी शिव से अपरिचित न थे।[167]

पूर्व मध्य युग में शिव की लौकिकता

पूर्व मध्य युग तक आते-आते शैव धर्म ने व्यापक स्वरूप धारण कर लिया। वैदिक धर्म का वह महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। शैव धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक तत्त्व जोड़े गये। इस कारण से शिव के स्वरूप मे भी परिवर्तन हुआ। वे स्थूल और भावमय बन गये। उनमें पुरुषोचित कठोर रूक्षता और नारियोचित कोमल कमनीयता विकसित हो गयी। वे अत्यंत उद्दाम और उदार बन गये। वे क्रोधी भी हैं और अत्यंत करुण तथा दयालु भी हैं। उनका कल्याणकारी रूप सृजन करता है और क्रोधी रूप सहार कर देता है। परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय ही शिव-तत्त्व है। सुदरत्व के साथ ही उनमें योग-भोग का विचित्र सम्मिश्रण है। इसने शैव धर्म को लोकरजकता प्रदान कर दी। शैव धर्म की इस विविधता मे भारतीय सस्कृति की विविधता है। शिव की एकता के समान भारतीय एकता है। शैव धर्म देश को एक सूत्र मे बाधने मे सफल हुआ।[168]

डा० ईश्वरीप्रसाद[169] का विचार है कि पूर्व मध्य युग मे वैष्णव धर्म की तुलना मे शैव मत पृष्ठभूमि मे चला गया था। वास्तव मे स्थिति ऐसी न थी। शैव और वैष्णव धर्म न केवल समता के आधार पर साथ-साथ चले थे; वरन शिव ने आठवी सदी के पूर्व ही हिंदू धर्म के सभी देवताओं मे उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था।[170] शिव अर्चना का प्रसार विशेष रूप और रीति से हो रहा था। शिव-अर्चना की अपेक्षा अग्निहोत्रादि वैदिक मार्ग पृष्ठभूमि में चले गये थे।[171] पूर्व मध्य युगीन नरेशों के सरक्षण, आचार्यों द्वारा इस धर्म को दी गयी दार्शनिकता और शैव सतों के शिव-भक्ति प्रचार ने इसे श्रेष्ठ बना दिया।[172] इस काल मे अनेक भव्य शिव मदिर बने। शैव आगमों की रचना हुई। सन् 1000 ई० तक यह धर्म विध्याचल के दक्षिणी भाग का ही नही वरन समस्त हिंदुओं द्वारा मान्य भारत का सार्वलौकिक धर्म बन गया।[173]

लौकिक रूप

पूर्व मध्य काल मे शैव धर्म ने लौकिक और सुधारवादी रूप धारण कर लिया। समाधि, ध्यान, आत्म-शुद्धि, जप आदि क्रियाएं अपना ली गयी।[174] जप के समय 'ओम् नमः शिवाय', 'नमः महादेवाय' तथा 'ओम् ब्राह्मणो निर्गुण व्यापक नित्य शिव' का उच्चारण किया जाने लगा।[175] प्रातः-साय आरती, प्रार्थना के साथ शिव की पूजा होने लगी। भस्म धारण, हर-हर शब्द का उच्चारण, हुड्कारा आदि विचित्र चेष्टाएं भी निकल पड़ी। इस कारण से लोग कभी-कभी शिव का उपहास भी करने लगे।[176] कई प्रकार के उत्सव और मेले शैवों द्वारा आयोजित किये जाने

लगे।[177]

शिव-लिंग, पिंडि अथवा मूर्ति को जल से धोया जाने लगा। शिव मंदिर की सीढ़ियां भी धोयी जाती थीं। गंगा के पवित्र जल से शिव-लिंग पर अभिषेक होने लगा। मंदिरों में सैकड़ों की संख्या में ब्राह्मण शिव-पूजा-अर्चा करने लगे। सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर में एक हजार ब्राह्मण प्रतिदिन शिव-पूजा में संलग्न थे।[178] शिव के सामने देवदासियां नृत्य-गान करती थीं।[179] शिव की पूजा हेतु हर प्रहर बाद ब्राह्मणों का दल मंदिर में आता था। धूप-दीप, गन्ध पुष्प, मधुर आदि शिव-पूजा में प्रयुक्त होने लगे। प्रतिदिन सहस्र लिंग बनाकर उनकी पूजा की प्रथा भी चल पड़ी।[180]

अनेक जटिल, विचित्र, कट्टर तथा कापालिकों-कालमुखों की भयंकर उपासना-विधियां होने के बाद भी शैव मत सरल, सुबोध और आकर्षक था। मंदिर में नृत्य-गान होने से इन कलाओं को प्रोत्साहन मिला। यह माना जाने लगा था कि शिव के डमरू से सप्त सुर निकले हैं। उनके तांडव नृत्य और लास्य शास्त्रीय नृत्य के जनक हैं। शिव स्वयं राग-रागिनियों के प्रणेता हैं। शिव का अट्टहास कल्पना की चरमसीमा है।[181] शिव से सभी रसों की निष्पत्ति मानी गयी।

शिव, जाति विशेष तक सीमित न रह गये। अपितु भारत की सभी जातियों के वे उपास्य बन गये। प्रत्येक जाति किसी न किसी रूप में उनकी पूजा करती थी। इस कारण शैव मत में तेरह सम्प्रदाय उठ खड़े हुए।[182] इनमें कापालिक, पाशुपत, लिंगायत, कालमुख, काश्मीरी शैव आदि मुख्य थे।[183] शिव सर्वव्यापी हो गये। श्मशान, खेत, पर्वत, नदी-तट, रंगशाला और रणभूमि में उन्हें उपस्थित माना गया। योगियों ने जप से, संगीत व नृत्यकारों ने वाद्य-यंत्रों, गीतों और नृत्य से उनका अभिनन्दन करना आरंभ कर दिया। योद्धाओं ने हर-हर का रण-निनाद करते हुए प्राण त्यागे।[184] शिव-उपासना समाज के सभी वर्गों को जोड़ने वाली कड़ी बन गयी।[185]

शैव मत ने सुधारवादी रूप अपनाया। उसने सामाजिक सुधारों को प्रोत्साहन दिया। इस काल में लिंगायतों ने इसे जाति-सुधार का माध्यम बना लिया। उन्होंने पशु हिंसा का विरोध कर अहिंसा का समर्थन किया।[186] उन्होंने सन्यास तथा तप को अमान्य कर दिया। अनुशासित, नियमबद्ध जीवन और नैतिक आचार को अपनाया।[187] विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति दी गयी। रजस्वला को अपवित्र नहीं माना गया।[188] लिंगायत बन जाने पर वे पारिया (शूद्र) को ब्राह्मण के समान मानते थे। जन्म अथवा लिंग के आधार पर किसी प्रकार के वर्गभेद को प्रोत्साहन नहीं दिया गया।[189] उपवास, उत्सव और बलि उचित नहीं माने गये।[190] बाल-विवाह को अनुचित ठहरा दिया गया। विवाह के पूर्व कन्याओं की स्वीकृति ली जाने लगी। तलाक को भी मान्यता मिल गयी। मृत्यु पर कर्मकांडों का प्रावधान

समाप्त कर दिया गया।[191] ब्राउन[192] इसे ईसाई मत की देन मानते है, क्याकि मलयालम मे उस काल मे कुछ ईसाई बस गये थे। परतु यह ठीक नही है। सुधार और प्रगति हिंदू धर्म की विशेषता है। वह बाहर से आयोजित नही है। शैवो के य सुधार विशुद्ध भारतीय परपरा के अनुरूप थे।[193] शिव इतना अधिक महत्त्व पा गये कि उन्होने कई भागो मे बुद्ध को अपदस्थ कर दिया। नेपाल मे शिव ने यही किया।[194] शिव सर्वमान्य हो गये। इस युग मे उन्हे जो दार्शनिक पृष्ठभूमि मिली, उसने उन्हे गौरव प्रदान कर दिया। इस सबध मे पूर्व मध्य युगीन शैव दर्शन की समीक्षा समीचीन होगी।

शैव दर्शन

शैव दर्शन पर सर्वाधिक कार्य पूर्व मध्य युग म ही हुआ। भारतीय दर्शन के इतिहास का यह श्रेष्ठ युग था। इस काल मे अनेक दार्शनिक हुए। इनम कुमारिल भट्ट, शकराचार्य, मडनमिश्र प्रमुख थे। यद्यपि इनका शैव दर्शन से कोई सीधा सबध न था। ये इस युग के दिग्गज थे।

दर्शन के रहस्यवादी विचारो ने आरभ से ही मानव को आकर्षित किया है। मानव कल्याण को किसी अलौकिक शक्ति पर आधारित माना गया। शिव उसी अलौकिक शक्ति का प्रतीक है। शैव आगम, शिव को ही शैव दर्शन का अधिष्ठाता मानते हैं।[195] इसमे भी कई सप्रदायो के समान अनेक दार्शनिक दल बन गये। इनमे अनेकातिक वास्तविकतावादियो से लेकर आदर्श एकेश्वरवादी[196] तक हैं। परतु इन सभी के केंद्रबिंदु शिव ही हैं।

पाशुपत-लाकुलिश सिद्धात

पाशुपत सप्रदाय शैव धर्म की अत्यत प्राचीन शाखा है। यह पाशुपत-लकुलीश के नाम से भी जाना जाता है।[197] ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी के शैवाचार्य लकुलीश ने इस दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान की थी।[198] प्रारभ में यह पाशुपत-लकुलीश मत ही था। कालातर मे अन्य शैव सप्रदायो का भी गठन हुआ। अन्य शैव मतो के होते हुए भी पाशुपत मुख्य सप्रदाय बना रहा। अन्य शैव मतो के होते हुए भी पाशुपतो के विषय मे हम मोहेन-जादडो काल से लेकर हर्ष युग तक बराबर सूचनाए मिलती हैं।[199] पूर्व मध्य युग मे भी वैष्णव-आचार्य रामानुज ने पशुपति सप्रदाय के सिद्धातो का उल्लेख किया था। 'सर्वदर्शन-सग्रह' मे माधवाचार्य ने भी लकुलीश-मताव-लबियो के दर्शन और व्यवहार पर विस्तृत सूचनाए दी हैं।[200] मैसूर के कई अभिलेखो मे भी 'लाकुल सप्रदाय'[201] का उल्लेख मिलता हैं। इस काल की पाशुपत मान्य-ताओ के अनुसार लकुलीश पुनः 'चुल्लिक' के रूप मे अवतरित हुए थे।[202] वैसे लकुलीश को भी शिव का अवतार मान लिया गया था।[203] चुल्लिक के अतिरिक्त

आचार्य सोमेश्वर ने भी लाकुल-सिद्धात को विकसित करने मे पूर्व मध्य युग (सन् 1030) मे विशेष योगदान दिया था।[204] कई शैवाचार्यों ने उसे दार्शनिक स्तर पर परिपुष्ट किया। सर्वाधिक कार्य पूर्व मध्य युग मे ही हुआ।

शिव से रहस्यात्मक 'सामविद'[205] स्थापित करने के लिए 'योग', 'विधि' आदि तत्त्व प्रत्येक शैव के लिए जरूरी है। शकराचार्य ने पाशुपत मत के पचार्थ अर्थात् पाच सिद्धातो— 'कार्य', 'कारण', 'योग', 'विधि' तथा 'दुखात अथवा मोक्ष' का निरूपण किया है। शैव दर्शनाचार्यों ने 'कार्य' सबध 'विद्या' तथा 'अविद्या' और 'पशु' से रखा है। शैवो ने विद्या' के भेद प्रभेद की भी चर्चा की है। 'कारण' सृष्टि-सहार तथा अनुग्रह' करने वाले तत्त्वो पर प्रकाश डालता है। 'योग' का महत्व स्वय शिव ने प्रस्तुत किया है। वे सबसे बडे योगीश्वर है। 'जीव' का 'शिव' से सबध जोडनेवाला साधन ही योग है। 'अक्षर', 'मत्र' तथा 'जप' 'क्रियायुक्त' योग है। जब कि 'अनुभव' और 'तत्त्वज्ञान' 'क्रियाहीन' योग कहलाता है। इन सब मे 'विधि' ही धर्म सिद्धि कराती है। सूत्रकारो ने 'नृत्य', 'गीत', 'हुडकारा', 'नमस्कार' सहित शिवोपासना' करत हुए लकुलीश के आधार पर प्रात मध्याह्न-सध्या समय भस्म-स्नान का निर्देश दिया है। लिंग धारण' और 'निर्माल्य' का धारण भी उचित है। 'दुःखान्त', 'अनात्मक' और 'सात्मक' होता है।[206] इसी प्रकार ज्ञान भी 'दर्शन' श्रवण' 'मनन' 'विज्ञान' तथा 'सर्वज्ञत्व' पर आधारित है।[207] अन्य मतो मे जब दुःख क्षय ही मोक्ष है, वहा पाशुपत परम शक्तियो की इसम प्राप्ति को सम्मिलित करते हैं।[208] लकुलीश द्वारा सुझायी गयी 'विधि' के अतर्गत अनार्यों से सबधित क्रियाओ को यथावत स्वीकार कर लिया गया।[209] शिव का अशिष्ट एव जगली स्वरूप, दार्शनिकता पाने के बाद भी प्रचलित रहा।[210] पाशुपतो के अनुसार 'शिवत्व' पा लेने के बाद जन्म मृत्यु के बधन स छुटकारा मिल जाता है। अन्य दर्शनो मे ऐसा नही है।

काश्मीर शैव दर्शन[211]

पूर्व मध्य युग मे नवी-बारहवी शताब्दियो के बीच शैव दर्शन की इस शाखा का विकास काश्मीर मे हुआ। इसी कारण से यह काश्मीर शैव दर्शन के विशेषण से युक्त है। इसे 'स्पद-शास्त्र' भी कहा जाता है।[211A] काश्मीरी आचार्य वसुगुप्त[212] और उनके विद्वान शिष्य कल्लट[213] ने इसे परिपुष्ट किया। 'स्पदकारिका' और 'शिव सूत्रम' तथा 'परमार्थ सार' मे काश्मीरी शैव दर्शन निहित है। शिव ने स्वय वसुगुप्त के माध्यम से इन्हे प्रणीत किया था।[214] भट्ट कल्लट के अतिरिक्त सोमानद, उत्पल, रामकात और अभिनव गुप्त ने इसके विकास मे विशेष योग दिया था।

'त्रिक', 'स्पद', 'प्रत्भिज्ञा' के साथ ही इसे 'श्रद्धाशास्त्र' भी कहते हैं। इन तीनो का अर्थ अपने आप मे दार्शनिक लाक्षणिकता लिये है। त्रिक, पशुपति-पाश

के आरंभिक सिद्धांत के साथ ही 'जीव', 'प्रकृति' और 'शिव' के आपसी संपर्क में विश्वास करता है। जब कि 'स्पंद-शास्त्र' का ध्येय एकता में अनेकता को ढूंढना है। और 'प्रत्यभिज्ञा' आत्मा के शिवत्व में लीन होने को मान्यता देता है।[215] अभिनवगुप्त के कारण इसे 'आभासवाद'[216] भी कहा गया। स्पंद-शास्त्र में यौगिक क्रियाओं के माध्यम से आत्मा रहस्यात्मक शांति-समाधि, 'परम शिव' से तादात्म्य स्थापित कर विश्राम और आनंदानुभूति पा लेती है।[217] 'प्रत्यभिज्ञान' में गुरु के निर्देश-नियंत्रण में आत्मा अपने में निहित 'शिवत्व' को पहचान कर शिव के साथ रहस्यात्मक आनंदमय एकत्व स्थापित कर लेती है।[218] परंतु हर स्थिति में 'शिव' सर्वोच्च देव है। वे 'आत्मन' भी हैं। उनका चैतन्य और 'परमेश्वर रूप' समस्त विश्व का आधार है। 'विश्व का आधार' होते हुए भी शिव शूलिन स्वयं आधारहीन हैं।[219] वे 'विश्वमाया' और 'विश्वोत्तीर्ण' हैं वे काल-समय से परे हैं। इसीलिए शिव 'अनुत्तर' हैं।

काश्मीरी शैव दर्शनशास्त्री जो विभिन्न शाखाओं में बंटे है, 'जीवात्मा' को शिव का अभिन्न अंग मानते हैं। पर वह 'मल' अथवा 'माया पाश' में बंधा है। क्योंकि माया रूपी शरीर में रहने से वह 'अज्ञान', 'मायीय' और 'कार्म' के मलों से ग्रसित हो अपने 'शिवत्व' को भूल जाता है।[220] और चिंतन-योग आदि से 'परम सत्ता' (शिव) का दर्शन पाते ही वह मल माया पाश से मुक्त हो जाता है।[221]

अभिनवगुप्त ने अपने प्रत्यभिज्ञान में इसे सुंदर उदाहरण में समझाया है। जिस प्रकार रस, गुड़, खांड, मिश्री, शकर आदि एक ही तत्त्व के विभिन्न अंग हैं उसी प्रकार विश्व की विभिन्नता भी शिव के कारण ही है।[222] 'शिव की शक्ति' के माध्यम से ही विश्व ने नाना रूप ग्रहण किये है। यह शक्ति शिव नारी रूप है। इसे 'चित्त', 'आनंद', 'क्रिया', 'इच्छा' और 'ज्ञान शक्तियों' में बांटा गया है।[223] इन सभी का ध्येय 'शैव तत्त्व' का ज्ञान तथा 'आत्मा' के लिए 'मोक्ष' या 'शिवत्व' पाना है। और वह शिव की कृपा के 'शक्ति निपात' से ही संभव है।[224] मोक्ष पाते ही आत्मा शिवत्व में लीन हो जाती है। अद्वैतवाद के समान काश्मीरी शैव मत प्रकृति को असत्य नहीं मानता। वह उसकी सत्यता में विश्वास करता है। पर शिव अनुकम्पा से ही मुक्ति साध्य है।[225]

वीर शैव अथवा लिंगायत[226]

अन्य शैव दर्शनों के समान ही वीर शैव का विकास भी दक्षिण में हुआ था। 'वीर' का अर्थ 'शूरता' अथवा 'पराक्रम' होता है। और वीर शैव स्वयं को धार्मिक मामलों में संभवतः 'शूर' और पराक्रमी' से कम नहीं मानते। यदि वीर शैवों के धार्मिक व सामाजिक सुधारणा के कामों को दृष्टिगत रखें तो शायद यह सही हो सकता है। ये शिव के प्रतीक और अमूर्त रूप 'लिंग' को अनिवार्यतः धारण करते हैं, अतः वे

'लिगायत' भी कहलाए। परन्तु लिग धारण की यह प्रथा मात्र वीर शैवो ने आरभ नही की, क्योकि इसके पूर्व महाकाव्य रामायण मे हमे लकेश्वर रावण द्वारा लिग धारण एव लिग को हर समय, हर जगह ले जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[227]

वीर शैव दर्शन आगम और तमिल के 63 भक्त सतो की दार्शनिक विचार-धारा पर आधारित है।[228] वे वेदो, पुराणो के धार्मिक निर्देशो को भी मान्यता देते है। इन 'प्रमाणो' के अतिरिक्त वे 'प्रत्यक्ष' और 'अनुमान' को भी मानते हैं।

वीर शैव सप्रदाय का सस्थापक ब्राह्मण 'बसव' अथवा बासव था।[229] *बासव* एव उसके शिष्यो को लिगायत सतो की श्रेणी मे स्थान दिया गया है। परतु अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि पूर्व मध्य युग मे बसव ने मात्र वीर शैव मत का पुनर्गठन किया। लिगायत दर्शन सबधी विचार तो पूर्व मे भी प्रचलित थे।[230] रामैया ने भी इसके विकास प्रचार मे योगदान दिया।[231] डा० फ्लीट एक अभिलेख के आधार पर एकात रामैया' को बसव के साथ लिगायत मत का प्रवर्तक मानते है।[231A] जैनो के साथ वीर शैवो की प्रतिद्वद्विता चलती रहती थी। बसव, उसके शिष्य, विशेषकर उसके भतीजे एव शिष्य चन्नाबसव, मनक्कन 'शिवलक', श्रीपति पडित मल्लिकार्जुन पडिताराध्य तथा सत विदुषि महादेवी अक्का ने इसे लोक-प्रिय बनाया।[232] इन सतो के भजन, गीत, विचार 'वचनशास्त्र' नाम से जाने जाते है। उनका मनन-पठन लिगायतो के लिए अनिवार्य है।[233] वीर वसतराय नामक कल्याणी नरेश ने इसको गौरवशाली स्तर पर पहुचा दिया।[234] 'वचनशास्त्र के भक्ति गीतो के माध्यम से वीर शैव सतो ने मानव को पाप के मार्ग' से मोडकर 'शिवभक्ति' का उपदेश दिया।[235] प्रत्येक वचन-भजन शिव के स्थानीय नामो के साथ समाप्त होता है, जिनकी भक्ति की जाती थी। ये वचन सासारिक सुखो के खोखलेपन, कर्मकाड की अनुपयोगिता और जीवन की क्षणभगुरता को उघाडकर शिवभक्तो की आत्मिक श्रेष्ठता को स्थापित करते हैं।[236] लिगायतो मे बडी श्रद्धा भक्ति से इनका भजन किया जाता है। बसव को शिव का अवतार माना गया।[236A]

सतो के साथ ही वीर शैव, तमिल शैव समयाचार्यो—रेणुक, दारुक, घटकर्ण, धेनुकर्ण तथा विश्वकर्ण को अपना आध्यात्मिक प्रेरणा गुरु मानते है।[237] ये समया चार्य शिव के विभिन्न रूपो—सद्योजात वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान के अवतार कलयुग म माने गये।[238] इन सब के बावजूद बसव का प्रभाव लिंगायतो पर अधिक था।

लिंग धारण मात्र बाह्य अलकरण नही था। उसका भी एक अपना दर्शन है। लिंग 'भाव', 'प्राण' तथा 'इष्ट' मे विभाजित था। और ये तीनो 'आत्मा', 'चैतन्य' तथा 'स्थूल' के प्रतीक हैं। 'प्रयोग', 'मत्र' और 'क्रिया' से विशिष्ट हो ये 'कला-नाद-बिंदु' का स्वरूप धारण कर लेते थे।[239]

वैसे वीर शैव दर्शन 'शक्ति विशिष्टाद्वैत' के नाम से भी जाना जाता है। क्योकि

लिगायतो का आराध्य 'परा शिव' अपनी 'शक्ति' से पूर्ण है। 'शिव' और 'जीवात्मा' मे भेद नही है। दोनो शक्ति से सबधित हैं। शक्ति ही उन्हें जोडती है। 'जीवात्मा' उस सपूर्ण 'परा-शिव' का ही अश है। 'परा-शिव' वीर शैवो के अनुसार सर्वोच्च वास्तविकता और स्वयभू है। वह 'सत्', 'चित्त' और 'आनद' अर्थात् 'सच्चिदानद' मय अद्वितीय परम ब्रह्म शिव तत्त्व है।[240] वह गौरवमय, गुणमय और सर्वोच्च है। वह प्रत्यक्ष रूप मे 'अल्लम प्रभू' बन जीवात्मा को मार्गदर्शन देती है।[240A] परतु श्री दिनकर अल्लम प्रभू को बासव का समकालीन और लिगायतो का बहुत बडा सत मानते है।[240B] अल्लम का अर्थ लिगायत भक्त होता है,[240C] इस्लामी अल्लाह नही, जैसा डा० ताराचद का विचार है।[240D] समस्त विश्व का परम कारण होते हुए भी शिव स्वय अपरिवर्तनीय है। वह 'आदि-मध्य-अत-हीन' है।[241] विश्व का आधार होते हुए भी शिव (शूलिन) स्वय आधारहीन है। वह इस विचित्र ससार और उसकी कलाओ का स्वामी-नियता है।[242]

'शक्ति' शिव मे ही निहित रहती है। शिव के निर्देश पर वह 'मूल प्रकृति' अथवा 'माया' के माध्यम से सृष्टि का निर्माण करती है। 'प्रलय' मे समस्त सृष्टि, शक्ति मे समाहित हो बीज रूप मे निवास करती है। शक्ति मे क्षोभ उत्पन्न होने पर वह 'लिग स्थल' और 'अग स्थल' मे विभाजित हो जाती है। लिग स्थल, शिव या रुद्र होने से उपास्य है। अग जीवात्मा होने से उपासक। शिव से सबधित शक्ति का उपास्य अश 'कला' कहलाता है, जब कि जीवात्मा वाला अश 'भक्ति' कहलाता है।[243] यही भक्ति, कर्म और माया के जगत् से परामुख कर मुक्ति का साधन बनती है। वह जीवात्मा और शिव का मिलन कराती है।[243A] अर्थात् 'लिगाग समरस्य' प्राप्त होता है।[244] इस हेतु उसे अन्य प्रयत्न भी करने पडते हैं। क्योकि शिव का अश 'जीवात्मा' माया-रूपी शरीर मे रहने के कारण, माया के गुणो, सुख-दुःख-अह आदि से ग्रसित रहता है।[245] परतु चिंतन, सत्य, नैतिकता, पवित्रता आदि के अनुसरण से वह परम सत्ता का दर्शन-ज्ञान पाते ही मल-माया से मुक्त हो जाता है।[246]

इस दर्शन के साथ ही वीर शैवो ने आचार-व्यवहार पर भी जोर दिया। उन्होंने 'गुरु', 'जगम' तथा 'लिग' सत्ता को मान्यता दी। 'गुरु' मार्गदर्शक है। पुरातनवादी वीर शैव सत शिवत्व प्राप्त आत्माए होने से पूजनीय व अनुकरणीय हैं। और 'लिग' शिव है।[247] प्रत्येक शैव को 'अहिंसा' को मूल सिद्धात के रूप मे ग्रहण करना चाहिए।[248] 'अष्टवर्ण'—'गुरु आज्ञा', 'लिग पूजा', 'जगम के प्रति श्रद्धा', 'विभूति भस्म का लेपन', 'रुद्राक्ष धारण', 'गुरु व जगम का पादोदक पान', 'प्रसाद ग्रहण' तथा पचाक्षर 'ओम नम. शिवाय' का जप करना चाहिए। दीक्षा सस्कार के समय ये अष्ट नियम सिखाये जाते हैं।[249] उपनयन संस्कार के समान यह दीक्षा-समारोह होता है। स्त्री-पुरुष सभी लिग धारण करते हैं।[250] शिव गायत्री का

जाप किया जाता है। लिंग धारण के बाद मंदिर में पूजा हेतु जाना आवश्यक नहीं माना जाता। वे अग्नि में किसी प्रकार की आहुति भी नहीं देते।[251]

सुधार, वीर शैव संतों का अनुकरण-मात्र था। वह धर्म-दर्शन के साथ ही एक सुधारवादी आंदोलन होने से कन्नड़ देश में काफी लोकप्रिय हुआ। लिंगायत मत संभवतया उत्साही और कुलीन अ-ब्राह्मणवादी हिंदुओं के बीच अस्तित्व में आया होगा। परंतु शीघ्र ही इसका नेतृत्व आराध्य कहलानेवाले ब्राह्मणों ने संभाल लिया है।[252] यह उन्हें समाज-सुधार का श्रेष्ठ मार्ग लगा। यद्यपि कुछ लोगों ने अपना अलग संप्रदाय बना लिया पर समस्त लिंगायत शूद्र जाति के नहीं थे। लिंगायत शिक्षकों एवं 'वचन' लेखकों ने इसे काफी जनप्रिय बनाया।[253]

शैव सिद्धांत

पूर्व मध्य युग में ही दक्षिण भारत ने शैव दर्शन में एक नया अध्याय जोड़ा। यह 'शैव सिद्धांत' अथवा 'सिद्धांत समुदाय' कहलाया। शैव सिद्धांत की दार्शनिक आधार भूमि 'आगम' साहित्य और शैव संतों—मेयकददेव, अप्पार, माणिक्यवाचक—पर आधारित है।[254] संत मेय कंदार ने शैव सिद्धांत को निरूपण किया था।[255] वेदों और धर्मग्रंथों को ये 'प्रमाण' मानते हैं। उनके मत से धर्म-ग्रंथ 'ज्ञान' के मार्ग में 'सत' अथवा सत्य का उद्‌घाटन करते हैं।[256] आगम साहित्य स्वयं शिव की देन है, ऐसा शैव सिद्धांतियों का विश्वास है। शैव सिद्धांत को दार्शनिक भूमि मेयकंद के 'शिव-ज्ञान बोधम' ने दी। अरुलनंदी उमापति ने 'शिव ज्ञान-सिद्धीयार' तथा 'शिव प्रकाशम' लिख कर उसे आगे बढ़ाया।

सिद्धांतिन 'पशु', 'पति' और 'पाश' के तीन पदार्थों में विश्वास करते हैं।[257]

पति : यह शिव का लाक्षणिक प्रतीक है। पति अथवा शिव सर्वद्रष्टा है। वह सृष्टि का परम अध्यक्ष है। वह चेतना का आगार और ब्रह्मांड में व्याप्त अनादि सत्य है। शिव-कृपा से ही सृष्टि अपनी पांच क्रियाओं—रचना, पालन, संहार तथा जीव को मोहाच्छन्न कर उसे शिवत्व देने का कार्य करती है।[258] शिव, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु की त्रिमूर्ति से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि ब्रह्मा विष्णु तो शिव के प्रलय से प्रभावित होते हैं, उस समय शिव अप्रभावित रह सर्वोच्च देवता के रूप में अनादि एवं अनंत हैं।[259] वे 'सत' और 'चित' हैं। जब धर्म-ग्रंथ उन्हें 'निर्गुण' निरूपित करते हैं तब उनका अर्थ शिव को 'सत्व', 'रज', 'तम' तथा 'प्रकृति' के गुणों से परे बताना है। माणिक्यवाचक्कर शिव को 'अष्ट मूर्ति'—पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि, जल, सूर्य, चंद्र तथा चैतन्य इंद्रिययुक्त मानव (आत्मा) में व्याप्त देखते हैं।[260] वह 'विश्व रूप' 'विश्वाधिक', 'आप्तकाम' और 'सत्य संकल्प' है। वह सृष्टि का निर्माण करता है ताकि 'जीवात्मा' अपवित्र मलिनता से छुटकारा पाया जाए।[261] 'तीरोधन', 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार' और 'अनुग्रह' शिव से ही है।[262] शिव इन सबसे

अप्रभावित रहकर मात्र अपनी 'परिग्रह शक्ति' से ही यह कर दिखाते हैं।[263] शिव का जड चेतन, जीव-प्रकृति, सब मे वास है।

अन्य देवो के समान शिव अवतारी न होने से सासारिक सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु से परे हैं। वे सब जीवात्माओ के 'गुरु' और उसे 'ससार' से बचानेवाले है।[264]

पशु : जीवात्मा का प्रतीक है। वह 'क्षेत्रज्ञ' अथवा 'अणु' (सूक्ष्म) भी है। शिव के समान वह चैतन्य, अनादि और अनत है। वह निष्क्रिय नही है। वह न केवल एक है, जैसा अन्य दर्शन मानते हैं।[265] वे अनेक हैं। आत्मा 'आणव', 'कर्म' और 'माया-मल' से बधी है।[266] 'आणव' एक प्रकार की सहज मलिनता है जो आत्मा के साथ आरभ से होती है। इसी कारण से 'विभु आत्मा' अपने को सीमित मानती है। उसे पूर्व तथा वर्तमान जन्मो के कर्म भी प्रभावित करते है। पाश अथवा माया-मल के बधन भी उसे व्यापते है। पशु तीन प्रकार के होते है। 'प्रलय कल' जिनकी कलाओ का क्षय प्रलय के साथ होता है। 'विज्ञान कल' वाली आत्माए ज्ञान-योग के माध्यम से समस्त कलाओं से छुटकारा पा लेती है। और 'सकल' आत्माए, मल, कर्म, माया के पाशो से बधी रहती है।[267] ये बधन उसे सात, क्षणिक और अज्ञानी बना देते हैं। इस बधन से छूटने के लिए जीव पूर्व और इस जन्मो के कर्मों से मुक्त हो, जड की अधीनता से बाहर निकलें और अपने को सात समझना छोड दे।[268] शिव अथवा पति के प्रासादानुग्रह से ही जीवात्मा पाशमुक्त होता है। वह शिवत्व पा लेता है।[269] पाश-बधन बाह्य है। अत असत है।[270] शिवत्व पा लेने पर भी वह शिव की सृजन शक्ति नही पा लेता। प्रत्येक जीवात्मा को अपनी मुक्ति हेतु अलग-अलग प्रयत्न करना पडता है। सैद्धातिन आत्माओ की अनेकता मे विश्वास करते है।

पाश : माया के बधन का नाम है। सृष्टि माया से ग्रसित होकर उसी से मुक्त होती है।[271] वह मल, कर्म, माया तथा रोध शक्ति से जीवात्मा को अपने पाश मे बाधती है। जीवात्मा की ज्ञानक्रिया शक्ति को वह तिरोहित कर देती है।[272] माया का 'मा' सृष्टि व जीवात्मा को लपेट लेता है, और 'या' उसे मुक्त कर देता है। माया पशु को 'तनु', करण' तथा 'भुवन' प्रदान करती है। जिनका 'ध्येय', 'भोग्य' है। माया स्वचालित नही है, शिव ही उसके नियता है। वे अपनी 'चित्त-शक्ति' से उसका सचालन करते है। शिव नियत्रित माया अपने तत्त्वों की सहायता से सृष्टि व जीवात्मा को प्रभावित करती है।[273] वह उनका नामकरण और स्वरूप भी निर्धारित करती है।[274]

जीव मुक्ति शिवानुग्रह से 'क्रिया', 'चर्या', 'ज्ञान' और 'योग' के माध्यम से भी जीव मुक्ति पा सकता है।[275] शैव सिद्धात के अनुसार ये तत्त्व शिव से 'सायुज्य' और 'एकता' स्थापित करने मे सहायक होंगे। इनमे 'योग' तथा 'ज्ञान'

सर्वोत्तम है। सैद्धातिन भी 'अद्वैत' मे विश्वास करते है। परतु उनके अद्वैत मे आत्मा शिवत्व पाने के बाद भी अपना अलग अस्तित्व रखती है। यह अद्वैत 'अभेद' नही वरन 'अनयता' अर्थात् 'सयुक्त' है। 'मोक्ष' मे भी 'जीवात्मा' अपना व्यक्तित्व बनाये रखता है। वह 'शिव' नही बन सकता।[276] वह 'पाश' और 'पशु ज्ञान' से मुक्त होकर 'पति ज्ञान' प्राप्त कर लेता है।[277] वह 'पति' नही बन सकता। पर वह समस्त 'मल पाशो' से मुक्ति पा लेता है। वह शिव की दिव्यानुभूति का आनद उठाता है। अत मोक्ष या जीव-मुक्ति 'एकता मे अद्वैतता' है। वे दो नही, दो मे एक हैं। आत्मा शिव प्रदत्त परमानद को ग्रहण करती है।[278]

लौकिक कार्य : दार्शनिक व्याख्या के साथ ही सैद्धातिनो ने आत्मा को नैमित्तिक कर्मो का उपदेश भी दिया है। इसके अतर्गत दीक्षा-विधि, प्रसाद ग्रहण, शैव साधु-सतो, गुरु-आचार्यों के साथ सत्सग, शिव-मदिरो का दर्शन, जप, शिव-लिंग तथा दृश्य लिंग, गणपति, उमा, स्कद, नदी का ध्यान, शिव-साधको की सेवा-चाकरी, शिव-स्तुति, आदि से जीवात्मा मलो से आत्मा को धोकर, पवित्र बना मोक्ष की ओर बढ सकता है।[279]

शिव विशिष्टाद्वैत या शिवाद्वैत

पूर्व मध्ययुग दार्शनिक विविधता का युग था। इस काल म दर्शन के कई स्कूल विकसित हुए। रामानुजाचार्य के समसामयिक शैव दर्शनज्ञ श्रीकठ ने शिव-विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया।[280]

श्रीकठ जीवात्मा के 'पशुभाव और उसके 'पशुत्व' (माया बधन) तथा 'शिवत्व' पाने मे विश्वास करते हैं। वे शिव को 'ब्रह्म' रूप म प्रस्तुत करते है। ब्रह्म (शिव) के 'सृष्टि', 'स्थिति', 'लय', तिरोभाव', और 'अनुग्रह' आदि पचकर्मो का निरूपण उन्होंने किया। वे शैव सिद्धातिको के समान आत्मा की आतरिक मलिनता को भी मानते हैं। परतु वे आत्मा के जन्म मरण के चक्कर को अनिवार्य बतलाते हैं।[281] कर्मो की निरतरता से आत्मा पवित्रता प्राप्त कर मोक्ष का मार्ग पा लेती है। तब शिव का अनुग्रह प्राप्त कर वह मोक्ष पा सकती है। इसके लिए उसे 'ध्यान-अभ्यास' करना चाहिए। ध्यान व समाधि, आत्मा को 'असाधारण गुण' प्राप्त करने मे सहायता देते है। 'ध्यान' तथा 'समाधि' निरतर करते रहने से वह 'ब्रह्म साक्षात्कार' पा सकती है। 'ब्रह्म' (शिव) 'विश्वकार' और विश्वाधिक' है। सर्जक होते हुए भी वह उससे परे है। वह अपनी 'पराशक्ति' स ही यह करता है। वह 'इच्छाशक्ति', 'क्रियाशक्ति' और 'चिद्शक्ति' के माध्यम से अपना कार्य करता है।[282]

श्रीकठ के विचार से 'सत्कार्यवाद' के सिद्धात से ही शिव ने सृष्टि को बाध रखा है। जैसे मिट्टी व मिट्टी के बर्तन मे भेद होते हुए भी दोनो म एकरूपता है, उसी

प्रकार सृष्टि-शिव का सबध है। शिव के अष्ट नाम—रुद्र, शर्व, भव, पशुपति, उग्र, ईशान, भीम और महादेव—ब्रह्म ही है।[283] श्रीकठ शिवलोक को विष्णुलोक से भी उच्च स्थान देते है। इन दोनो के मध्य विरजा नदी है। आत्मा शिवलोक पहुचने तक 'ससार' मे बधी रहती है। शिवलोक पहुचते ही वह चिर आनद का अनुभव करते हुए, शिवत्व पा लेती है। वह पुन ससार मे नही लौटती।

कापालिक एवं कालमुख दर्शन[284]

कापालिक-कालमुख सम्प्रदाय शिव के उग्र स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते है। यद्यपि दोनो अलग अलग मत हैं, परतु दोनो सामान्यतया एक ही माने जाते हैं।[284A] दोनो की उपासना विधि और दार्शनिकता में समानता है। दोनो शिव के अनार्य रूप का प्रतीक है। इन्ही मतो मे अनार्य क्रियाए अधिक स्पष्ट लक्षित होती है।[285] बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा का प्रभाव इन मतो पर पडा हो तो आश्चर्य नही।

पूर्व मध्ययुग से पहले ही शिव का 'उग्र', 'रुद्र' अथवा 'भैरव' रूप इन सम्प्रदायो का आराध्य बन गया था। सातवाहन युग में कापालिक पूजा आरभ हो गई थी।[286] दक्षिण भारत के सगम साहित्य मे भी कापालिको का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[287] बाणभट्ट भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महार्णव के बारे मे विवरण देते हैं।[288] हर्ष के पूर्व ही दक्षिण मे शैव धर्म का उग्र रूप कायम हो गया था। ह्वेनसाग को हर्ष काल मे उत्तर-पश्चिम सीमात के कपिशा में कपालधारिन मत के अनुयायी मिले थे। ये नग्न रहकर, शरीर पर भस्म मलते थे और मुडमाला धारण करते थे।[289] इन्हे तत्कालीन शासक दान भी देते थे। पुलकेशिन द्वितीय के भतीजे नागवर्धन ने कपालेश्वर की पूजा हेतु महाव्रतियो को एक गाव दान मे दिया था।[290] शिव के श्मशानवास, भस्मधारण और भूत-प्रेतो की सगति[291] ने ही कापालिक कालमुखो को प्रेरणा दी होगी। इन मतो मे शिव-भैरव बन कर अपना सहारक रूप प्रस्तुत करते थे।[292]

उज्जयिनी, पूर्व मध्ययुग मे इन मतो का एक मुख्य केंद्र था। दिग्विजय के दौरान शकराचार्य की भेंट उज्जयिनी मे कापालिको से हुई थी। कापालिको के प्रमुख क्रकच ने शकर को बलि चढाना चाहा। परतु भैरव ने उसका ही वध कर दिया। शकराचार्य के अनुयायियो और कापालिकों में युद्ध भी हुआ था।[293] कापालिको का प्रभाव इतना बढ गया था कि उन्होने कुछ सुविधाए पाने हेतु राजा सुधन्वा का घेराव तक कर लिया था।[294] उन्होंने महाराष्ट्र मे दूसरा केंद्र बना रखा था।[295] आचार्य शकर के महाराष्ट्र पहुचने पर उन्होंने उनके सिर को भैरव को चढाना चाहा,[296] क्योकि उनके विश्वासानुसार विद्वान, पवित्र ब्राह्मणो का सिर चढ़ाना अच्छा माना जाता है। और आचार्य शकर ने स्वीकृति भी दे दी थी। परतु शिष्य पद्मपाद समय पर पहुच गया और उसने कापालिक का ही शिरच्छेद

कर दिया।[297]

भैरव के साथ ही उनकी पत्नी चडिका की भी ये उपासना करते थे।[298] कापालिक शास्त्र के अनुसार काली माला, काला वस्त्र, माला चदन धारण कर महाश्मशान मे 'महाकाल हृदय' शक्तिशाली महामत्र का कोटि जप किया जाना चाहिए।[299] वे छ मुद्रिकाओ—कठिका, कुडल, भस्म, रुचक, शिखामणि तथा यज्ञोपवीत के तत्वज्ञान मे विश्वास करते है। साथ ही भगासन पर बैठकर महाभैरव का ध्यान करने पर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।[300] भगासन मुद्रा और कापालिक-कालमुखो द्वारा साधना-सिद्धी हेतु 'कापालिकका' सत्सग शायद शिव-पार्वती से प्रेरित था। साधना के अवसर पर साधना भूमि (श्मशान) म भस्म से पुरे गए महामडल के बीच साधक को बैठना चाहिए। रक्तचदन से चर्चित माला और लाल वस्त्र से अलकृत उत्तान पडे हुए शव की छाती पर बैठकर उसके मुह मे अग्नि जलाकर हवन करना चाहिए। काली पगडी, काला अगराग, काली राखी, और काला वस्त्र धारण करना साधक के लिए अनिवार्य है और आहुति के लिए काला तिल भी आवश्यक है।[301]

कालमुख यद्यपि अलग सप्रदाय के हैं और उनकी विधिया भी थोडी अलग हैं। वे इहलौकिक और पारलौकिक इच्छाओ की पूर्ति के लिए षट् क्रियाओ को अनुशसित करते हैं। उनके अनुसार 1 नर, कपाल म भोज, 2 भस्म, भोजन 3 सुरापान, 4 शव की भस्म का लेपन 5 सुरा पात्र मे भैरव को स्थित कर उनका पूजन तथा 6. लगुड धारण करना चाहिए।[302] कालमुख भी शिव के भैरव स्वरूप के पूजक थे। भैरव साधना के लिए गुरु तथा दीक्षा का अत्यत ही महत्त्व है। गुरु भैरवाचार्य के नाम से ही जाना जाता है[303] और उसी के निर्देशानुसार साधक समस्त क्रियाओ को करता है।

कापालिक 'जीवात्मा के मोक्ष के लिए विषय आनद को मान्यता देते हैं। उनके विचार से (पार्वती के प्रतिरूप) 'पार्वत्या प्रतिरूपया' अवस्थित अपनी प्रियतमा से आलिगित होकर शिव स्वरूप जीव मुक्त हो क्रीडा करता है। यह शिव का आदेश है।[304] कापालिक 'योगाजन शुद्धचक्षुषा' योग के अजन से सिद्ध दृष्टि से जगत को शिव से भिन्न तथा अभिन्न 'जगन्मिथो भिन्नमभिन्नमीश्वरात्' मानते है।[305] विषय-वासना साधन होने से कापालिक अपने साथ 'कापालिका' रखते हैं जो 'सौम्य तथा मोक्ष का साधन' मानी जाती है।[306] सुरा पान कापालिका के लिए अनिवार्य है, क्योकि वह पवित्रममृत, भव भेषजम्' तथा 'पशुपाशसमुच्छेदकारण भैरवोदित' है।[307] कापालिक और कापालिका दोनो ही 'नरास्थिमालावृत चारुभूषण श्मशानवासी नृकपालभोजन' को मान्यता देते हैं।[308] सुरा भैरव का महाप्रसाद मानी जाती है और ये सभी कार्य 'महाभैरवानुशासन' के अतर्गत आते थे।[309] शिव का भैरव रूप रुद्र से ही सभवतया विकसित हुआ था।[310]

कापालिकों का दक्षिण में मुख्य पीठ श्रीशैल में है।[311] यह कापालिक मत्र तत्र सिद्धि का प्रकरण स्थान था।[312] प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने भी श्रीशैल को प्रधान पीठ बताते हुए कापालिकों एव कपालकुडला का विवरण दिया है।[313] कापालिकों की मुद्राओं, रहन-सहन तथा खान पान ने ग्यारहवीं सदी के अरब यात्रियों का ध्यान भी खींचा था।[314] इनमें अबु जैद प्रमुख था।

कापालिक-कालमुख मत शैव दर्शन की उग्रता और मानव चित्त की विकृति का प्रदर्शन करते हैं। सुरापान, नरबलि, नरमुडों की मालाओं का धारण और पार्वती के बहाने कापालिका अथवा कपालकुडला के रूप में नवयौवना के साथ सभोग के माध्यम से जीव मुक्ति का प्रयत्न, आलोचना का विषय कई इतिहासकारों की दृष्टि म सिद्ध हुआ है।[314A] परतु न केवल कापालिकों-कालमुखों ने इसका विकास किया था वरन अनार्य जातियों में पूर्व में भी इसमे कई प्रथाए प्रचलित थी।[315] अत उन्होंने कोई नूतनता इसे प्रदान नहीं की थी। साथ ही तत्कालीन एव पूर्वकालीन बौद्ध धर्म की वज्रयानी पचमकार की क्रियाओं ने उन्ह प्रभावित किया हो तो आश्चर्य नहीं।

शैव दर्शन की विशेषताए

1 शिव धर्म के प्रत्येक सप्रदाय और दर्शन स्थूल शिव को ही अपना प्रधान आराध्य मानते थे। वे उनके केंद्रबिंदु थे। अतएव शैव धर्मावलबियों को एकेश्वरवादी कहा जाय तो अनुचित न होगा। यद्यपि उन्होंने शिव के विभिन्न नामों को अपना प्रेरक मान सप्रदायों को गठित किया था।

2 श्रीकंठ को छोडकर प्राय सभी शैव सप्रदाय आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे। शिवत्व पाने के बाद आत्मा पुन जन्म लेने पृथ्वी पर नहीं आती थी।

3 शैव दर्शनज्ञ माया के एक नये रूप अर्थात् जीवात्मा की सहज मलिनता को मान्यता देते थे, जो उसके जन्म के साथ ही उसम अन्तर्निहित रहती थी।

4 शिव के व्यक्तित्व की विविधता और सृजन तथा सहारात्मक गुणों ने शैव दर्शन की समस्त परपराओं को पूरी तरह से अनुप्राणित किया था।

5. शिव-धर्म समथक लकुलीश',[316] शैव-सतों—अप्पार, मेयकद, माणिक्य-वाचकर आदि[317] शैव धर्म गुरु रेणुक, दारुक, घटकरण,[318] वीर शैव वासव,[319] तथा दाक्षिणात्य महाशैव भैरवाचार्य[320] सभी को शिव का अवतार माना गया है परतु स्वय शिव ने कभी भी मानव-अवतार ग्रहण नहीं किया। और इसी ने शैव-दर्शन को विशेषता प्रदान की थी।

शैव मतों को राज्याश्रय

पूर्व मध्य युग के अनेक राजवश और जनता का एक बडा वर्ग शिव एव उससे सबधित

सप्रदायो का उपासक था । उत्तर भारत मे मुख्य रूप से लकुलीश-पाशुपत शिव का पूजन किया जाता था। शिव-भक्ति लकुलीश-पाशुपत के रूप मे उत्तर भारत मे प्रचलित थी।[321] उस समय दक्षिण मे लिंगायत, कापालिक, कालमुखो का प्रचार था।[322] समस्त भारत मे शिव-मदिरो मे शिव-लिंगो की स्थापना की गयी। इनमे मान्धाता, उज्जयिनी, नासिक, एलोरा, नायनाथ के शिव-लिंग देवालय मुख्य थे।[323] स्कदपुराण, नेपाल, कालिंजर, प्रभास, वाराणसी के महादेव मदिरो की शिव पूजा का उल्लेख करता है।[324] इन सब मे सोमनाथ महादेव के शिव लिंग ने सर्वाधिक ख्याति पायी थी।[325]

अलबीरूनी ने सिंध देश के दक्षिण-पश्चिम के अनेक मदिरो मे शिव-लिंगो की पूजा करते लोगो को देखा था।[326] सारे देश मे अनेक ज्योतिर्लिंग पूजनीय माने जाते थे।[327]

शिव की पार्वती समेत कई मूर्तियां बगाल मे भी मिली हैं।[328] दक्षिण मे शिव-नटराज मूर्ति अधिक लोकप्रिय हुई।[329] इनमे चिदबरम् का नटराज मदिर शिव की अनेक नृत्यमुद्राओ का प्रतीक है। काश्मीर मे तो शिव की 'काष्ठरूपमुमापतिम्' मूर्तिया भी बनने लगी थी।[330] शिव-मूर्तियो का वर्गीकरण-कल्याणसुदर, सुखासन उमा-महेश्वर, नृत्य मूर्ति, दक्षिणा-मूर्ति आदि मे वास्तुकारो और मूर्तिकारो ने कर दिया था।[331]

काश्मीर मे शैव धर्म का प्रचार पूर्व मध्य युग मे था। महाकवि कल्हण शिव के भक्त थे। उन्होने अपनी 'राजतरगिणी' के प्रत्येक अध्याय का प्रारभ शिव की विभिन्न मुद्राओ की स्तुति से किया है। काश्मीर मे शिव 'जेठेश्वर', 'विजयेश्वर', 'गोकर्णेश्वर', 'भूतेश्वर', 'वर्धमानेश्वर', 'अमृतेश्वर' आदि नामो से पूजित थे।[932] महाराज रणादित्य ने पशुपति यतियो के लिए मठ बनवाया था।[333] कार्कोटवशी ललितादित्य ने जेठेश्वर रुद्र का पाषाण मदिर बनवाया। उनके खर्च के लिए कई ग्राम दान मे दिये थे। उसने ग्यारह करोड स्वर्ण-मुद्राए शकर भगवान को अर्पित की थी। उसके मित्र अमात्य मित्रशर्मा ने अपने नाम पर 'मित्रेश्वर-शिवमूर्ति की स्थापना की थी।[334] प्रसिद्ध शैव दर्शनज्ञ अभिनवगुप्त ने 'परमार्थ सार' तथा क्षेमराज ने 'प्रत्यभिज्ञा-हृदय' मे काश्मीर शैव दर्शन का सर्वोत्तम निरूपण किया। कन्नौज के गुर्जर-प्रतीहार वत्सराज, महेद्रपाल द्वितीय व त्रिलोचनपाल तथा उसका सामत भर्तृवट्ट शैव थे। महासामत धरणीवराह ने शैवाचार्य को ग्रामदान दिया।[335] महाराजा त्रिलोचनपाल ने दक्षिणायन सक्राति के दिन गगा स्नान के बाद शिव-पूजन कर 600 ब्राह्मणो को दान दिया था।[336] गहडवाल नरेश गोविंदचद 'परम माहेश्वर' था। उनकी कुछ स्वर्ण-मुद्राओ पर त्रिशूल अकित मिलता है[337]

नेपाल का राजवश और वहां के पडित, शिव के पुजारी थे। पशुपति नाथ का मदिर अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ। कालातर शैव-बौद्ध धर्मों का वहा समन्वय हो

गया।[338]

बगाल का शासक विजयसेन भी 'परम माहेश्वर' की उपाधि धारण कर शिव के प्रति भक्ति प्रकट करता था।[339] कामरूप का सालभ वश जिसने 800-1000 ई० तक शासन किया शिवोपासक था।[340]

चालुक्य भीम प्रथम ने सोमनाथ के भव्य मदिर का निर्माण कराया था।[341] जिसे सन् 1025 ई० (416 हिजरी) मे महमूद गजनवी ने ध्वस्त किया।[342] चालुक्य स्वत को 'उमापति वरलब्ध' कहते थे। कुमारपाल ने सोमनाथ मदिर का पुन निर्माण कराया।[343]

चदल सम्राट धगदेव शंकर का परम भक्त था। उसके सब शिलालेख 'ओ३म नम शिवाय' से प्रारभ होते हैं।[344] उसके ही काल मे दो भव्य मदिरो—मरकत का मरकतेश्वर तथा प्रस्तर का शिव मदिर—का निर्माण हुआ।[345] वह इस वश का पहला शासक था जिसने लिगायत शैव मत को ग्रहण किया था।[346] परतु उनकी लिगायत कल्पना ब्राह्मण धर्म की भावना के विपरीत न थी।[347] इस वश के अन्य शासक परमर्दिदेव ने अपने को 'परम माहेश्वर' की उपाधि से विभूषित किया था।[348] उसने शिव की स्तुति भी बनवायी थी।[348A] चदेलो ने खजुराहो मे शिव का एक आश्चर्यजनक मदिर बनवाया जो कदरिया महादेव के नाम से विख्यात है।[349] चदेल राजसभा का साहित्यविद कृष्ण मिश्र भी शिव-भक्त था। उसने अपनी रचना 'प्रबोध चद्रोदयम्' के मगलाचरण मे ही 'चद्रार्धमौले ललाट नेत्रे' शिव की वदना की है।[350]

वाक्यपतिराज चाहमान ने पुष्कर तीर्थ मे शिव मदिर बनाकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की थी।[351]

मालवा का परमार नरेश भोज देव भी शिव का भक्त था। उसने सोमनाथ के मदिर मे कई निर्माण कराये।[352] धारेश्वर, केदारेश्वर, रुद्र महाकालेश्वर नाम से भी उसने कई शिव मदिर बनवाये थे।[353] उसने भोपाल के निकट भोजपुर मे भी एक शिव मदिर बनवाया तथा महेश्वर, ओकारेश्वर, उज्जैन के महाकालेश्वर मदिरो मे दान दिये।[354] उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार उसने सुदूर स्थानो पर शिव मदिर बनवाये जिनमे रामेश्वर मदिर उल्लेखनीय है।[355] 'तत्व प्रकाश' मे जिसका रचयिता भोज है, शैव मत के बारे मे कई सूचनाए दी गयी है। इस वश के सदस्य उदयादित्य ने उदयपुर मे नीलकठेश्वर महादेव का एक मदिर बनाया था।[356] भोज के उत्तराधिकारी भी शिवोपासक थे।

अभिलेखो के आधार पर उत्कल (उडीसा) के कडा वश को भी शैव मतानुयायी, इतिहासकारों ने निरूपित किया है। उन्होने पूर्व मध्य युग मे बौद्ध धर्म का परित्याग किया।[357]

त्रिपुरी और अनूप के कलचुरि शासक भी शैव थे। इस वश की दो राज-

कुमारियो—लोका महादेवी तथा त्रैलोक्य महादेवी—का विवाह राष्ट्रकूटराज विक्रमादित्य (सन् 733-45 ई०) से हुआ था। ये दोनो शैव थी। अत इन्होंने अपने नामो पर पट्टदकल म 'लोकेश्वर' एव 'त्रैलोक्येश्वर' के प्रसिद्ध मदिरो का निर्माण कराया।[358]

पूर्वी चालुक्येश नगेंद्र मृगराज ने 108 शिव मदिर बनाकर राज्य मे शैव मत को समर्थन दिया।[359] दक्षिण मे शैवो और जैनो के मध्य इस काल मे बडी प्रतिद्वंद्विता थी। शैवो ने शास्त्रार्थ के माध्यम से जैनो को परास्त किया और समकालीन राजवशो-सामतो का समर्थन पाने मे सफल हुए।[360] दक्षिण के चोल तथा पाण्ड्य वशा ने भी इसी प्रकार जैन धर्म छोडकर शैव मत स्वीकार किया। शैवो के प्रभाव मे उन्होने जैनो पर अत्याचार भी किये। वीर शैवों ने तो जैन समर्थक राजा बिज्जल का सफल विरोध भी किया था।[361]

काची के पाण्ड्य नरेश नृसिहवर्मन द्वितीय राजसिह (सन् 700-728 ई०) ने काचीपुरम् मे कैलासनाथ का सुदर मदिर बनवाया था।[362] उसके उत्तराधिकारी शासक परमेश्वरवर्मन द्वितीय (सन् 728-31 ई०) ने तिरूवादी म शिवालय स्थापित किया।[363]

कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर प्रथम (सन् 1043-1068 ई०) एव सोमेश्वर द्वितीय (सन् 1068-76 ई०) तो शैव थे ही। परतु इसी वश के विक्रमादित्य षष्ठ (सन् 1976-1126 ई०) ने भी जैन धर्म त्याग कर शिव को अपना लिया था। इसी के शासन काल मे वासव ने वीर शैव मत को उच्चता दिलायी थी।[364]

काश्मीरी कवि दामोदर गुप्त ने अपने ग्रथ 'कुट्टनीमतम्' मे वाराणसी के शिव-मदिरो की बडी प्रशसा की है।[365]

एलोरा मे भव्य एव वास्तुकला के आश्चर्य, कैलाश मदिर का निर्माण कर राष्ट्रकूटो और विशेष कर कृष्ण प्रथम (सन् 758-773 ई०) ने शिव के प्रति श्रद्धा प्रकट की थी।[366] सभी वास्तुविदो ने एलोरा की मुक्त कठ से प्रशसा की है।[367]

चेरमान पेरुमल (सन् 825 ई०) शैव सत सुदरमूर्ति का अनुयायी और शिव भक्त था।[368]

चोलवशी आदित्य प्रथम (सन् 971-907 ई०) न अपने राज्य मे कई शिव मदिर बनवाये इसी वश के परतक प्रथम ने चिदबरम के नटराज मदिर की छत को स्वर्ण मडित कर दिया था।[369] राजराज प्रथम (सन् 985-1014 ई०) ने 'शिव-पाद शेखर' की उपाधि ही धारण नही की वरन तजौर मे दक्षिण भारत भर मे सबस ऊचा राजराजेश्वर का शिव मदिर बनवाकर उसके खर्च हेतु कई ग्राम उस मदिर को दान मे दिये।[370] इसी वश के कोलुतुग द्वितीय (सन् 1115-50 ई०) ने अपनी शैव कट्टरता प्रदर्शित करते हुए नटराज के मदिर-प्रागण मे स्थित गोविंद-राज की मूर्ति को समुद्र मे फिकवा दिया था। उसने इस नटराज मदिर की मरम्मत

भी करायी थी।[371]

चालुक्य सोमेश्वर तृतीय की राजसभा के कवि विद्यामाधव ने 'पार्वती रुक्मिणी' म शिव-पार्वती के विवाह का सरस वर्णन किया। पाण्ड्य राज नेदजय-दियान (सन् 765-815 ई०) को प्रसिद्ध शैव सत माणिक्यवासगर का भक्त बतलाया जाता है।[372] उत्पलदेव ने भी शिव प्रशसा मे 'स्तोत्रावलि' लिखी थी।[373] परमेश्वर प्रथम ने कुरम मे शिव मदिर का निर्माण कराया था।[374]

अत पूर्व मध्य युग मे प्रचलित धर्मों मे शैव धर्म ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। इस काल म जितने भी अरब यात्री भारत आए उन्होंने 'महाकाल' तथा 'शिव' का विवरण प्रस्तुत किया।[375] यह धर्म राजघरानो, सामतो, जन-साधारण मे समान रूप से लोकप्रिय हुआ था। इसी काल मे इसे दार्शनिक श्रेष्ठता दक्षिण मे मिली। और वह दक्षिण भारत स जैन धर्म को समाप्त करने म भी सफल हुआ। यहा तक कि कभी कभी उसने वैष्णव धर्म से भी दक्षिण म प्रतिस्पर्द्धा की।[376] इतने पर भी इनम सौमनस्य था। शैवो ने अपना स्थान स्थायी रूप से भारतीय धर्म-व्यवस्था मे बना लिया। काश्मीर से कन्याकुमारी व सिंध-सौराष्ट्र-अफगानिस्तान से बगाल उडीसा-नेपाल के विस्तृत क्षेत्र म असख्य शैव फैले थे। और शैव धर्म का प्रभाव इस्लाम के लगातार हमलो के बाद भी बना ही न रहा, वरन बढा भी।

सदर्भ

1 हॉपकिन्स रिलिजन्स आफ इडिया, पृ० 389
2 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 59
3 आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 117
4 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर द इडियन गज्पायर, पृ० 108 (1862 सस्करण)
5 रा० बा० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 38
6 द वैदिक एज, पृ० 162
7 वही, पृ० 161 165, 196
8 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 55
द वैदिक एज, पृ० 163
9 वही।
10 सागर (मध्य प्रदेश) जिले मे सागर से 40 कि० मी० दूर घने जगल में।
11 शरद पगारे लेख—बीना घाटी का आदि चित्रकार, नई दुनिया, दि० 10-12 72
डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर अनल्स आफ रूरल बगाल, पृ० 199
12 ई० मेकी अर्ली इडस सिविलाइजेशन, प्लेट VII, 4 5, 6
13 इडियन कल्चर (1937), पृ० 767
14 द वैदिक एज, पृ० 190
15 वही।

16 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास, पृ० 78
17 द वैदिक एज, पृ० 190, प्लेट VII 7
18 जान मार्शल मोहेन जोदडो, एण्ड इडस मिविलाइजेशन
19 द वैदिक एज, पृ० 162
20. वही।
21 वही।
22 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 38
23 *एच० एफ० विल्सन रिलिजन्स आफ हिन्दूज, भाग 1, पृ० 220 (1862 सस्करण)*
24 एन इट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ इडियन हिस्ट्री, पृ० 65-70
24A एस० के० दीक्षित मदर गॉडेस, इट्रोडक्शन
24B *जान इर्विन आर्टिकल—इन सडे स्टेट्समन, पृ० 5, दि० 12-11-78*
24C हटर द इडियन एम्पायर, पृ० 190-91
25 वि० च० पाडे प्रा० भा० का राज०-सास्कृ० इति०, पृ० 79 80
26 *द वैदिक एज, पृ० 190*
27 वही, पृ० 163
28 ऋग्वेद, 7-21-5
28A *रैगोजिन वैदिक इडिया, पृ० 193*
29 हटर द इडियन एम्पायर, पृ० 190
द वैदिक एज, पृ० 187
30 *जान मार्शल मोहेन जोदडो एड इडस सिविलाइजेशन, द वैदिक एज, पृ० 207*
31 वही, पृ० 162
32 ऋग्वेद 7-21 5
33 *वही 7-46-3*
34 1-114-10 डा० पी० एल० भार्गव वैदिक सूक्त को सूर्यकिरण एव ग्रीष्म का देवता निरूपित करते हैं, देखिए इडिया इन द वैदिक एज, पृ० 168
35 वही।
36 द वैदिक एज, पृ० 207
37 यजुर्वेद 16-2 3,
37A ऋग्वेद 2 36-7
37B वही।
37C अथर्ववेद 11-18-7, 11-2-6,7
नमस्या नील शिखण्डेन सहस्राक्षेण वा जिना।
रुद्रेणार्क घातिनातेन, मा रमरामहि ॥
38 इडिया इन वैदिक एज, पृ० 168
38A वही।
38B वही।
78C ऐतरेय ब्राह्मण, 3 33-1
38D ऋग्वेद 1-114 9
39 ऐतरेय ब्राह्मण, 3-9-10

39A ऋग्वेद 11-2 26
39B अथर्ववेद 11 2 9
39C अथर्ववेद 11-2-9
40 अथर्ववेद 7 21-5, 10-09-3
40A जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 579
40B वही।
41 तैत्तिरीय सहिता 7/5-1
42 वाजसनेय सहिता अध्याय 16
43 आर० जी० भडारकर : वैष्णव-शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 119
44 हटर द एनल्स आफ रूरल बेगाल, पृ० 127-136
45 आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 131
46 वामन पुराण अध्याय 43, कूर्म पुराण अध्याय 37
47 द वैदिक एज, पृ० 443
48 एस० राधाकृष्णन द इडियन फिलासफी, भाग I, पृ० 150
49 हॉपकिन्स रिलिजन्स आफ इडिया, पृ० 388-89
50 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 460
51 आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव अन्य धार्मिक मत, पृ० 132
52 श्वेताश्वतरोपनिषद, 4-11, 5-2
63 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 460-61
64 अनुशासन पर्व अध्याय 14
55 द वैदिक एज, पृ० 448
56 केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग 1 पृ० 129
57 द वैदिक एज, पृ० 447
58 शतपथ ब्राह्मण, 6/1-3-7
59 एस० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिन्दू सेक्टस्, पृ० 102
59A केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग I, पृ० 129-30
60 हन्टर द इडियन एम्पायर, पृ० 196 97
61 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 467
62 द वैदिक एज, पृ० 177, आर० के० मुकर्जी हिन्दू सिविलाइजेशन
63 ऋग्वेद 2/36 8
64 पी० एल० भार्गव इडिया इन द वैदिक एज, पृ० 168
65 ई० मैके अर्ली इडस सिविलाइजेशन, पृ० 215 220
66 हटर द इडियन एम्पायर, पृ० 196 (फुटनोट्स)
67 अथर्ववेद · 9/7 7, 13/4 4, 11/6-9
68 राजतरगिणी, 1-31,
आर० जी० भडारकर · वैष्णव-शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 124
69 बाणभट्ट हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० 171
70 वाल्मीकी रामायण, पृ० 23, 24,
अलबोरूनी भाग III, पृ० 133 (अनु० सतराम)

71 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 50
72 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 76
73, वैदिक एज, पृ० 84
74 हॉपकिन्स रिलिजन्स आफ इंडिया, पृ० 414
75 महाभारत शाति पर्व, 64-8
76 वही द्रोण पर्व, 201-16
77 वाल्मीकि रामायण, 1/23-45
78 आर० के० मुकर्जी हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 167
79 महाभारत वन पर्व, अध्याय 32-40, अनुशासन पर्व अध्याय 14
80 केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इडिया, भाग I, पृ० 231
81 निशीथ चूर्णि 19-236
82 आवश्यक निर्युक्ति, 509
83 आर० के० मुकर्जी हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 24-25
84 मौर्याज एड सातवाहनाज, पृ० 398
85 बृहज्जातक 15-1
86 आर० के० मुकर्जी हिंदू सिविलाइजेशन, पृ० 24
87 वही ।
88 सूत्र कृतज्ञ (सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट) XIV, पृ० 235-48
89 कब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग I, पृ० 379
द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 456
90 एच० सी० रायचौधरी प्रा० भा० का राज० इति०, पृ० 284
91 पतजलि महाभाष्य 2, 1-69 पृ० 323, 312-15, पृ० 212
92 पी० डी० अग्निहोत्री पतजलि कालीन भारत, पृ० 552
93 मेगास्थनीज 1-33 (मेक्रीन्डल)
94 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 158
95 वही, पृ० 171
96 राजतरगिणी 1-105-107 (अनु० स्टीन)
97 अष्टाध्यायी 4/1-19
98 महाभाष्य, 5-2-28, पृ० 175, 6-4-57, पृ० 445
98A वही, 5-2-76
98B एन० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिन्दू सेक्टस्, पृ० 94
99 'शिवभागवते प्राप्नोति' एव 'शूलेनान्विच्छति स आय शूलिक'—महाभाष्य : 5-2 76, पृ० 398
100 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 191
101 लिंगपुराण अध्याय 24, 127-131, वायुपुराण अध्याय 23, 210-13
102 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 453
103 वी० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 190
एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 96
104 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 202

105 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 204
106 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 140
107 वही, पृ० 147
108 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 214
109 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 461
110 वही।
111 कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडीकेरम, भाग III, पृ० 3
112 वही।
113 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XV, पृ० 138
114 कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडीकेरम, भाग VI पृ० 146
115 वही, भाग 9, पृ० 170
116 वही, भाग III, पृ० 289
117 वही भाग XXI पृ० 1-9
118 वही।
119 वही, भाग I, पृ० 13
120 वही, भाग X, पृ० 71
121 करम दण्डा अभिलेख, एपीग्राफिका इंडिका, भाग 100 पृ० 71
122 कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडीकेरम, भाग III पृ० 7
123 एपीग्राफिका इंडिका, भाग X पृ० 71
124 कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडीकेरम, भाग III पृ० 34
125 कालिदास मेघदूत, पूर्व मेघ, 29
126 वही, 37 39
127 रघुवंश 1 1
128 कुमार सम्भव 5 65 73
129 वायु पुराण, अध्याय 43, मत्स्य पुराण अध्याय, 146-160
130 अग्नि पुराण अध्याय 53, 54, 74, 75, 79, 97
131. पद्म पुराण—सृष्टि खंड, अध्याय 17
132 वामन पुराण अध्याय 43, 70, 71
133 कूर्म पुराण, अध्याय 37
134 कालिदास कुमार सम्भव, 5, 65-73
135 कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडिकेरम, भाग III, 96, 102, 107
136 वही, पृ० 167, 169, 181, 189
137 वही, पृ० 240-41
138 वही, पृ० 225
139 वही, पृ० 147
140 वही, पृ० 162-63
141. बाणभट्ट हर्षचरित, पृ० 79 83, (चौखम्बा)
142 वी० स्मिथ अर्ली हिन्दुस्तान आफ इंडिया, पृ०295-96
143 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग VIII, पृ० 91

144 राजतरंगिणी, बील, पृ० 163
145 बील बुद्धिस्ट रिकार्डिस्ट आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग I, पृ० 159
146 वही, भाग v, पृ० 223
147 वही, पृ० 233
148 वही, भाग XI, पृ० 266-69, 71
149 वही, 272, 276, 277, 279, 281
150 एन० क० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 59
151 वही, पृ० 63
152 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 459
153 केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग I, पृ० 147
154 गाथा सप्तशती 1 1
155 आर० जी० भडारकर कारमाइकल लेक्चर्स, 1921
156 शिल्पादिकारम 2
157 पुरम-166
158 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 459
159 द क्लासिकल एज, पृ० 205-6
160 वही, पृ० 210-11
161 वही, पृ० 183
162 वही, पृ० 200
163 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 150
164 द क्लासिकल एज, पृ० 260
165 वही, पृ० 648
166 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 937
167 द क्लासिकल एज, पृ० 647
168 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 159 60, 268
169 ईश्वरी प्रसाद मेडीवल इंडिया, भूमिका XXXI
170 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 196
171 सी० वी० वैद्य पूर्व मध्ययुगीन भारत, भाग II, पृ० 286 (मराठी)
172 विस्तृत चर्चा राज्याश्रय दर्शन, अध्याय 7 मे की गई है।
173 एच० एच० विल्सन रिलिजन आफ द हिंदूज, भाग I, पृ० 22०
174 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 266
175 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्ययुगीन भारत, पृ० 334
176 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 266 67
177 हॅगलिस ओरिजन आफ ब्राह्मनिज्म, पृ० 5-15 (1863 संस्करण)
178 अलबरूनी नबी भाग I, पृ० 79-89, भाग II, पृ० 468-69 (इलियट)
179 वही।
180 राजतरंगिणी 1, 129-130
181 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 367
182 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 198

183 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 138
184 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 267 68
185 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 200
186 केशवचंद्र मिश्र चंदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 207
187 वही।
188 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 449
189 थर्स्टन कास्टस एंड ट्राइब्स आफ साउथ इंडिया, पृ० 280
190 ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृ० 118
191 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 283 83
192 मद्रास जर्नल आफ लिट्रेचर एण्ड साइंस, पृ० 382-434
193 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० 285
194 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 268
195 शंकराचार्य ब्रह्मसूत्र—2, 2-37
आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 136
196 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 300
197. जयशंकर मिश्र ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० 83
198 ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृ० 22
199. देखिए इस अध्याय का 'अ' और 'ब'
200 अनुवाद—कॉवेल एण्ड गफ, पृ० 103 11
201 एपीग्राफिका कर्नाटिका भाग XVII
202 वही, भाग XII, पृ० 92
203 रा० ब० पांडे प्राचीन भारत पृ० 191
204 एपीग्राफिका कर्नाटिका भाग VII, खंड 1, पृ० 64
205 ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृ० 22 25
206 शिवपुराण पंचार्थ भाष्यदीपिका
207 बार्नेट सम नोट्स ऑन हिस्ट्री आफ रिलिजन
आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 139-42
208 वही, पृ० 141
209 एच० एच० विल्सन रिलिजंस आफ हिंदूज, भाग I पृ० 220-64
210 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत पृ० 141
211 अभिनवगुप्त परमार्थसार—जरनल आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, पृ० 707-747 (1910)
211A ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृ० 23
212 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 301
213 आर० जी० भंडारकर रिपोर्ट ऑन द सर्च आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट, पृ० 77 (1883 84)
214 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य मत, पृ० 147
215 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 300-301
216 बी० डी० शुक्ला : भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 322
217 ताराचंद इन्फ्लूएंस ऑन इस्लाम, पृ० 23

218 वही।
219 माधवाचार्य सर्वदर्शन संग्रह (अनुवाद . कॉवेल-गफ), पृ० 136-40
220 *क्षेमराज शिव सूत्र विमर्शिनी, 1-2-3 (कश्मीर सरकार द्वारा प्रकाशित)*
221 स्पद प्रदीपिका 42
222 अभिनवगुप्त परमार्थसार—जर्नल आफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, पृ० 728 (1910)
223 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 302
224 जर्नल आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, पृ० 728-34
225 के० के० भटनागर भारतीय सस्कृति, पृ० 322
226 देखिए—वसव पुराण अनुवाद जर्नल आफ बाम्बे बाच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग VIII
227 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास भाग I, पृ० 79
228 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 447
229 *बी० डी० शुक्ला भारतीय सस्कृति, पृ० 322*
230 एस० सी० नदीमठ ए हैण्डबुक आफ वीर-शैविज्म, पृ० 4 (1941)
231 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 151-152
231A एपीग्राफिया इडिका भाग V, पृ० 239
वर्थ जर्नल आफ द बाम्बे ब्राच आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग VIII, पृ० 65-221
232 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 399-400
233 के० आर० श्रीनिवास आयगर मसिग आफ बसव ए रेंडरिंग, पृ० 49-125
आर० नरसिहाचार्य हिस्ट्री आफ कन्नड लिट्रेचर
234 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 151
235 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 446
236 *ई० पी० राइस हिस्ट्री आफ कनरिज लिट्रेचर, भाग II, पृ० 26*
236A ताराचद इन्फ्लूएस आफ इसलाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 117
237 पचाय पचमार्तात्त प्रकरण, पृ० 1-35 (अनुवाद ब्राउन, 1903 बम्बई सस्करण)
238 वही।
239 जर्नल आफ बाम्बे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग VIII
240 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 153
240A ताराचद इन्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 117
240B दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 284
240C रेवरेंड एफ० किटेल कन्नड इग्लिश डिक्शनरी (1894)
240D ताराचद इन्फ्लूएस आफ इडियन ऑन इडियन कल्चर, पृ० 119 120
241 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 448-49
242 माधवाचार्य सर्वदर्शन सग्रह, पृ० 136-40 (अनुवाद कॉवेल-गफ)
243 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 390-393
243A आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 124
244 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 448

245 शिव-सूत्र विमर्शिनी—1, 2, 3
246 स्पद प्रदीपिका 4
247 एम० सी० नदीमठ ए हैण्ड बुक आफ वीर शैविज्म, पृ० 86
248 केशवचद्र मिश्र चदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 207
249 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 449
250 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 436
251 वी० डी० शुक्ला भारतीय सस्कृति, पृ० 322 23
252 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 159
253 वही।
254 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 382-434
255 वही।
256 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III पृ० 398
257 शिव ज्ञान-बोधम् स्तोत्र, 1 3 (अग्रेजी अनुवाद नल्लास्वामी पिल्लई)
258 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 296
259 द स्ट्रगल फार एपायर पृ० 451
260 वही, पृ० 452
261 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 296
262 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III पृ० 293 99
263 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 453
264 शिव ज्ञान सिद्धियार भाग II पृ० 25 (अनुवाद हॉमिग्टन)
265 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत पृ० 142
266 मेयकदर शिव-तत्त्व ज्ञान-बोधम, 2 3 (अग्रेजी अनुवाद नल्लास्वामी पिल्लई)
267 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 143
268 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 296
269 ताराचद इन्फ्लूएस आफ इसलाम ऑन इडियन कल्चरल, पृ० 22
270 शिव ज्ञान माया दियम् 6-1
271 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 453
272 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 143
273 मेयकेदर शिव ज्ञान-बोधम, 3 6
274 शभूदेव शैव सिद्धात प्रदीपिका, पृ० 22 32
275 ताराचद इन्फ्लूएस ऑन इस्लाम आन इडियन कल्चर, पृ० 22
276 शिव-ज्ञान-बोधम स्तोत्र, 6-9
277 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 397
278 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 455
279 शिव ज्ञान-बोधम्-स्तोत्र, 11, 12, 13
280 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 456
281 वेदांतसूत्र भाष्य, पृ० 23
282 वही, 24-27
283 वही, पृ० 30

284 लॉरेंजेन कापालिक एड कालमुखाज
285 (अ) डेविड लॉरेंजेन दोनो को अलग अलग मानते हैं। कापालिक कपाल को महत्त्व देते हैं।
285A हटर एनल्स आफ रूरल बेंगाल, पृ० 127-194
286 हाल गाथासप्तशती, 5/512
287 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 143
288 हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास, पृ० 171 (चौखवा)
289 बील बु० रिकार्ड्स आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग I, पृ० 55
290 जर्नल आफ द बावे ब्राच आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग XXIV, पृ० 26
291 कालिदास कुमारसभव, 5/66-73
292 सी० एन० कृष्णास्वामी अय्यर शकराचार्य, पृ० 45
293 माधवाचार्य शकर-दिग्विजय—अध्याय 15, श्लोक 1-28
294 सी० एन० कृष्णास्वामी अय्यर शकराचार्य, पृ० 46
295 वही, पृ० 64
296 वही, पृ० 65
297 वही, पृ० 66
298 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 458
299 वाणभट्ट हर्षचरितम्—तृतीय उच्छ्वास, पृ० 184
300 रामानुज ब्रह्मसूत्र, 2, 2, 35-36
301 बाणभट्ट हर्षचरितम-तृतीय उच्छ्वास, पृ० 188-89
302 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 188-89
ताराचद इन्फ्लूएस आफ इस्लाम आन इडियन कल्चर, पृ० 23
303 वाणभट्ट हर्षचरितम्, तृतीय उच्छ्वास, पृ० 189 90
304 कृष्ण मिश्र प्रबोध चद्रोदयम्, तृतीय अक, श्लोक 16, पृ० 115
305 वही, श्लोक 12, पृ० 111 112
306 वही, श्लोक 19, पृ० 121
307 वही, श्लोक 20, पृ० 122
308 वही, श्लोक 12, पृ० 111
309 वही, श्लोक 19, पृ० 121
310 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 459
311 आध्र के गुसुर जिले मे यह स्थित है। ऐसा जगन्नाथाचार्य का मत है।
हर्षचरित फुटनोट, पृ० 11
312 बाणभट्ट कादबरी, 644-47, पूर्वार्द्ध
313 मालती माधव, अक अष्टम्, पृ० 194 (निर्णयसागर प्रेस, बबई)
313A रीवर्डाड भाग I, पृ० 50
314 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 146
द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 459
ताराचद इन्फ्लूएस आफ इस्लाम आन इडियन कल्चर, पृ० 22
315 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर द इडियन एपायर, पृ० 198-200

316 रा० ब० पाडे प्राचीन भारत, पृ० 191
317 एस० सी० नदीमठ ए हैंडबुक आफ वीर शैविज्म, पृ० 2-4
318 स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 445
319 वही, पृ० 446
320 बाणभट्ट हर्षचरितम्, तृतीय उच्छ्वास, पृ० 171
321 एपी० इडिका, भाग I, पृ० 274
322 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 29-31
323 पार्जिटर इट्रोडक्शन टू मार्कण्डेय पुराण
324 स्कद पुराण अध्याय 107
325 अलबीरूनी—भाग III पृ० 136, (अनुवाद सतराम)
326 वही।
327 स्कद पुराण—अवति खड, 7 15, शिव महापुराण रुद्रसहिता, अध्याय 1
पुराणों ने द्वादश ज्योतिलिंगों को प्रात स्मरणीय माना है।
328 आर० सी० मजुमदार हिस्ट्री आफ बेंगाल, भाग I, पृ० 436
329 टी० जी० गोपीनाथ राव एलीमेंट्स आफ हिंदू आइकोनोग्राफी, भाग 11, पृ० 108
330 राजतरगिणी, प्रथम तरग, श्लोक 32
331 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 305 306
332 राजतरगिणी प्रथम तरग श्लोक 113, 131, 346 347, द्वितीय तरग, श्लोक 123, 134, 3 463
333 वही 3-460
334 वही, 4-189-90 4 208
336 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, भाग II, पृ० 380 81
337. बगाल एशियाटिक सोसायटी।
338 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 443
339 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 159
339 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 69
340 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 443
341 भावबृहस्पति की वरवल प्रशस्ति, एपीग्राफिया इडिका, भाग XI, XII, पृ० 208
342 अलबीरूनी, भाग III, पृ० 134 (अनुवाद सतराम)
343 वरवल प्रशस्ति, एपीग्राफिया इडिका, भाग XI XII, पृ० 208-9
344 केशवचद्र मिश्र चदेल और उनका राजस्व काल, पृ० 85
345 एपीग्राफिया इडिका भाग I पृ० 137 38
346 केशवचद्र मिश्र चदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 207
347 वही।
348 एपीरियल इडियन, भाग IV, पृ० 153
349 (अ) केशवचद्र मिश्र ' चदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 126
349 एनशियेंट इडिया, नबर 15, पृ० 43
350 प्रथम अक श्लोक 1 2 (चौखबा)

351 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 107
352 एपीग्राफिका इडिका, भाग I, पृ० 236-37
353 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 464
354 विक्रम स्मृति ग्रंथ, पृ० 580-591
355. एपीग्राफिका इडिया, भाग I, पृ० 236
के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 404-414
356 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 443
357 वही, पृ० 65-67
358 द क्लासिकल एज, पृ० 247
359 एनुअल रिपोर्ट आफ साउथ इडियन एपीग्राफी, पृ० 91 (1915)
360 इडियन एटीक्वेरीज भाग XXV, पृ० 113
361 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 402
362 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 153
363 वही।
364 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 443-44
365 कुट्टनीमतम्, श्लोक 3-5
366 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास, पृ० 390
367 पर्सी ब्राउन इडियन आर्किटेक्टर, अध्याय XXI-XXVI, पृ० 122-158
फर्गुसन केव टेंपल्स एड आर्किटेक्चर, भाग V
368 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 162-63
369 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 154
370 एम आर० बाला सुब्रह्मण्यम द अर्ली चोला टेंपल्स
372 एन० के० शास्त्री ए हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 195
वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास, पृ० 328
372 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 155
373 वही, पृ० 185
374 सी० मीनाक्षी एमिडनिस्ट्रेशन एड सोशल लाइफ अडर द पल्लवाज, पृ० 176
375 जर्नल आफ बाबे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, न० 36, भाग XIV, पृ० 29-30
376 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 444-45

अध्याय 4

शाक्त संप्रदाय

पूर्व मध्य युग मे जिन पाच देवो अथवा पचायतन की पूजा की जाती थी, उनमे शक्ति रूपिणी देवी का भी प्रमुख स्थान था। शक्ति हिंदुओं की आराध्या रही है। शक्ति अथवा शाक्त धर्म का अलग से अस्तित्व होते हुए भी वैष्णवो तथा शैवो म भी उसका स्थान रहा। शैवो के कापालिक-कालमुख सप्रदाय तो शक्ति तत्त्व मे अधिक विश्वास करते रहे। बौद्धो मे भी शक्ति उपासना ने जगह बना ली। जैन भी शक्ति के लक्ष्मी-सरस्वती रूपों के पूजक बन गये। पूर्व मध्य का काल तक शक्ति देवो के समान प्रभावशाली बन गयी। इस काल के दार्शनिक सिद्धातो ने मान लिया कि देवता ही नही वरन उनसे सबधित शक्ति ही सृष्टि के सृजन, पालन और सहार के लिए उत्तरदायी है। अत सर्वोच्च देव के साथ शक्ति को मान्यता दी गयी।[1] शाक्त धर्म पूर्व मध्य युग का प्रमुख धर्म था।

शाक्त सप्रदाय की उत्पत्ति

शक्ति की उत्पत्ति के बारे मे मतभेद है। कुछ विद्वान् ईश्वरकृष्ण की 'साख्यकारिका' के काल से ही शक्ति पूजा का आरभ मानते हैं।[1A] वैदिक साहित्य मे भी किसी शक्ति सपन्न देवी का उल्लेख नही मिलता।[2] परतु ऐतिहासिक दृष्टि से अब यह सिद्ध हो चुका है कि शक्ति की उपासना, शिवोपासना जितनी ही प्राचीन है।

उत्पत्ति

शक्ति-पूजा की उत्पत्ति तथा विकास का शैव धर्म से बडा सबध रहा। ज्यो ज्यो शिव का प्रभुत्व बढता गया, त्यो त्यो उमा (शक्ति) के माहात्म्य मे वृद्धि हुई। और जब शिव ने काल भैरव या विकट भैरव का रूप धारण कर लिया तो उमा भवानी बन गयी।[3] सिंधु सभ्यता मे परम नारी पुरुष (शक्ति-शिव) के युग्म की उपासना की जाती थी।[3A] इस सभ्यता के अवशेषो मे मिली 'नारी-मूर्ति' इसका समर्थन

करती है कि वे लोग नारी के रूप मे शक्ति के पूजक थे।[4] यह मातृ देवी थी। इसे 'परमा-नारी' भी निरूपित किया गया।[4A] मातृ देवी की उपासना को सिंधु सभ्यता मे बडा महत्त्व प्राप्त था। वह शिव से भी पहले पूजनीय थी।[5] सिंधु घाटी म टेराकोटा की कई नारी-मूर्तिया मिली हैं। वे नग्न एव अर्धनग्न हैं। उनकी कमर मे वस्त्र, मेखला तथा गले मे हार है। कुछ मूर्तिया धुए से काली पड गयी हैं। वह पूजा के लिए उनके समक्ष जलाये गये धूप दीप का परिणाम हो सकता है। अत यह नारी-मूर्ति मातृ-देवी व शक्ति ही थी।[6] सिंधु प्रदेश मे मातृ-देवी अन्य रूप मे भी मिलती है। इनमे से एक स्तनपान कराती मूर्ति है। यह जननी का दैवीकरण था।[7] सिंधु प्रदेश की मातृ-देवी समस्त मानव जगत की पालिका-पोषिका जननी थी। एक अन्य मूर्ति के गर्भ से निकले वृक्ष के कारण वह वानस्पतिक जगत की सृष्टिकारिणी अधीश्वरी थी।[8] एक अन्य मूर्ति के पशु-पक्षियो के साथ होने से वह पशु-पक्षियो की अधीश्वरी भी मानी गयी।[9] अत सिंधु प्रदेश की मातृ शक्ति म, समस्त जगत के सभी तत्त्वो को नियत्रित करने की शक्ति थी। शक्ति की पूजा का प्रारभ इसी मातृ-देवी स हुआ था।[10]

शिव के समान शक्ति भी भूमध्यसागरीय द्राविड आस्ट्रोलायड प्रजातियो की देन मानी जाती है।[11] भूमध्य सागर के निकटवर्ती इजिप्त म आयसिस' (Isis), एशिया माइनर मे 'सीबील' (Cypele) तथा सीरिया मे 'आस्ट्रेट' (Astrate) मातृ शक्ति के रूप मे पूजित थी।[12] सर जान मार्शल भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं।[13] परतु ऐतिहासिक तथ्य कुछ और भी प्रकाश डालते हैं। बीला घाटी मे शिव की आदिम उपस्थिति हमे मिलती ही है।[14] अत द्राविड-आस्ट्रोलायडो के पूर्व भी आदिम प्रजातियो मे मातृ सभ्यता के चिह्न मिलते हैं।[15] यद्यपि उसका रूप आदिम था।[15A] भारतीय आदिम जातिया इसका अपवाद न थी।[16] सिंधु सभ्यता के काल मे शक्ति पूजा ऐतिहासिक स्तर पर स्पष्ट और प्रखर रूप मे दृष्टिगोचर होती है। अत शक्ति भी शिव के समान प्राग ऐतिहासिक (Proto historic) मानी जा सकती है। सैधव्य शाक्त धर्म को मानते थे तथा शक्ति की उपासना अनेक रूपो म की जाती थी।[17]

नारी की शक्ति के रूप मे पूजा तथा कई नारी मूर्तियो का सिंधु-घाटी मे मिलना यह आभास देता है कि सैधव्य समाज मातृ प्रधान अथवा मातृ सत्तात्मक था।[18] यह द्राविड सभ्यता की विशेषता है। और जो समाज मातृ सत्तात्मक (Matriarchal) होता है, वही मातृ देवी की 'आद्या शक्ति' मानकर पूजा होती है।[19] ऐसा प्रतीत होता है कि सिंधुवासी, शक्ति अथवा मातृ देवी को पुरातन पुरुष परमात्मा की अर्धांगिनी मान पूजने लगे थे। इस पूजा ने ही शक्तिवाद को जन्म दिया।[20]

शक्ति की उपासना की उत्पत्ति के पीछे, कुछ विद्वानो[21] के विचार से अन्य तत्त्व

भी काम कर रहे थे। इनमे नारी शक्ति की सामाजिक और विशेषकर उसकी कृषि-सबधी उपादेयता ने ही उसे पूजनीय बनाया था।[22] यह नारी पूजन की उपयोगिता की भौतिकतावादी व्याख्या है। परतु यह वास्तविकता से परे है। आदिम प्रजातियो मे आरभ से ही वह अपनी प्रजनन एव सृजन शक्ति के कारण पूज्य मानी गयी थी।[22A] वह सृष्टिकारिणी देवी का प्रतीक और सर्वशक्तिमान ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति की प्रतिष्ठा थी।[23] आर्यों के आगमन के पूर्व ही सैंधव सभ्यता मे मातृत्व और शक्ति-मत की स्थापना हो चुकी थी। जन साधारण की इसमे आस्था थी।

व्याख्या

शक्ति साधक जगत की उत्पत्ति के पीछे 'शक्ति' को ही मूल तत्त्व मानते हैं और माता के रूप मे उसकी पूजा करते हैं।[24] समस्त देव-मडल शक्ति के कारण ही बलवान है। उसके बिना वे शक्तिहीन हो जाते है। यहा तक कि सृष्टि के निर्माण मे शक्ति ही ईश्वर की प्रमुख सहायिका है।[25] शक्ति ही समस्त तत्त्वो का मूल आधार है।[26] शक्ति को समस्त लोक की पालिका पोषिका माना गया।[27] वह 'प्रकृति का स्वरूप है'।[28] इस प्रकार शाक्तो अथवा शक्ति-पूजको ने प्रकृति की सृजनात्मक शक्तियो को पारलौकिक पवित्रता और ब्रह्मवादिता प्रदान कर दी।[29] अत शक्ति सृजन और नियत्रण की पारलौकिक शक्ति ही है। वह समस्त विश्व का सचालन भी करती है। इसी कारण से वह 'जगदबा' और 'जगन्माता' है।[30] सर्वोच्च ईश्वरी शक्ति ही मातृ रूप है जो सृष्टि का सृजन-पालन तथा सहार करती है।[30A] (God in Mother Form as the Supreme Power which creats, sustains, and withdraw the universe) उसे जन्म देकर विकसित एव सगठित कर परिभाषित करने मे अनार्यों का विशेष योगदान रहा।[31]

आर्य और शक्ति

आर्यों ने आरभ मे आर्येतर देवता शिव का तो विरोध किया, परतु वे शक्ति के प्रति तटस्थ और निरपक्ष रहे। वैदिक साहित्य मे शक्ति की आलोचना सबधी किसी ऋचा का पता नही चलता। शायद उन्होंने उसे महत्त्व प्रदान नही किया था, क्योकि वैदिक आदर्श 'पितृसत्तात्मक' (Patriachal)[33] अथवा 'पुरुष प्रधान' था।[34] इसके साथ ही उनके देव-मडल मे उनकी मातृ शक्ति[35] रूपा, आदिती,[36] पृथ्वी,[37] उषा,[37A] आदि थी। आर्यों ने भी शक्ति के तत्त्व को दुर्लक्षित नही किया था। परतु वैदिक साहित्य मे वर्णित देवियां पूजन की दृष्टि से अप्रधान थी।[38] वे शायद ही विश्व नियत्रण मे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर पा रही थी। उनमे से किसी को भी 'सोम' की आहुति नही दी गयी।[39] यद्यपि कई देवियो की स्तुति मे ऋचाओ की

रचना की गयी परंतु देवताओ की प्रत्यय (Suffix) मात्र हैं।[40] क्योकि भौतिकतावादी सिद्धात के अनुसार उनका आर्थिक महत्त्व बहुत ही कम था।[41] निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाये तो उस समय वैदिक आर्यो के समक्ष भौतिकतावादी दृष्टिकोण से देवताओ की सृष्टि का प्रश्न ही न था। वरन् देवी-देवताओ का आविर्भाव उस सर्वोच्च ईश्वरी तत्त्व का ही प्रतिनिधित्व करता था, जिसके प्रति आर्य अपने कल्याण के लिए कृतज्ञ थे। उस सर्वोच्च ईश्वर का तो कोई लिंग ही न था। उसे Her या It कह कर ही सबोधित किया जाता था।[42] वैदिक आर्य देवियो के महत्त्व के प्रति सजग थे। देवी के रूप मे शक्ति-पूजा उनके लिए अपरिचित न थी। वे मानने लगे थे कि शक्ति की सहायता से ही देव-मानव के समस्त क्रियाकलाप होते हैं।[43] इसीलिए उन्होने अदिति, उषा, पृथ्वी, सरस्वती सबधी शक्ति-पूजा की कल्पना बडे उदात्त रूप मे श्रीसूक्त तथा देवी सूक्त मे की।[44] ऋग्वेद मे ही महर्षि अभृण को दुहिता 'वाक' का उल्लेख मिलता है। शक्ति से इसकी अभिन्नता थी। वाक् शक्ति का कथन था, "मैं ही ब्रह्म के द्वेषियो को मारने हेतु रुद्र का धनुष चढाती हू। सेनाओ को मैदान मे लडाती हू। मैं ही आकाश और पृथ्वी सबमे व्याप्त हू। मैं सपूर्ण जगत की अधीश्वरी हू। पूजनीय देवताओ मे मैं प्रधान हू। समस्त भूतो मे मेरा प्रवेश है।"[44A] अत शक्ति के महत्त्व और देवत्व से वैदिक आर्य अपरिचित न थे।

शक्ति का आर्यीकरण

ऐतिहासिक स्तर पर शक्ति-पूजा तीन रूपो मे प्रचलित थी।

1. आदिम प्रजातियो मे उनकी पूजा रहस्यात्मक रीति से की जाती थी।
2. सिंधु-सभ्यता मे शक्ति का सुधरा मातृ-रूप पूजित था। पर बलि का प्रावधान उसमे भी किया गया था।
3. आर्य शक्ति के उदात्त रूप के पूजक थे।

आर्यो ने पूर्व मे प्रचलित शक्ति के दोनो रूपो और उनकी पूजा-विधि को सुधार कर अपना लिया। उन्होने उनका आर्यीकरण कर दिया। आर्य-अनार्यों के सामाजिक सहयोग ने भी इस प्रक्रिया को गति प्रदान की होगी। शिव-रुद्र के समन्वय के समान ही शक्ति के रूप गुणो का समन्वय हुआ। आर्यों ने चूकि उसके पूर्व प्रचलित रूपो सहित उसे अपनाया था, इसलिए उसे रुद्र-शिव के साथ रहने दिया गया, क्योकि सिंधु-कालीन सभ्यता के समय से ही नारी रूपी शक्ति शिव के साथ थी। इस काल मे पूजित नारी-मूर्तिया शिव-पत्नी उमा ही थी।[45]

उत्तर-वैदिक कालीन साहित्य से यह स्पष्ट लक्षित होता है। यजुर्वेद सहिता[46] मे अबिका अथवा रुद्राणी की उपासना की गयी। उसे रुद्र की बहिन निरूपित किया गया।[47] रुद्राणी अथवा अबा के शिव-परिवार से सबधित होने की पहली बार

स्वीकार कर लिया गया।[48] शिव रुद्र परिवार से सबधित हो जान पर शक्ति की उपासना स्तुति अबिके-अबालिके के रूप मे की गयी।[49] धीरे धीरे वह रुद्र की पत्नी कहलाने लगी और 'आदि मा' का सही रूप उसने धारण कर लिया।[50]

उपनिषद्-काल मे यह समन्वय पूर्णता को पहुच गया। शक्ति को नया निखार मिला। कठोपनिषद् मे ईश्वर की शक्ति को ईश्वर का अनिवार्य तत्त्व एव उन्ही का प्रेरक अग माना गया।[51] केन उपनिषद्[51A] मे उमा को हेमवती मानकर स्तुति की गयी। वह अब हेमवती या हिमवान की पुत्री है। यद्यपि वह शिव की पत्नी स्पष्ट रूप मे नही है, पर वह शिव के साथ सबधित हो रही थी। यही उमा शिव की पत्नी कही जाने लगी।[52] वह पार्वती भी कहलायी।[53] उपनिषद् काल मे शक्ति का पूर्णरूपेण आर्यीकरण हो गया। उमा शिव की अति सुदर आर्य प्रिया थी।[54] शक्ति के नामो का भी समन्वय हो गया। वह अपने विभिन्न नामो के साथ, महाकाव्य के पहले ही आर्यों म प्रतिष्ठित हो गयी। उसके आर्य-अनार्य गुणो, नामो, स्वरूपो और कर्मों का भी अच्छी तरह से समन्वय हो गया। शिव के समान शक्ति भी सृजन-सहार के साथ पालन की देवी मानी जाने लगी।

शक्ति के नाम

शक्ति, शिव के समान ही अपने आर्य-अनार्य गुणो के साथ लोकप्रिय हुई। उसके दुर्गा, वैरोचनी, कात्यायनी,[55] काली, कराली,[56] भद्रकाली, भवानी[5-] चडी, भैरवी, महाभैरवी, रक्तदती,[58] त्रिपुर सुदरी, स्यामा, कामेश्वरी[59] आदि नाम उसके अनार्य रूप-गुण एव सबधो का स्मरण करते है।[60A] इन नामो के माध्यम से उसका शिव के समान सहारात्मक गुण प्रस्तुत होता है।[60B] उमा, गौरी, पार्वती, जगत-गौरी,[61] कन्याकुमारी[62] आदि नाम उसके आर्य गुणो का उद्घाटन करते हैं। ये उसकी उदात्त सृजनात्मक शक्ति के परिचायक है। अपने सौम्य रूपो मे वह सँधव्य सभ्यता की जगत जननी, पालिका और सरक्षिका है। मुडक उपनिषद् मे उनके मातृत्व को उभारा गया। अग्नि की सप्त जिह्वाओ मे काली, कराली नाम शक्ति के परिचायक माने गये।[63] यही सप्तमातृकाओ की सख्या भी है।

शिव के साथ उमा या शक्ति का अब अभेद सबध हो गया। शिव के प्रभाव मे वृद्धि के साथ ही शक्ति के माहात्म्य मे भी वृद्धि हो गयी। शिव के समान शक्ति भी सृजन-सहार की देवी मानी जाने लगी। कन्या के रूप मे उमा ने चूकि उग्र तप किया था इसलिए उसकी पूजा 'गौरी' रूप मे भी होने लगी।[64] शिव के साथ वह उमा-पार्वती, महाभैरव के साथ महाभैरवी और अकेले महिषासुर मर्दिनी, चामुडा तथा सिहवाहिनी बन गयी।[65] कुमारी होने से वह ललित भी कहायी।[66]

जाते थे।[87]

मौर्य कालीन ईसा पूर्व की चतुर्थ शताब्दी की धार्मिक स्थिति में विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। इस काल में भी देश में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय थे।[88] अशोक के बौद्ध धर्म को राजकीय सरक्षण-समर्थन देने के कारण ब्राह्मण धर्म व उसकी शाखाओं को, जिनमें शक्ति-पूजा भी सम्मिलित थी, थोड़ा धक्का अवश्य लगा था परतु उसका लोप नहीं हुआ था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के आधार पर पता चलता है कि हिंदू देवी-देवताओं में शक्ति के उपासक अपराजिता (दुर्गा) नाम से उसकी उपासना करते थे।[89] इसके साथ ही अदिती, सरस्वती, मदिरा, अनुमति[90] और श्री[91] की पूजा भी होती थी। पतजलि भी अनेक देवियों की पूजा का समर्थन करता है।[92]

शुग-कण्व सातवाहन काल में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान प्रारभ होता है। वैदिक धर्म की शाखा के रूप में शक्ति पूजा का महत्त्व भी बढ़ा ही होगा। शुगकालीन प्रसिद्ध वैयाकरण और पाणिनी के भाष्यकार पतजलि इस काल की धार्मिक अवस्था पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं। इस काल में शक्ति गौरी नाम से पूजित थी।[93] उमा के अन्य नामो, जो पाणिनी काल में प्रचलित थे (जैसे रुद्राणी, शर्वाणी, भवानी आदि) का भी चलन था।[94] अम्बाडा, अम्बिका, अम्बालिका भी कालातर में गौरी के पर्याय बन गए।[95] इसी काल में सरस्वती, लक्ष्मी, यमी का भी पूजन होता था।[96] अन्य देवताओं के साथ देवी की मूर्तियां भी पूजार्थ बनने लगी थी। भक्त उन मूर्तियो को घर ले जाकर उनकी व्यक्तिगत रूप से पूजा भी करने लगे थे।[97]

न केवल भारत में वरन् भारत के पश्चिमोत्तर सीमात गाधार (कधहार) में भी शिव के साथ उनकी शक्ति उमा की पूजा की जाती थी।[98] एजेस प्रथम के सिक्को पर सिंहवाहिनी दुर्गा उत्कीर्ण मिलती है। यह तथ्य उसके शाक्त होने का परिचायक है।[99] पाचाल नरेश भद्रघोष की मुद्राओं पर भी भद्र-शक्ति को अंकित किया गया था। वह भी शक्ति-भक्त था।[190]

कुषाणवशी शासक भी धर्म प्रिय थे। इस वश का शासक विम कदफिसेज शिव का भक्त था।[101] अत शिव-पत्नी शक्ति के प्रति उसने श्रद्धा भक्ति प्रकट की हो तो आश्चर्य नहीं। आरण्यक उपनिषद् काल से ही रुद्र अथवा शिव 'उमापति' और अबिकापति' कहे जाने लगे थे।[102] इसी वश के एक अन्य शासक हुविष्क की मुद्राओ पर भी उमा की मूर्ति उत्कीर्ण है। ये प्रमाण यह सिद्ध करते हैं, कि उस काल के अफगानिस्तान, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रात और उत्तरी भारत में शक्ति-पूजको का सप्रदाय था। इन मुद्राओं में शिव उमा के साथ नहीं हैं।[103]

इसमें कोई सदेह नहीं कि शक्ति पूर्व गुप्त युग में विष्णु शिव की तुलना में एक अमुख्य देवी बनी रही। पर गुप्त काल तक आते-आते उसके प्रभाव में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। इस लोकप्रियता का विश्लेषण करते हुए श्री एच० डी० भट्टाचार्य ने तर्क

प्रस्तुत किया है कि उसके सहारात्मक नामो—चडी, चडिका, भीमा, काली आदि के साथ ही उसका समन्वय अग्नि की सप्त जिह्वाओ और विद्या की देवी सरस्वती से हो गया था।[104] अत इस कारण वह 'वेद माता', 'सर्व वर्णा', 'छदस माता' के नामो से भी जानी जाने लगी।

शक्ति मातृ रूप मे पालन की देवी, शिव-पत्नी रूप मे सृजन की देवी और अपने उग्र रूप भैरव-रुद्र की पत्नी के रूप मे सहार की देवी बन गई थी। गुप्त काल मे उसके ये तीनो रूप प्रचलित थे। इस काल के पुराणो ने जब शक्ति का निरूपण 'माया', 'ईश्वर की शक्ति' आदि के रूप मे किया तो उसके महत्त्व मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

गुप्त काल मे पुराणो के लेखन सकलन के साथ 'देवी माहात्म्य' मे असाधारण वृद्धि हुई। इनमे शक्ति द्वारा शुभ निशुभ, चड-मुड, रक्तबीज तथा महिषासुर के सहार की कथा प्रस्तुत कर उसको प्रधानता दी गयी।[105] नारायणीय स्तुति मे तो देवी के अवतारो की भी कल्पना की गयी।[106] महाकवि कालिदास ने भी देवी से प्रभावित होकर उनकी शिव-पार्वती युग्म के रूप मे वदना की।[107] उनका 'कुमार सभव' तो पार्वती के प्रभाव से परिपूर्ण है। वे उसकी प्रधान नायिका हैं। मेघदूत मे भी उन्होने पार्वती के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।[108]

शक्ति अनेक नामो से इस युग मे पूजित थी। इनमे महेश्वरी, गिरीशा, ईशानी, शैल-पुत्री, गिरिजा, अन्नपूर्णा, कात्यायनी तथा चडी काफी लोकप्रिय हुए।[109] इसका अर्थ यह हुआ कि शक्ति, शिव-पार्वती युग्म के अलावा भी स्वतत्र रूप से पूजित थी। उन्होने अपना स्वतत्र अस्तित्व भी बनाए रखा।[110] स्वतत्र रूप मे उनकी कई मूर्तिया मिलती हैं। मध्यप्रदेश के उदयगिरी मे, इस युग की बारह हाथोवाली दुर्गा की मूर्ति मिली है।[111] मध्यप्रदेश के ही भूमरा की महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति भी लोगो के शाक्त प्रेम का परिचायक है।[112] भीटा मे प्राप्त महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति भी उस क्षेत्र मे शक्ति की उपासना का बोध कराती है।

गुप्त नरेशो का राजकीय सरक्षण न मिलने के बावजूद भी शक्ति पूजा का चलन जन-सामान्यो और सामतो के बीच था। उसकी मूर्तिया, पौराणिक कथाओ के आधार पर,[113] द्विभुज, चतुर्भुज और द्वादश भुजाओवाली उत्कीर्ण की गईं। गुप्त काल मे त्रिशूल से महिष-असुर के गले पर प्रहार करते हुए उसे दर्शाया गया।[114] नाचन कुठार का पार्वती मदिर शक्ति के सौम्य रूप की पूजा का समर्थन करता है।[115]

शक्ति का मातृ-रूप इस काल मे लोक-स्तर पर उपास्य था। लोगो मे सप्त-मातृका की पूजा प्रचलित थी। इन सप्त-मातृकाओ मे—ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इद्राणी, यमी (चामुडा) की गणना की गई थी।[116] ये नाम इन्हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वराह, इद्र आदि की पत्नियां और शक्ति निरूपित करते

हैं। उन्ही की शक्ति के रूप मे इनकी पूजा भी होती थी।[117] इनमे से माहेश्वरी का दुर्गा के रूप मे अपना महत्त्व हो गया था।[118] शक्ति-रूपिणी सप्त मातृकाओ का मूर्तीकरण भी आरभ हो गया था। दशपुर नरेश विश्ववर्मन के मत्री कुमाराक्ष ने मातृकाओ के लिए मदिर बनवाया था।[119] बिहार का स्तभ लेख भी इसका समर्थन करता है।[120] छठी सदी की सरायकेला (उडीसा) मे प्राप्त सप्त-मातृकाओ की मूर्तिया भी उस क्षेत्र मे शक्ति-पूजा का समर्थन करती हैं।[120A]

हर्ष युग मे शक्ति की पूजा का प्रभाव कम न हुआ। सारे भारत मे वह अपने विभिन्न नामो से पूजित थी। चीनी यात्री हेनसाग ने उत्तर-पश्चिमी सीमात के पोलूशा की पहाडी पर भीमादेवी (दुर्गा) का मदिर देखा था। यहा देश के दूरस्थ भागो से साधक, पूजक और तीर्थयात्री पूजा-दर्शनार्थ आते थे। शक्ति समाज के सभी वर्गों मे समान रूप से पूजित थी।[121]

स्वय वर्धन परिवार मे भी शक्ति के प्रति श्रद्धाभक्ति थी। महाराज प्रभाकर-वर्धन की स्वास्थ्य कामना हेतु आध्रदेशी पुजारी को चडिका की मनौती हेतु रखा था।[122] यह तथ्य यह भी दर्शाता है कि दक्षिण मे भी शक्ति-पूजा का बोलबाला था।

दक्षिण मे शक्ति-उपासना

शक्ति की भक्ति का विकास दक्षिण मे द्राविडो के कारण ही हुआ था। दक्षिण की बहुसख्य जनता द्राविड होने से मातृ-सत्ताक थी।[123] अत शिव शक्ति की पूजा वहा साथ साथ हो रही हो तो आश्चर्य नही। ऐतिहासिक स्तर पर शक्ति-उपासना के ठोस प्रमाण हमे सातवाहन काल मे मिलते है। इस युग मे उसका गौरी रूप पूजित था। शक्ति की देवी गौरी के देवालय भी बनने लगे थे।[124] सातवाहन राजा हाल शिव के साथ पार्वती का भी भक्त था।[125] शक्ति की मूर्तिपूजा का समर्थन पतजलि भी करता है।[126] दक्षिण भारत का कन्याकुमारी का शक्ति मदिर भी दर्शाता है कि दुर्गा रूप मे शक्ति वहा पूजित थी।[127]

सगमकालीन साहित्य मे शक्ति के मातृ रूप की स्तुति की गई है।[128] दक्षिण मे भी शक्ति अपने कई नामो से जानी जाती थी। इसके मदिरो का भी वहा निर्माण होने लगा था। चोल नरेश विजयालय ने तजौर मे निशुभसूदनी (दुर्गा) के मदिर का निर्माण कराया था।[129] शक्ति के प्रति विजयालय भक्ति का भी यह परिचायक है।

शक्ति ने धीरे-धीरे अपना प्रभाव दक्षिण मे बढाया था। वहा उसे सभवतया जैन और स्वधर्म की अन्य शाखाओ जैसे, वैष्णव और शैवो की प्रतिद्वद्विता का भी सामना करना पडा था। इसी कारण से उसका प्रचार बडी तेजी से नही हुआ। फिर भी जनता का एक वर्ग और कुछ राजा-नरेश शक्ति भक्त थे। छठी सदी मे निर्मित दुर्गा-मदिर इसका समर्थन करता है।[130]

शक्ति का महिषासुर मर्दिनी रूप भी दक्षिण मे पूजा हेतु प्रयुक्त होने लगा था। पल्लव नरेश महेद्रवर्मन प्रथम के काल मे सातवीं सदी मे मामल्लपुरम के मदिर मे सभवतया पूजा हेतु महिषासुर मर्दिनी उत्कीर्ण की गयी।[131]

इसी काल मे दक्षिण भारत के आध्रप्रदेश मे शक्ति की पूजा चडिका के रूप मे की जाती थी। शक्ति-पूजा का स्वरूप तान्त्रिक था। आध्र के शाक्तो ने पूजा की इस विधि मे विशेषता प्राप्त कर ली थी।[132] विध्य क्षेत्र के वन कातर मे चामुडा का एक भव्य मदिर था। उस क्षेत्र की वन्य जातियो की वे आराध्या थी।[133]

पूर्व मध्ययुग मे शक्ति का लौकिक रूप

पूर्व मध्ययुग तक आते-आते शक्ति-पूजा का स्वरूप ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छी तरह से स्पष्ट और परिपुष्ट हो गया था। उसकी उपासना विधि निश्चित हो गयी थी। शक्ति की मूर्तियो की विभिन्न रूपो मे भक्ति प्रारभ हो गयी थी। इनमे कुछ मूर्तिया सहार का और अन्य सृजन-पालन का प्रतीक थी। पुराणो ने उसकी उपासना-विधि को निश्चित कर दिया था।[134] अन्य सप्रदायो के देवी देवताओ के समान शक्ति की पूजा भी पूरे आडबर अर्थात् दूध घृत, धूप-दीप, पुष्प-चदन, अगरु आदि से शायद की जाने लगी थी। पर उसकी पूजा का अन्य स्वरूप भी मिलता है। इसमे वलि को भी प्रधानता दी गई थी।

वलि-प्रथा

पूर्व मध्ययुग मे शक्ति, 'दक्षिणाचार' एव 'वामाचार' रीति से पूजित थी।[135] वामाचार प्रथा का शक्ति के सहारक रूप के कारण सभवतया प्रारभ हुआ था। इसे तात्रिक रीति पूजा भी कहते है। सिंधु सभ्यता मे प्राप्त एक मुहर मे वलि दृश्य उत्कीर्ण है। इस पर से विद्वानो ने वलि-प्रथा को अत्यत प्राचीन माना है, जिसका सबध शक्ति पूजा से था।[136]

शक्ति-पूजा का आर्यीकरण होने के बाद उपासना विधि मे भी सुधार हुआ। शक्ति की अतान्त्रिक रीति से भी पूजा होने लगी।[137] अतात्रिक रीति मे धूप दीप, चदन, उडद, उपवास और देवी-स्तोत्र का पाठ होने लगा था। परतु तात्रिक रहस्यात्मक उपासना विधि भी प्रचलित रही। विशेषकर आदिम जातियों मे उपासना की यह विधि वलि समेत प्रचलित रही।[138] इनकी आराध्य चडी थी। मौर्य काल से गुप्त काल तक शक्ति के रुद्राणी, भवानी, अबाडा, अबिका, चडी आदि नाम शक्ति के तात्रिक पूजन की पद्धति का समर्थन करते हैं।[129] हर्षकाल मे दक्षिण व भारत के अन्य भागो मे यह रीति अधिक प्रचलित थी। वज्रयानी एव सहजयानी बौद्ध तात्रिक उपासना पद्धति का सभवतया शाक्त मत पर प्रभाव पडा था।

विंध्य के वन्य प्रदेश की वन्य जातिया शक्ति की तान्त्रिक रीति से पूजा करती थी। वे देवी चामुडा को बलि आदि भी चढ़ाती थी।[140] पशु के साथ ही मानव बलि का भी प्रावधान इस विधि मे था। हेनसाग को भी शक्ति-पूजकों ने पूजार्थ बलि चढाने की तैयारी कर ली थी। उसने बडी कठिनाई से अपनी जान बचायी।[141] तांत्रिक पूजक देवी स्तोत्र का पाठ करते थे और सात दिनो तक उपवास भी रखा जाता था।[142] भक्त अपनी समृद्धि के लिए इस रीति से देवी की उपासना करते थे। इच्छा पूर्ण हो जाने पर वे देवी को भेंट चढाने की शपथ भी लेते थे।[143] शाक्त-भक्त शिव की अपेक्षा शक्ति को अधिक महत्त्व देते थे। पालघरी मे शक्ति का मदिर पर्वत के ऊपर था, जबकि उनके पति शिव का मदिर उनके चरणो मे पर्वत के नीचे बनाया गया था।[144] दक्षिण म भी शिव, शक्ति के बिना अपूर्ण थे। इसीलिए अर्द्धनारीश्वर की मूर्तिया बनने लगी थी। ये भी कई उपसप्रदायों मे बट गये।[145]

शक्ति के सप्रदाय

पूर्व मध्य काल मे शक्तिपूजक अतांत्रिक और तांत्रिक शाखाओ के अतिरिक्त कई स्थानीय दलो मे विभाजित हो गये थे। इनमे काश्मीरी, विलास, गौड और केरलीय नामक चार सप्रदाय मुख्य हैं। वैसे कालातर मे इनकी नौ आमनाए बनी।[146] साधना की विधि मे स्थानीय कारणो से जो अतर आया उसी ने समुदाय भेद उत्पन्न कर दिया। वामाचार शाक्त दीक्षा विधि मे महापद्मासन मे शिव-अक पर बैठी शक्ति के ध्यान तथा चक्रपूजा का उपदेश देते हैं। कौलवादी शाक्त, शक्ति के नारी-रूप की पूजा पसद करते हैं। शाक्तो की समयिन शाखा उसके काल्पनिक रूप की भक्त है। नारी रूप अपनाने के कारण कौलवादियो ने मदिरा, मत्स्य, मास, मैथुन और मुद्रा अर्थात जीवित योनि की सहायता से पूजा का प्रावधान प्रचलित किया।[147] इससे उनकी कटु आलोचना हुई। वैसे सभी शाक्त सप्रदाय साधक विधि के लिए मत्र, बीज, यत्र, मुद्रा, न्यास, भूत शुद्धि के साथ क्रिया, चर्चा, उत्सव आदि को मानते हैं।[148]

समस्त देश मे शक्ति के उपासक इस काल मे मिलते हैं। गौड (बगाल), कामरूप (आसाम) काश्मीर और गुजरात मे शक्ति-पूजा का अधिक जोर रहा। वामाचार और अनार्य पूजन विधियों के होते हुए भी ब्राह्मणो ने भी शक्ति सप्रदाय को अपनाया। वे शक्ति की त्रिपुरा सुदरी रूप मे पूजा करते है। पूजा हेतु लाल वस्त्र लाल चदन, व्याघ्राबर, पशु बलि के स्थान पर तिल, अर्घ्य, धूप दीप, नैवेद्य, मधुपर्क, आचमन, वसन आदि से पूजा करते हैं।[149]

शाक्तो का सुधारवादी रूप

शाक्तो ने वीर शैवो के समान पूजा व वर्णाश्रम धर्म के क्षेत्र मे क्राति कर दी। शूद्रो

और नारियों के लिए उन्होंने मोक्ष के द्वार खोल दिये।[150] उन्होंने नारी को 'स्त्रियो देव', 'स्त्रियो प्राण' कहकर उसका सामाजिक और धार्मिक दर्जा बढा दिया।[151] इसीलिए वे नारी व कुमारी को शक्ति का रूप मान कर पूजते हैं। वे ज्ञानवान शाक्त शूद्र को 'गुरु पद' पर प्रतिष्ठित करने मे हिचकते नही।[152]

शक्ति मत का प्रभाव

पूर्व मध्य युग मे शक्ति तत्व प्रभावशाली दिखायी देता है। वैष्णव और बौद्ध मतो मे भी शक्तिवाद के दर्शन होते है।[153] जैनो के शासन-देव भी अपनी देवियो के साथ दृष्टिगोचर होते हैं।[154] शकर का वेदात दर्शन भी 'ब्रह्म' की 'माया-शक्ति' के महत्व का प्रतिपादन करता है।[155] इसी माया-शक्ति के माध्यम से सर्वोच्च ब्रह्म सृष्टि का निर्माण करता है।[156] तत्कालीन धार्मिक जीवन का कोई भी अग शक्ति के प्रभाव से अछूता न बचा। इसीलिए हमे देव मडल मे शिव पार्वती, लक्ष्मी-नारायण आदि के युग्म दृष्टिगोचर होते है। यहां तक कि गणेश जैसे देवता की शक्ति गणेशिनी का भी सृजन कर लिया गया।[157] बौद्ध मत भी 'तारा अवलोकितेश्वर' की साथ-साथ पूजा करने लगा।[158]

इस काल के सभी प्रमुख देवताओ से अलग भी शक्ति का अपना स्वतत्र अस्तित्व है। बगाल मे वे रूप विद्या', 'सिद्ध योगेश्वर', 'दन्तुरा' आदि के रूप मे स्वतत्र रूप से पूजित हैं।[159] शिव के समान उनके अपने गण भी हैं, जिनमे भैरव तथा चौंसठ जोगिनिया प्रमुख हैं।[160]

शक्ति-पूजा ने पूर्व मध्य कालीन धार्मिक क्षेत्र मे एक नयी जागृति उत्पन्न कर दी। उसने धर्म को एक नया स्फुरण प्रदान किया। तत्कालीन धार्मिक जीवन शक्ति-मय हो गया। फलस्वरूप शाक्त मत को राजवशो और जन-साधारण का अच्छा समर्थन मिला। ब्राह्मणो व विद्वानो के शक्ति से सबधित होते ही उसका दार्शनिक पक्ष भी परिपुष्ट हुआ। शक्ति दर्शन का विश्लेषण समीचीन होगा।

शाक्त-दर्शन

शक्ति को अलग देवी मान लेने पर दर्शन की अलग विद्या का विकास किया गया। यह 'शाक्त-दर्शन' कहलाया। अन्य दर्शनो की तुलना म इसकी विशेषता इसकी तांत्रिकता मे है। देवी के 'सृजन पालन-सहार' रूपो से ही शाक्त दार्शनिको को प्रेरणा मिली होगी। शाक्त-दर्शन शक्ति मे आर्य-अनार्य पद्धतियो के समन्वय से भी प्रभावित हुआ था, क्योंकि तान्त्रिक विधि से बलि की अनिवार्यता भय, कृतज्ञता और मास के प्रति मोह का परिचायक थी।[161] पूर्व कालो से चला आ रहा जादू-टोना, आदिम जातियों में प्रचलित रहस्यवादी प्रथा और बौद्ध तत्र का मिला जुला प्रभाव शाक्त-दर्शन पर पड़ा हो तो आश्चर्य नही।[162]

शाक्त-दर्शन देवी के तीन रूपो को मानता है।[163]

1. सौम्य रूप—सामान्यतया इसकी पूजा की जाती है।
2. प्रचण्ड रूप—कापालिक-कालमुख इसके पूजक हैं।
3. शाक्त-पूजित काम प्रधान रूप।

शाक्तो ने शक्ति को ही 'इष्ट देव' माना है, इसलिए वे शाक्त कहलाते हैं।[164]

अपौरषेय होने से शाक्त-दर्शन वेद, आगम आदि को मान्यता देता है।[165] ऋग्वेद मे ही सबसे पहले देवी की स्तुति की गयी है।[166] मत्र वेदो के अग हैं, अत तत्र भी वैदिक शाखा माने गये।[167] शाक्त तत्र को पूजा की एक विधि मानते हैं।

शाक्त-दर्शन शक्ति को ही समस्त सृष्टि का सर्जक मानता है। परतु शक्ति स्वय लिगहीन, अपरिमित, अचिन्त्य, समस्त सृष्टि का आधार सर्वोच्च ब्रह्म, द्वैत-शून्य तथा प्रकाशमान है।[168] वह चिद्रूपिणी तथा परमात्मा की 'पराशक्ति' है।[169] शक्ति ही शिव का आद्य तत्त्व है। शक्ति शिव मे अनुप्रविष्ट होती है तब बिंदु सवर्धित होता है। नाद व बिंदु मिलकर मिश्र-बिंदु बनते हैं। शक्ति मूल-बिंदु, नाद-बिंदु, श्वेत पुरुष-बिंदु और रक्त स्त्री-बिंदु पर आधारित है। ये चारो तत्त्व काम-कला का निर्माण करते हैं।[170]

शाक्त, शक्ति के 'महाशक्ति' और 'आद्य ललिता' रूप को ही राम-कृष्ण अवतार का मूल तत्त्व मानते हैं जो आसुरी वृत्तियो का नाश करती हैं। वे महाकाली को भैरव-महाकाल तथा महाविष्णु की शक्ति मानते हैं।[171] वे यह भी स्वीकार करते हैं कि पुरुष की अपेक्षा सृष्टि का सृजन मातृशक्ति से ही है। अत ब्रह्मज्ञान भी उसी से सभव हो सकता है।[172]

यद्यपि शक्ति उमा, पार्वती, प्रकृति, चडी आदि अनेक नामो से पूजित है। परतु उसकी अनेकता मे भी एकता के दर्शन होते हैं। वह सभी देवताओ की मूलाधार है। ब्रह्मा की सृजन शक्ति, विष्णु की पालन-शक्ति और शिव की सहार-शक्ति भी उसी से है।[173] सृष्टि के पच तत्त्व भी उसी 'आद्य कालिका', 'महायोगिनी' से ही सबधित हैं।

'जीवात्मा' जो कि शक्ति का ही अश है उससे अलग नही है। उसे सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वह—

> "अह देवी नाचानयोस्मि ब्रह्मैवाहम् नाशोकभक्त
> सच्चिदानद रूपो मे नित्यमुक्त स्वभावत"

अर्थात मैं देवी के अतिरिक्त कुछ नही हू, मैं समस्त दुखो से परे सच्चिदानद ब्रह्म हू। परतु वह भी शक्तिरूपिणी माया से बधा है। जीवात्मा 'पशु' है। और गुरु कृपा से दीक्षा पा लेने पर मुक्ति हेतु उसे साधना करनी चाहिए।[174] क्योकि सिद्धि ही जीवात्मा का ध्येय है। सिद्धि की सहायता से जीवात्मा मुक्ति पर 'वीर' और पूर्ण मुक्त होने पर 'कौल' पद पा सकता है।[175] यदि साधक सजग हो और

उसे सही गुरु मिले तो वह शक्ति और आत्मा की एकता के दिग्दर्शन उसे करा सकता है, क्योकि दोनो ही शुद्ध और चिन्मय है। परतु उसके लिए साधना आवश्यक है। साधना-शक्ति से सिद्धि प्राप्त होती है। अत साधना-शक्ति का ध्येय मानव मे अतर्निहित शक्तियो को जागृत करना है।[176]

दार्शनिक पृष्ठभूमि मिलते ही शाक्त-मत सुदृढ आधारशिला पर खडा हो गया। उसकी जनप्रियता ने उसे राज सरक्षण भी पूर्व मध्य काल मे दिलाया।

शाक्त मत को राजाश्रय

पूर्व मध्य युग मे काश्मीर से कन्याकुमारी तक शक्ति पूजा का प्रचार था। वह राजघरानो, सामतो और जन साधारण मे समान रूप से लोकप्रिय एव पूजित थी।[177]

इस युग मे मार्कण्डेय पुराण, चतुर्वर्ग चितामणी, शारदा तिलक तत्र और रूप मडन आदि ग्रथो मे शक्ति का जो रूप निरूपित किया गया था उसी के अनुरूप देवी-प्रतिमाए और उसके मदिर भारत भर मे बनने लगे थे। पुराविदो और कला-समीक्षको ने इनमे साम्यता ढूढ निकाली है।[178] देवी के साथ ही साथ तान्त्रिक पूजा से सबधित षटकोण, बीज, हृरिम आदि भी बानाये जाते थे।[179]

काश्मीर के अधिकाश नरेश शैव धर्म के अनुयायी थे। चूकि शक्ति शिव से सबधित थी इसलिए उसकी पूजा-अर्चना भी की जाती थी। कल्हण ने अर्द्धनारीश्वर की वदना की है।[181] शक्ति, गौरी, पार्वती, विंध्यवासिनी, भ्रमरवासिनी, अमोघ-दर्शना, भगवती तथा 64 योगिनियो के रूप मे काश्मीर मे पूजित थी।[182]

बगाल, बिहार, उडीसा तथा कामरूप शक्ति पूजा के प्रधान केंद्र बन गये थे। इन भागो मे वह नवदुर्गा, शैल पुत्री, महागौरी, चद्रघटा, स्कदमाता, कुशमदा, कालरात्री, सिद्धिदात्री, उग्रचडा, प्रचडा, चदोग्रा, चदा, चदावती, चदनायिका, रुद्रचदा, अतिचद्रिका, भद्रकाली, कालभद्रा, महाकाली, जेष्ठा और तान्त्रिको के मध्य धूम्रवती, बगला, छिन्नमस्ता, शोडषी, भुवनेश्वरी, धूमावती, प्रत्यगिरा, राज-राजेश्वरी,[183] कचनदेवी, सर्वमगला, वाराही, नारसिंही आदि नामो से अचित थी।[184]

तत्कालीन बगाल के पाल तथा सेन घराने बौद्ध धर्म के समर्थक थे।[185] परतु बगाल के अनेक भागो मे जन-सामान्य के बीच शक्ति-पूजा का प्रचलन था। शक्ति की अनेक मूर्तिया, बगाल के राजशाही तथा दीनाजपुर मे मिली हैं। इनमे से कुछ नवदुर्गा की हैं।[186] बगाल मे ही शक्ति सबधी काफी साहित्य का सकलन-लेखन इस काल मे किया गया। वहा के लोक-नायक बाउल-सप्रदाय ने शक्ति की आराधना मे अनेक लोक गीतो की रचना कर उसे घर-आगन मे फैला दिया।[187]

प्रतीहार नरेश नागभट्ट द्वितीय भगवती की उपासना करता था। भोज प्रथम

ने भी शक्ति की अर्चना की थी। दोनो ने अपने राज्यकाल मे शाक्तो को सरक्षण-समर्थन दिया था।[188]

सप्तमातृकाओ सबधी अनेक फलयपट्ट भारत के कई शैव मदिरो मे प्राप्त होते हैं।[189] मध्यप्रदेश के भेडाघाट (जबलपुर) म इसी युग मे चौसठ जोगिनियो का मदिर निर्मित किया गया।[190] खजुराहो के चदेलकालीन मदिरो मे भी चौसठ योगिनी की पूजा होती थी।[191] वही के कदरिया महादेव के मदिर मे पार्वती की चित्ताकर्षक मूर्तिया उत्कीर्ण मिलती है।[192] चदेल शासक सुलक्षण वर्मा, पृथवी वर्मा, मदन वर्मा भी शक्ति के भक्त थे, क्योकि उनकी मुद्राओ पर देवी की आकृतिया उत्कीर्ण की गयी थी।[193] रानीपुर-जुरल, कोयम्वटूर तथा कालाहाडी के क्षेत्र मे भी चौंसठ योगिनी ही पूजित थी। इन क्षेत्रो मे भी इनकी मूर्तिया प्राप्त होती हैं।[194]

गहडवाल वश शाक्त न था। परतु वे शक्ति-उपासना के प्रति उदार थे। गहडवाल राज्य सीमा मे दुर्गा की नवरात्र पूजा होती थी।[195] शाक्त नौ दिन तक हवन-उपवास कर विधि से देवी दुर्गा का उत्सव मानते थे।

राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम[196] ने एलोरा के भव्य कैलास मदिर का एक गुफा मे निर्माण कराया। शक्ति रूपा पार्वती अपने पति शिव के साथ विभिन्न रूपो एव मुद्राओ मे इस गुफा मदिर मे उत्कीर्ण की गयी। अत राष्ट्रकूटो के मध्य से शिव-पत्नी के रूप मे पूजित थी। यहा सप्त मातृकाए भी उत्कीर्ण की गयी।

राष्ट्रकूट राज अमोघवर्ष महाकाली का भक्त था। जन कल्याण के लिए महा-काली की प्रसन्नता हेतु उसने अपने बायें हाथ की एक अगुलि देवी को बलि चढा दी थी।[197]

दक्षिण भारत मे सप्त मातृकाओ की पूजा की जानकारी भी मिलती है।[198]

दक्षिण मे हमे दुर्गा एव कात्यायिनी के मदिर भी मिलते हैं। इनमे सलोत्गी का कात्यायिनी मदिर उस क्षेत्र मे शाक्त पूजा का समर्थन करता है।[199] मामल्लपुरम के मदिर मे भी दुर्गा की मूर्ति उत्कीर्ण की गयी। शायद अन्य देवियो—गज लक्ष्मी—के समान दुर्गा भी पूजित थी।[200]

देवी शक्ति, समस्त भारत मे पूर्व मध्य युग मे पूज्या बन गयी। कागडा की घाटी से लेकर कन्याकुमारी तथा झेलम से सादिया तक उनकी उपासना हो रही थी।[201] कालातर मे उसके प्रभाव, शक्ति, साहित्य और पूजा-विधि मे वृद्धि ही हुई। हर घर मे कुल देवी और ग्राम देवी के माध्यम से वह प्रविष्ठित हो गयी।[202] शक्ति भारतीय धर्म व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अग बन गयी।

सदर्भ

1 द एज ग्राफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 337-338

1A वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्य युगीन, भारत, पृ० 336

2 ग्रार० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 163

3 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 272

3A वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 79

4 एस० के० चटर्जी द्रविडियन ग्रोरिजन एण्ड बिगनिंग्स आफ द इडियन सिविलाइजेशन, पृ० 677 80

5 द वैदिक एज, पृ० 189

6 मैंकी जनल ग्राफ रॉयल सोसायटी आफ भ्रार्ट्स, भाग 82, पृ० 215 20

7 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 78 79

8 वही।

9 वही।

10 शाक्त देवी को 'जगदम्बा' या 'जग माता' मानते हैं।
आर० पी० चांदा इण्डो-आर्यन रेसेस, पृ० 153

11 वही, पृ० 148-49

12 वही पृ० 150

13 मार्शल मोहेन जोदडो एण्ड द इडस सिविलाइजेशन, भाग 1, पृ० 50

14 देखिए अध्याय 3 शिव की उत्पत्ति'

15 ओ० आर० एहरेनफ्लेस मदर राइट इन इडिया, पृ० 201

15A एस० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिन्दू सेक्ट्स, पृ० 151

16 डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर द इडियन एम्पायर, पृ० 190-200
द वैदिक एज, पृ० 189-90

17 मथुरालाल शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 44-45

18 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 87

19 आर० पी० चादा इडो-आर्यन रेसेज, पृ० 153

20 जॉन मार्शल मोहेन जोदडो एण्ड इडस सिविलाइजेशन, भाग I, पृ० 50-51

21 आर० ब्रीयूफाल्ट द मदस, भाग III पृ० 2

22. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय लोकायत, पृ० 253 254

22A द वैदिक एज, पृ० 189

23 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 79

24 बी० डी० शुक्ला भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ० 321

25 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्य युगीन भारत, पृ० 336-37

26 ओ० आर० एहरेनफ्लेस मदर राइट इन इडिया, भाग V, पृ० 828

27 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 79-80

28 जॉन मार्शल मोहेन जोदडो एण्ड इडस सिविलाइजेशन, भाग I पृ० 51 52

29 हटर द इडियन एम्पायर, पृ० 199

30 आर० पी० चांदा इडो-आर्यन रेसेस, पृ० 153

30A जॉन उडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 9
31 हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 189-99
32 देखिए, इस ग्रंथ का अध्याय 3
33 आर० के० मुकर्जी हिन्दू सिविलाइजेशन, भाग I, पृ० 89
34 देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय लोकायत, पृ० 232
35 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, 78-79
36 ऋग्वेद . 10/63-23, 10/75-2-4-6
37 वही, 1-80-10, यजुर्वेद, 9-22
37A वही, 3/61-2
38 ए० ए० मेक्डानल वैदिक मैथालॉजी, पृ० 124-25
39 वही।
40 वही, एवं केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग I, पृ० 94
41 देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय लोकायत, पृ० 242-46
42 राधाकृष्णन इंडियन फिलासफी, भाग I, पृ० 91
43 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 130
44 चन्द्रभान पाण्डे आंध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० 141
44A ऋग्वेद 10-125-3
45 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 44-45
46 वाजसनेय संहिता, 3, 57-46
47 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1-6-10, 4-5
48 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 466
49 वाजसनेय संहिता, 3-57
50 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 467
51 कठोपनिषद, 1-7, कल्याण, पृ० 217-18
51A केन उपनिषद, 3-2, कल्याण, पृ० 181
52 आर० जी० भंडारकर . वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 127
53 तैत्तिरीय आरण्यक 10/1-7
54 हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 200
55 तैत्तिरीय आरण्यक 10/1-8
56 मुंडक उपनिषद 1 2-4, कल्याण, पृ० 267
57 सांख्यायिन एवं हिरण्य केशिन गृह्यसूत्र 6-2 3
58 हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 197
59 जॉन उडरफ शक्ति एण्ड शाक्ताज, पृ० 409-21
59A हरिवंश, 313
60 हटर · द इंडियन एम्पायर, पृ० 197-98
61 वही।
62 तैत्तिरीय आरण्यक, 10-1-7 8
63 मुंडक उपनिषद 1-2 4,5
64 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 272

65 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 272
66 वही।
67 महाभारत भीष्म पर्व अध्याय 23
68 महाभारत 4 6, 6-23
69 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 163
70 हरिवंश, 31/3
71 वही, 32/36
72 चंद्रभान पाण्डे आंध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० 142
73 हंटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 199
74 मार्कण्डेय पुराण अध्याय 82
75 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 272
76 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 80
77 वही।
78 एच० एच० विल्सन रिलिजन्स आफ हिंदूज, भाग I, पृ० 210-225
79 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 80-81
80 हंटर द इंडियन, एम्पायर, पृ० 190-191
हंटर अनल्स आफ रुरल बेंगाल
81 वही, पृ० 122-36
82 पाणिनी अष्टाध्यायी, 41-49 "हिमारण्या यव यवन मातुका चर्याणा मानुख"
83 वही, 4-1-37
84 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 175-76
85 सूत्र कृतग, 11-2-79
86 आर० के० मुकर्जी हिन्दू सिविलाइजेशन, भाग II, पृ० 218
87 आचराग चूर्णि, 61
88 कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग I, पृ० 436-37
89 राधाकुमुद मुकर्जी चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 259
90 वही।
91 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 480
92 पतंजलि महाभाष्य . 6-1-107, पृ० 164, 1-1-19, पृ० 189
93 वही।
94 प्रभूदयाल अग्निहोत्री पतंजलिकालीन भारत, पृ० 508
95 वही।
96 वही।
97 महाभाष्य : 5-3-99, पृ० 479
98 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 467
99 जे० एलन . केटेलाग आफ द क्वाइन्स आफ एंशियंट इंडिया, पृ० 114-115
(ब्रिटिश म्यूजियम)
100 वही।
101 रा० व० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 209

102 तैत्तिरीय आरण्यक, 10/1-7
103 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी
104 द क्लासिकल एज, पृ० 444-45
105 मार्कण्डेय पुराण अध्याय 37, 83
106 वही, अध्याय 91
107 कालिदास रघुवंशम् 1 1
108 वही, पूर्वमेघ श्लोक 54 (मेघदूतम)
109 वही, श्लोक 37
द क्लासिकल एज, पृ० 445-46
110 परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 499
111 कनिंघम रिपोर्ट आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग X, पृ० 50
112 कुमारस्वामी हिस्ट्री आफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट्स, पृ० 177
113 द क्लासिकल एज, पृ० 447-48
114 आर० सी० मजुमदार और ए० एस० अल्तेकर वाकाटक-गुप्त युग, पृ० 394
आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग X, पृ० 195-97
115 वही।
116 द क्लासिकल एज, पृ० 442
परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 501
117 वही।
118 वही।
119 कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडिया, भाग III, पृ० 83
120 वही।
120A जर्नल आफ ओरिएन्टल इंस्टीट्यूट, भाग XVIII, पृ० 153-56
121 बील बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग II, पृ० 113
122 बाणभट्ट हर्षचरितम्, पंचम उच्छ्वास, पृ० 263
123 द वैदिक एज, पृ० 143 70
124 गाथा सप्तशती—मगलचरण, 1-69, 99
125 वही, हाल 'दूर वहू' के रूप में गौरी को प्रस्तुत करते हैं।
126 महाभाष्य 5-3 99, पृ० 479
127 हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 196
128 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 143
129 वही, पृ० 174
130 ए० के० कुमारस्वामी हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट्स, पृ० 47
131 टी० ए० जी० राव एलीमेंट्स आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, पृ० 194
132 बाणभट्ट हर्षचरितम्, पंचम उच्छ्वास
133 वही, सप्तम उच्छ्वास, पृ० 406
134 दुर्गा सप्तशती, मार्कण्डेय पुराण, 83
135 जॉन वुडरफ शक्ति एण्ड शाक्त, पृ० 61

136 द वैदिक एज, पृ० 186
137 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 272
138 हटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 190-91
139 देखिए, ऐतिहासिक विकास
140 बाणभट्ट हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास, कादम्बरी, पृ० 91
141 आर० सी० गुप्त एण्ड ए० एस० अल्तेकर वाकाटक-गुप्त युग, पृ० 394
बील—इन्ट्रोडक्शन।
142 वही, II, पृ० 114
143 वही, पृ० 113
144 वही।
145 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 142-43
146 सम्मोहन तंत्र, अध्याय 4
147 लक्ष्मीधर सौन्दर्य-लहरी (सटीक) 9, 41-42 (मैसूर)
148 जॉन वुडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 65
149 बाणभट्ट कादम्बरी पृ० 57
150 जॉन वुडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 546
151 वही।
152 वही, पृ० 174
153 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 338
154 वही।
155 कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भाग III, पृ० 237-45
156 वही।
157 आर० सी० मजुमदार हिस्ट्री आफ बेंगाल, भाग I, पृ० 450
158 2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 358 65
द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 261
159 आर० सी० मजुमदार हिस्ट्री आफ बेंगाल, भाग I, पृ० 450
160 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 338, 343
162 हेमिल्टन बुकानन हिस्ट्री आफ ईस्टर्न इंडिया, भाग I, पृ० 194
162 हंटर एनल्स आफ रूरल बेंगाल, पृ० 128
रा० ब० पांडे प्राचीन भारत, पृ० 63
163 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 165
164 जॉन वुडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 28
165 कुलार्णव तंत्र II, 85 140, 141
166 देवी सूक्त 10-125
167 प्रणोतिशनी तंत्र 70
168 महाकाल संहिता श्लोक 10-13
169 महानिर्वाण तंत्र 4-10 (अनुवाद आर्थर एवलान)
170. आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 165-66
171 सम्मोहन तंत्र, अध्याय 10

172 जॉन वुडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 119
173. वही, पृ० 120
174 वही, पृ० 88
175 बी० डी० शुक्ल भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० 321
176 वही ।
177 जॉन वुडरफ शक्ति एंड शाक्त, पृ० 65
178 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 341
179 एन० के० भट्टसाली आइकनस आफ ढाका म्युजियम, पृ० 202-203
180 एच० पी० गुप्तर द तांत्रिक व्यू आफ लाइफ, पृ० 150-63
181. राजतरंगिणी प्रथम तरंग, 1-2
182 वही, द्वितीय तरंग, 98-105, 3 84
मवध्यदर्शना विन्ध्येय देवी भ्रमरवारसिनीय 394-95
183 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 344
184 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 336-37
185 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, 161-176
186 आर० सी० मजुमदार हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग I, पृ० 453-54
187 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 316, 357
188 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 147
189 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 277
190 आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, रिपोर्ट, 1934
191 केशवचन्द्र मिश्र चंदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 208, 240
192 वही ।
193 जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, भाग X, पृ० 199 200
194 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 243
195 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग I, पृ० 160
196 पर्सी ब्राउन इंडियन आर्टिटेक्टर . बुद्धिस्ट एंड हिंदू, पृ० 87
197 वि० च० पांडे प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 267
198 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 340
199 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 453
200 वही, पृ० 459
202 द एज आफ इंपीरियल कन्नौज, पृ० 341
203. प्रो० आर० एहरेनफेलेस : मदर राइट इन इंडिया, पृ० 79 80

अध्याय 5

वैष्णव सप्रदाय

प्राचीन काल से विष्णु की उपासना चली आ रही है। विष्णु की भक्ति ने प्रधानता पा ली। पूर्व मध्ययुग मे पाच देवो का बडा प्रभाव रहा।[1] इनमे विष्णु, शिव और शक्ति की पूजा का अधिक जोर था। वैष्णव मत ने इनमे शीर्ष स्थान बना लिया। वैष्णव मत का प्रचार पहले उत्तर भारत मे हुआ। पूर्व मध्ययुग तक आते-आते दक्षिण भारत में भी यह लोकप्रिय हो गया। इस काल के आलवार सतो ने वैष्णव मत को बडे उत्साह से अपना कर प्रचारित किया। इन्होंने उसे नयी शक्ति प्रदान की।[2] विष्णु ने धार्मिक रोमास का सधर्मा प्रकरण प्रस्तुत किया।[3]

वैष्णव सप्रदाय के नाम

वैष्णव मत कई नामों से जाना जाता है। पहले यह 'ऐकातिक धर्म'[4] कहलाया। वासुदेव की उपासना पद्धति के कारण इसे 'भागवत मत'[5] भी कहने लगे। पुरुष नारायण ने 'पांचरात्र सत्र' का आयोजन किया। अत 'पाचरात्र' अथवा 'पाच-रात्रिक मत' भी कहा जाने लगा।[6] वैष्णव नाम का उपयोग सबसे पहले महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व मे मिलता है।[7] कालातर मे यही नाम अधिक जनप्रिय हुआ। पूर्व मध्ययुग मे वैष्णव मत इन सभी नामो से जाना जाता था। ये विष्णु सप्रदाय के पर्यायवाची बन गए। इनका पूरी तरह से एकीकरण हो गया। फिर भी यह मत वैष्णव सप्रदाय के नाम से ही अधिक लोकप्रिय रहा।

वैष्णव मत से अभिप्राय

वैष्णव मत एक आस्तिकतावादी मत है। विष्णु इस धर्म मे सर्वोच्च देवता हैं। वैदिक देव मानकर उनकी पूजा की जाती है।[8] वे ही उपास्य हैं।[9] विष्णु को प्रधान उपास्य देव मानेवाले भक्त वैष्णव कहे गए।[9A] इन वैष्णव साधको के अनुसार समस्त विश्व उस ऐश्वर्यशाली विष्णु की शक्तियों की अभिव्यक्ति मात्र है।[9B] उनमें व सृष्टि मे कोई अतर नहीं है। वासुदेव-कृष्ण की पूजा के मूल में वीर पूजा का भाव अधिक है।[10]

कालातर मे इसने रूढ रूप धारण कर लिया।[11]

हिंदुओ ने जब अनार्य लिंगदेव शिव का महारक और सर्जक के रूप मे उपयोग करना आरभ कर दिया तो उन्होंने पालक विष्णु को प्रतिस्पर्द्धी ईश्वर के रूप मे प्रस्तुत किया।[12]

वैष्णव मत की उत्पत्ति

वैष्णव मत की उत्पत्ति, इतिहास का जटिल विवादास्पद विषय है।[13] वैष्णव धर्म से सबधित *नारायण वासुदेव, कृष्ण, सकर्षण को डा० सुवीरा जायसवाल अवैदिक* देवता मानती हैं। वे नारायण[14] को अनार्य उत्पत्ति का, सकर्षण को अनार्यदेव *शिव से सबधित*[15] तथा वासुदेव-कृष्ण[16] के मत को भी अवैदिक और अनार्य तत्त्वो से भरा दर्शाती हैं। परतु अपने तर्कों के समर्थन मे वे कोई पुरातत्त्वीय एव साहित्यिक प्रमाण प्रस्तुत नही करती। उनका आधार कल्पना और तर्क ही हैं। उन्होंने नारायण, वासुदेव आदि को देवत्व प्रदान कर उन्हे देवता माना है।[17] परतु सिंधु-सभ्यता मे प्राप्त पुरातत्त्वीय सामग्री मे शिव-शक्ति के अतिरिक्त किसी ऐसे देवता की मुहर आदि प्राप्त नही हुई है, जिनकी देवता मानकर पूजा की जाती थी।

विष्णु

ऋग्वेद मे जिन देवताओ की सूची दी गई है, उनमे भी नारायण, सकर्षण और वासुदेव कृष्ण आदि नाम नही मिलते है। अत विष्णु-धर्म से सबधित ये नाम बाद के कालो की देन है। ऋग्वेद मे विष्णु का ही उल्लेख मिलता है। वे सूर्य का रूप है।[17A] *शिव-शक्ति की तुलना मे विष्णु और उसका सप्रदाय अपेक्षाकृत नया है।* ऋग्वेद मे विष्णु को द्युस का पुत्र और तीन पगो मे पृथ्वी-आकाश मे विचरण करने वाला निरूपित किया गया है।[18] विद्वानो ने विष्णु को *'दिव्य स्थान'* अथवा *'स्वर्गस्थ'* देवो की श्रेणी मे रखा है।[19] सूर्य और आदित्यो के साथ उनकी गणना की गयी है। उन्हे अक्सर सूर्यदेवता के साथ ही ऋग्वेद मे समीकृत किया गया है।[20] अत विष्णु को 'उरु-गाय' और 'उरु-क्रम' माना गया।[21] विष्णु, सूर्य के गुणो का, सभवतया स्वरूप थे। उन्होंने समस्त विश्व, पृथ्वी, वायु और स्वर्ग को माप लिया था।[22]

श्री हटर,[23] विष्णु को अपने अवतरण के समय से एक मानवीय देवता होते हुए भी सूर्य अथवा सौर से सबधित मानते है। बाद मे वे पुराण-कथा बन गये।[24] वे सूर्य के उदय, उत्कर्ष और अस्त से सबधित हैं।[25] यह आर्यों के धार्मिक विश्वासो का रचना काल था। *अतएव विष्णु के प्रभुत्व का प्रश्न ही नही उठता। आर्य-*सभ्यता के निरतर विकास के साथ ही देवताओ की स्थिति में भी परिवर्तन हुए। उत्तर वैदिक काल मे सूर्य के अश के रूप मे विष्णु प्रतिष्ठित रहे। परतु वे धीरे-

धीरे जन-देवता बन रहे थे।[26] इस काल मे 'पुरुष' अथवा 'परमेश्वर' की धारणा का विकास कर उनका सबध नर एव नारायण से किया गया।[27]

ब्राह्मण युग मे यज्ञ सस्था के विपुल विकास के साथ ही देव मडल मे विष्णु का महत्त्व भी पूर्व से अधिक हो गया। विष्णु की एकता यज्ञ से स्थापित कर उन्हे समस्त देवताओ मे श्रेष्ठ और पवित्रतम माना जाने लगा।[28] शतपथ ब्राह्मण ने भी विष्णु की उच्चता का समर्थन किया।[29] यज्ञो से सबधित हो जाने के कारण विष्णु को भी बलि और यज्ञ का भाग दिया जाने लगा था। ब्राह्मण साहित्य मे अवतारवाद[30] की कल्पना को भी स्थान मिला। कालातर मे इसने विष्णु की लोकप्रियता मे सहयोग दिया। इसने ब्रह्म और विश्वदेववादी विचारधारा को विकसित किया। ईश्वरवादी आदोलन का भी आरभ इसने किया। बाद की सदियों मे यही वैष्णववाद के नाम से विख्यात हुआ।[31]

चिंतन की एक नयी धारा का भी विकास हो रहा था। वेदो की अपौरुषेयता, उनसे सबधित कर्मकाण्डो और बलि के प्रति जन-साधारण मे विरोध फैल रहा था। स्वय आर्य-क्षत्रियो की एक शाखा इन्हे नापसद करती थी।[32]

वासुदेव और वैष्णव मत

क्षत्रियो का यह समूह सात्वत कहलाता था। इन्हे यादव अथवा यदुवशी और वृष्णि भी कहा गया है।[33] आरभ मे ये मथुरा और उसके आसपास के क्षेत्रो मे बसते थे।[34] कालातर मे ये पश्चिमी समुद्र-तट के सौराष्ट्र मे जा बसे और यही से विदर्भ, मैसूर तथा सुदूर द्रविड प्रदेशो मे अपने उपनिवेश बनाते रहे।[35] वासुदेव इन्हीं सात्वतो के नेता थे। इन्हे वासुदेव-कृष्ण भी कहा गया।[36] ये ही वसुदेव-देवकी के पुत्र थे। परतु कृष्ण की उपस्थिति अलग मिलती है, जो वासुदेव से पुरातन थे।[37] वासुदेव का काल ईसा पूर्व की छठी-सातवी सदी माना है।[38] इन्ही वासुदेव ने वैदिक कर्मकाडों के विरुद्ध एक नया सुधारवादी आदोलन चलाया। इन्होंने पूजा-भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया। इसे सात्वत विधि भी कहा गया।[39] वासुदेव ने परमेश्वर के विचार को मान्यता देकर मुक्ति के लिए उनकी मुक्ति का मार्ग सुझाया।[40] शायद इन्हें यह प्रेरणा उपनिषदो से मिली होगी। सकर्षण व अनिरुद्ध भी इन्ही सात्वतो से सबधित थे।[41] परतु डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय सकर्षण को नाग पूजा से सबधित अनार्य देवता मानते हैं, जिनका सबध वासुदेव से हुआ। वासुदेव ने अपने लाभ के लिए उनसे सबध कायम कर लिया।[43] डा० जे० गोडा उनके हल से उन्हे कृषि और भूमि की उर्वरक्ता सबधी देवता मानते हैं।[43] पर दोनो ने पुरातत्त्वीय प्रमाण नही दिये हैं। शायद सकर्षण, वासुदेव, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न एक ही परिवार के सदस्य थे और इन्होने मिलजुलकर वासुदेव द्वारा प्रणीत सात्वत धर्म का प्रचार किया था। यह मत सात्वतो

और कालातर मे अन्य लोगो मे इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि उनके प्रवर्तक परिजनो मे देवत्व की स्थापना कर दी गई। बाद मे वैष्णव दार्शनिको ने इन्ह दर्शन का लाक्षणिक दर्जा दे दिया। यह व्यूहवाद के नाम से जाना गया।[44] इसके अतर्गत वासुदेव को भक्ति के सर्वोच्च देव[44A] एव सकर्षणादि व्यूहो को जीव (सकर्षण) अहकार (अनिरुद्ध) और मन अथवा बुद्धि (प्रद्युम्न) से अभिन्न माना गया।[44B] गीता की रचना के बाद ही परमेश्वर की तीन प्रकृतियो को सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध (जो वासुदेव-परिवार के थे) का व्यक्तित्व प्रदान किया गया।[44C]

वासुदेव को देवत्व प्रदान कर दिया गया।[44D] वासुदेव पूजन ईसा की चौथी सदी तक प्रचलित हो गया था। इनके उपासक 'वासुदेवक' कहे जाते थे।[44E] पतजलि वासुदेव को विष्णु का रूप और पूजार्ह अर्थात् पूजनीय भगवान मानत है।[44F] वासुदेव को देवता मान लेने पर उनका समन्वय कालातर म विष्णु स कर दिया गया। इस कार्य म कई तत्वो का सहयोग रहा। वासुदेव, विष्णु तथा नारायण का तादात्म्य ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी तक हो गया था।[45] जो तत्त्व इस तादात्म्य के लिए उत्तरदायी थ उनकी चर्चा आगे की गयी है।[46]

कृष्ण और वैष्णव मत

विष्णु से सबधित कृष्ण का व्यक्तित्व भी उल्लेखनीय है। वह विष्णु का रोमाटिक, बहुरगी और लीलामय स्वरूप है। कृष्णावतार ने वैष्णव मत को बडा आकर्षक बनाया। उनकी बाल लीलाए और कर्मयोगमय कार्य वैष्णववाद के इतिहास की स्थायी निधि है। विद्वान दो कृष्णो की अलग-अलग उपस्थिति मानते है। इनम से एक कृष्ण थे, जबकि दूसरे गोपाल कृष्ण।[47] दोनो का विष्णु-वासुदेव के साथ ऐसा एकीकरण हुआ कि जनसाधारण तो उन्हे एक ही मानने लगा। इसम कोई सन्देह नही कि देवकी पुत्र कृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष थे।[47A]

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण की उपस्थिति के बारे मे वैदिक साहित्य मे सूचना मिलती है। ऋग्वेद मे आठवें मडल के 74वे सूक्त के रचयिता, ऋषि सूक्त की तीसरी, चौथी ऋचा मे अपने को 'कृष्ण' कहते हैं। इन्ही ऋषि कृष्ण ने दसवें मडल की भी रचना की थी।[48] ऋग्वेद मे कृष्ण से सबधित तीन ऋचाओ म इद्र और कृष्ण के विग्रह का उल्लेख है।[49] यथा—

> *"अव द्रप्सो अशुमती मतिष्ठदियान कृष्णो दशभि सहस्रै।*
> आवत्तमिन्द्र शच्या धमन्तमपस्ते हितीर्नृमण अघन्त॥
> द्रप्समपश्च विषुणे चरन्तमुपहरे नद्यो अशुमत्या।
> नमो न कृष्ण मवतस्थिवासमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥

अव द्रप्सो अशुमत्या उपस्थे, धार यत्तन्वतिर्त्विषाणा ।
विशो अदेवी रम्याचरन्तीर्बृशस्पतिना युजेन्द्र ससाहे ।।"

—ऋग्वेद, 8-96, 13-15

वेदो के उपरात उपनिषद् और ब्राह्मण साहित्य मे भी कृष्ण का उल्लेख है। छादोग्य उपनिषद मे घोर आगिरस और उनके शिष्य की चर्चा है।[50] कौशीतकी ब्राह्मण भी छादोग्य उपनिषद् का समर्थन करते हुए 'कृष्णो हैतागिरसो' अर्थात् कृष्ण को आगिरस गोत्रीय ही दर्शाता है।[51] घोर का उल्लेख वैदिक साहित्य मे है। ऋग्वेद के प्रथम मडल के 36वें से 43वें सूक्तो का निर्माता घोर-पुत्र कण्व को माना गया है। अत आचार्य चतुरसेन शास्त्री[52] कृष्ण को वैदिक कालीन मानते है। उनके विचार से कृष्ण वैदिक विभाग कर्ता व्यास कृष्ण द्वैपायन के पूर्ववर्ती थे। पाणिनी भी कृष्ण और उससे बननेवाले 'कार्ष्णायण गोत्र' की व्याख्या करता है।[53] इस आधार पर ऋग्वैदिक काल से लेकर उपनिषद् काल तक ऋषि कृष्ण तथा कार्ष्णायण नामक एक गोत्र की अविच्छिन्न परपरा मिलती है, जिसके सस्थापक कृष्ण थे।[54] वैसे कार्ष्णायण का शाब्दिक अर्थ कृष्णो का समूह भी होता है।

महाभारत मे 'कृष्णद्वादेवकी पुत्रात्'[55] 'कृष्णो ही देवकी पुत्रो'[56] तथा 'कृष्णोवा देवकी पुत्रो'[57] का उल्लेख है। इसी महाकाव्य मे कृष्ण के अलौकिकत्व की स्थापना भी की गई है। परतु महाभारत का सूक्ष्म अध्ययन कुछ और भी दर्शाता है। महाभारत के तीन कर्ता आ० चतुरसेन ने माने है। ये व्यास, वैशपायन और सोती है।[57A] प्रथम तह के लेखक व्यास ने कृष्ण को कही भी विष्णु अथवा परमेश्वर का अवतार निरूपित नही किया। कृष्ण ने स्वय भी कही अपने को संकेत से ईश्वर नही कहा है। न कही दैवी शक्ति से काम लिया है। परतु वैशपायन और सौति रचित खडों मे वे ईश्वर कहे गए। कृष्ण स्वय भी अपने को ईश्वर मानते कहते हैं।[57B] गीता ने कृष्ण के ईश्वर तत्व को पूर्णता पर पहुचाया। यद्यपि कृष्ण पर देवत्व का आरोपण बाद के युगो की देन है। परतु कृष्ण और उससे सबधित गोत्र की परपरा का तारतम्य प्राचीन साहित्य मे सिलसिलेवार मिलता है। यदि यूनानी राजदूत मेगास्थनीज की कृष्ण-चर्चा को मान लें तो मेथोरा (मथुरा) प्रदेश के सौरसेनाई (शूरसेनो) के आराध्य हेरेक्लीज (कृष्ण) व कृष्ण एक ही थे।

श्री बार्थ और हॉपकिन्स, कृष्ण के मानव होनेमे सदेह प्रगट करते हैं।[58] वे उन्हे एक लोकप्रिय देवता मानते है जिनका विष्णु से समन्वय हो गया था। बर्थ उन्हे सौर मडल अथवा सूर्य से सबधित भी मानते हैं, जबकि हॉपकिन्स के मत से वे पाडवो की जनजाति के देव थे। कृष्ण-जन्म की कथाओ के आधार पर उन्हे क्राइस्ट से जोडने का प्रयत्न भी किया गया। परतु उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्य इन सभावनाओ को स्पष्ट निरस्त करते है। वे कृष्ण के मानव रूप का समर्थन करती हैं। इन्ही कृष्ण को उनके अलौकिक कार्यों के कारण बुद्ध और ईसा के समान

देवत्व प्रदान कर दिया गया। ये कृष्ण, राम के समान एक नायक अथवा राजकुमार थे, जिन्हें देवत्व देकर लोकप्रिय मतों और त्योहारों से समन्वित कर दिया गया।[58A]

कृष्ण मथुरा व उनके आसपास के क्षेत्र में अपने अनुयायियों के साथ फैले थे।[59] उनके और वासुदेव के विचारों में बड़ी साम्यता थी। अतः दोनों का समन्वय आसान था।[59A] और जब वासुदेव को देवत्व प्रदान किया गया तो इस परंपरा द्वारा वासुदेव के साथ ऋषि कृष्ण का अभेद स्थापन आरंभ हुआ। उनका वंश शूर और वासुदेव में होता हुआ वृष्णि वंश बतलाया गया।[60] तब कार्षायण गोत्रीय वासुदेव पर देवकीपुत्र होने की और प्राचीन कृष्ण की आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अध्यारोपित कर दी गई। विष्णु से उनका संपर्क हो गया।[61] महाकाव्यों और पुराणों ने इसे पूर्णता दी।

गोपाल कृष्ण और वैष्णव मत

गोपाल कृष्ण की बाल्यकाल की रोचक लीलाओं का भी विष्णु से संपर्क है। कुछ विद्वान गोपाल कृष्ण के अलग अस्तित्व को मानते हैं। यमुना का कांठा ऋग्वैदिक काल से ही अपने समृद्ध पशुधन के लिए विख्यात रहा है। यहां पर बसने वाली वार्षण (वृष्णि) जाति गोवाल नाम से भी मानी जाती थी। जैमिनी उपनिषद, ब्राह्मण और तैत्तिरीय संहिता में इसकी साक्षी उपलब्ध है। इसलिए शायद यह असंभव नहीं होगा कि इस क्षेत्र में बसनेवाले यादव सात्वतों का वृष्णियों में संपर्क स्थापित हो गया हो और उन्होंने स्थानीय आभीर देवताओं को अपना लिया हो। क्योंकि आभीर जनजाति के गोपाल कृष्ण की बाललीलाएं और राधा व अन्य गोपियों के साथ उनके प्रेम प्रकरण ने उन्हें आकर्षित व रस से सराबोर कर दिया।[62] यादव सात्वत-वृष्णि एक ही क्षेत्र में थे अतः इन्हें अपनाने में कठिनाई नहीं हुई।

अभिलेखों, पतंजलि के महाभाष्य एवं नारायणीय में गोपाल कृष्ण की उपस्थिति का उल्लेख नहीं मिलता। नारायणीय खंड में कृष्ण का अवतार कंस-वध के लिए हुआ था। परंतु हरिवंश पुराण गोकुल के दैत्यों के वध हेतु ही कृष्णावतार की साक्षी देते हैं।[63] डा० आर० जी० भंडारकर कृष्ण से संबंधित 'गोविंद' को 'गोविंद' का परिवर्तित रूप मानते हैं। और ऋग्वेद में गोविंद को गो-पालक माना गया है। वह इंद्र से भी संपृक्त है।[64] वे यह भी स्वीकार करते हैं कि आभीर जाति कालांतर में मथुरा के समीपवर्ती मधुवन से लेकर अनूप-आनर्त होते सौराष्ट्र-काठियावाड़ तक फैल गई। आभीर गोपालक व पशु चरानेवाली जाति थी। इनके बीच कृष्ण-बलदेव रहते थे। कृष्ण-बलदेव के बाल्यकाल की कथाएं आभीर अपने साथ लाये। इसमें धेनकासुर[65] का वध व गोपी-लीला आकर्षक थी।

यायावर आभीरो और सभ्य आर्य पडोसियो के उन्मुक्त ससर्ग का परिणाम कृष्ण-वासुदेव-गोपाल के तादात्म्य मे हुआ।[66]

इस प्रकार कृष्ण के दो स्वरूप, ऋषि कृष्ण तथा आभीरो के गोपाल कृष्ण का वासुदेव के साथ समन्वय स्थापित हो गया। कृष्ण की परपरा उनके बाल्यकाल से समन्वित हो गई। गोपाल कृष्ण ही देवकी पुत्र माने जाने लगे।

नारायण और वैष्णव मत

वासुदेव और कृष्ण के समान नारायण का एकीकरण भी विष्णु से हुआ है। नारायण 'पाचरात्र मत' के प्रवर्तक माने जाते है।[67] नारायण की उत्पत्ति विवादास्पद है। व्याकरण की विभक्ति के आधार पर नारायण 'नर का आयन' अर्थात् 'नरो का आश्रय स्थल' होता है। डा० सुवीरा जायसवाल[68] उन्हे अनार्य उत्पत्ति का देवता मानती है। परतु नारायण शब्द की जो व्यजना व्याकरणाचार्य पाणिनी ने की है उसके अनुसार नारायण का अर्थ 'नरो का समूह' है। 'नर शब्द' का उपयोग वैदिक देवो के लिए हुआ है। अत 'नारायण' 'देवो का आश्रय' अर्थ मे भी प्रयुक्त किया जाता है।[68A] महाभारत के शाति पर्व के 'नारायण खड' की कथा 'नारायण' से ही सबधित है। इसके साथ ही वायु तथा विष्णु पुराणों मे नारायण के देवत्व पर जोर डाला गया है। वे श्वेत द्वीप के वासी थे। डा० आर० जी० भडारकर[69] इस आधार पर नारायण को देवता मानत हैं। उनके विचार से नारायण विषयक कल्पना का विकास उत्तरकालीन ब्राह्मणो एव आरण्यको मे हुआ था। शतपथ ब्राह्मण मे[70] नारायण को प्रात, मध्याह्न तथा सायकालीन आहुतियो द्वारा यज्ञस्थल के वसुओ, रुद्रो और आदित्यो को हटाकर खुद को स्थापित करनेवाला देवता बतलाया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक[71] नारायण को परमात्मा निरूपित करता है। डा० सुवीरा जायसवाल नारायण के जलीय महत्व का भी प्रतिपादन करती हैं।[72] श्वेत द्वीप के आधार पर श्री वेबर और श्री ग्रीयर्सन[72A] न नारायण का सबध क्रिश्चियन देशो से जोडा है।

ऐसा लगता है कि नारायण की चर्चा और उनकी उत्पत्ति विषयक सामग्री तर्कों पर आधारित है। जबकि नारायण एक ऐतिहासिक ऋषि थे। महाभारत के नारायणीय खड और वामन-पुराण भी इसकी पुष्टि करते हैं।[73] व नर तथा नारायण को ऋषि धर्म का आत्मज बताते हैं। नारायण व नर ने अपने सहयोगी हरि व कृष्ण के साथ बद्री-आश्रम मे तप कर, बुद्ध के समान मोक्ष पाने हेतु अन्य मार्ग खोजने का प्रयत्न किया था। शायद ऋषि नारायण भी वैदिक कर्मकाड के विरुद्ध थ। व वैदिक ऋषि थे इसमे सदेह नही। क्योकि ऋषि नारायण ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की रचना की थी।[74] उन्होंने अहिंसा, भक्ति और सौर-पूजा का प्रतिपादन किया था।[75] ऋषि नर भी उनके सहयोगी थे।[76] ऋषि

नारायण, वासुदेव-सात्वत के इस प्रकार पूर्ववर्ती थे। उन्होंने अपने धार्मिक आदर्शों पर 'पाचरात्र सत्र' का आयोजन किया था।

प० बलदेव उपाध्याय वासुदेव-सात्वतो[77] को पाचरात्र मत का प्रणेता मानते है। परतु ऋषि नारायण ही इसके प्रवर्त्तक थे। उनके आदर्शों को माननेवाले कई अनुयायी भी रहे होंगे और नारायण से सबधित गोत्र का चलन भी इस पर से हुआ। पाणिनी भी नारायण से नाडायन गोत्र की व्युत्पत्ति का समर्थन करता है।[78] कालातर मे नारायण के अनुयायियो ने उनमे देवत्व का आरोपण किया। उन्होने नारायण को अपना आश्रय-स्थल मान लिया। बाद के बृहज्जातकम मे भी इसका समर्थन मिलता है।[79] नारायण एक वैदिक कालीन ऋषि थे।[80] ब्राह्मण-आरण्यक काल तक आते-आते उनके अनुयायियो ने उन्हे पूजनीय देवता बना दिया। महाभारत का नारायणीय खड, वामन और विष्णु पुराण तो इस तथ्य की पूर्णता के परिचायक मात्र हैं। चूकि नारायण ने अहिंसा, भक्ति और सौर पूजा का प्रणयन किया था इसलिए सूर्य के पर्यायवाची[81] विष्णु से उनका समन्वय एक सरल व आसान रीति से सिद्ध हुआ।

नारायण के पाचरात्र मत के वासुदेव सात्वतो के साथ समन्वय मे भी कोई कठिनाई नही हुई। दोनो ने भक्ति, पूजा, आर्जव, अहिंसा आदि के आदर्श सिद्धातो पर बल दिया था। अत उनमे निकटतम साम्यता थी। इसलिए उनका एकीकरण एक सामान्य प्रक्रिया थी। नारायण क्रमश विष्णु वासुदेव-कृष्ण से समन्वित कर दिये गये। वासुदेव और कृष्ण के अनुगामियो ने उन पर देवत्व का आरोपण कर ही रखा था। नारायण के पाचरात्रिक अनुयायी भी इन्हे देव मानने लगे थे। अत इनका समन्वय हो गया। शायद नारायणीय सप्रदाय के माननेवाले हिमालय के आसपास के पहाडी प्रदेशो के रहने वाले थे।[82] अपने पथ प्रदर्शको मे देवत्व का अध्यारोपण भारतीय परपरा के अनुकूल ही है। पूर्व मध्य युग के दार्शनिक शकराचार्य और अनेक आलवार-नायनार सत इसके उदाहरण हैं। अत नारायण ऐतिहासिक-पौराणिक व्यक्ति थे। नारायण वासुदेव के तादात्म्य का समर्थन महाभारत[83] भी करता है। अत महाकाव्य-काल तक वे दोनो एक ही मान लिये गये।

वासुदेव पौंड्रक और वैष्णव मत

महाभारत से एक अन्य वासुदेव की जानकारी भी मिलती है। महाकाव्य काल मे भागवत धर्म तथा विष्णु, नारायण, कृष्ण एव वासुदेव, आराध्य और जनप्रिय बन गये थे। शायद इसका लाभ अन्य लोगो ने भी लेना चाहा। इनमे कुछ अनार्य शासक भी थे। पौंड्रक देश के वासुदेव ने जब वासुदेव-सात्वत-वृष्णियो के कृष्ण की लोकप्रियता देखी तो उनसे अपना सबध कायम करने की कोशिश की जो असफल

रही। डा० डी० सी० सरकार पौंड्रक वासुदेव को प्रतिस्पर्द्धी धर्म प्रणेता मानते है। विरोधी मतावलम्बियो ने वासुदेव के बारे मे निंदनीय प्रकार फैलाने का जो प्रयत्न किया उसका प्रतिकार वासुदेवको ने भी किया।[84] यह भी पता चलता है कि वासुदेव मत को अपने कार्य मे कठिनाई का सामना करना पडा।[85] पर पौंड्रक-वासुदेव को सफलता न मिली।

वैष्णव धर्म की समन्वयता

वैष्णव धर्म का उपरोक्त ऐतिहासिक विश्लेषण यह दर्शाता है कि यह मत किसी एक व्यक्ति द्वारा नही चलाया गया। विष्णु तो एक वैदिक कालीन देव थे। धीरे-धीरे उनका महत्व बढा। वैदिक एव उत्तरवैदिक काल के बाद धर्म के क्षेत्र मे नयी प्रवृत्तिया विकसित हो रही थी। क्षत्रिय और स्वय कई ऋषिगण वैदिक कर्मकाड, बलि आदि के आलोचक थे। तब ब्राह्मण क्षत्रिय स्पर्द्धा ने नये सुधारवादी आदोलनो को जन्म दिया। कई ब्राह्मण ऋषि भी इन सुधारो के पक्ष मे थे। ऋषि नारायण, वैदिक ऋषि कृष्ण अथवा घोर आगिरस के शिष्य कृष्ण इनमे प्रमुख थे। सात्वत और उनके अग्रणी वासुदेव भी इस दिशा मे कार्यरत थे। इन सभी ने आर्जव एकातिक भक्ति, अहिंसा आदि का समर्थन किया।[86] अत वैष्णव मत तीन प्रमुख धाराओ—नारायण और उनके पाचरात्रिक धर्म, वासुदेव-सात्वत तथा उनके क्षत्रिय सहयोगियो और कृष्ण व उनके अनुयायियो के सात्वत का प्रतीक बन गया। आभीरों के गोपाल-कृष्ण की मानव प्रेम से ओतप्रोत बाल-लीलाए भी इसमे आत्मसात हो गयी।[86A]

धर्मनिष्ठ विद्वान ब्राह्मणो ने इन विभिन्न धाराओ को समीकृत करने मे भगीरथ प्रयत्न किया। ब्राह्मणो, महाकाव्यो के रचयिताओ और बाद के पुराणकारों ने नारायण, वासुदेव और कृष्ण उपासना की विभिन्न धाराओ को मोडकर उसे वैदिक विष्णु से समन्वित कर दिया।[87] यह तादात्म्य सरलतापूर्वक सपन्न हुआ, क्योकि नारायण, वासुदेव और कृष्ण के उदार, दया तथा मानव और सृष्टि के कल्याण की भावनाओ मे समानता थी। साथ ही इनका सबध जल से भी था।[88] अत वे विष्णु के निकट थे। ब्राह्मणों द्वारा एक देवता को दूसरे से मिलाना एक सामान्य प्रक्रिया रही है। पाणिनी के बाद के कालो[88A] मे उन्होंने विष्णु को एक अन्य पूज्य देवता अग्नि से मिलाकर 'आग्ना वैष्णव चरू' की पूजा का चलन किया।[88B] ब्राह्मणो ने विष्णु के साथ यही किया।

ब्राह्मणो के इस प्रयत्न के पीछे शायद एक सुनिश्चित उद्देश्य था। वे अपना याज्ञकीय प्रभुत्व बनाये रखना चाहते थे। अत उन्होने लोकप्रिय कृष्ण-वासुदेव को सूर्यदेव से सबधित ऋग्वैदिक विष्णु से मिश्रित कर दिया। ब्राह्मणवाद विजय के

लिए तुला हुआ था। जिन जिन जनप्रिय मतो को वह उखाड नही सकता था, उन्हे उसने आत्मसात करने का प्रयत्न किया। इस ध्येय को पाने की रीति अत्यत साधारण थी। उन्होंने एक देव को दूसरे से समन्वित कर दिया।[89] तैत्तिरीय आरण्यक इसका उदाहरण है। ब्राह्मणो ने इस आरण्यक मे स्पष्ट रूप से घोषित किया, 'नारायणाय विद्महे, वासुदेवायधीमही, तन्नो विष्णुप्रचोदयात', अर्थात् नारायण, वासुदेव और विष्णु एक ही देव के विभिन्न नाम हैं।[90] महाभारत, गीता, पुराण, बौधायन-सूत्र व अन्य ग्रथो ने इसे चरम पूर्णता पर पहुचाया।

यहा एक तथ्य और ध्यान देने योग्य है। जैन, बौद्ध और वैष्णव मत के प्रतिपादक क्षत्रिय थे। उनका केन्द्र पूर्व और पश्चिम भारत था।[91] उन्होने वेदो की अपौरुषेयता (सर्वोच्चता) के सिद्धात का विरोध किया। वे यह भी नही मानते थे कि वेदो मे प्रतिपादित कर्मकाड ही मुक्ति का मुख्य साधन है।[92] परतु उनमे आधारभूत अतर भी था। नारायण, वासुदेव और कृष्ण के सुधारवादी विचार वेदो के प्रति निषेधात्मक नही थे। उनके नूतन धार्मिक विचार याज्ञिक विधान तथा पशुवध के विरुद्ध थे। वे अहिंसा एव भक्ति के पक्ष मे थे। भक्ति के कारण वह अनीश्वरवादी भी न थे। वे पूर्णतया आस्तिकतावादी और ईश्वरवादी बने रहे। इस कारण से उनका समन्वय वैदिक विष्णु से स्थापित करने मे ब्राह्मणो को असुविधा और कठिनाई नही हुई होगी। उन्होंने जैन, बौद्ध धर्मों को भी नही छोडा। ऋषभदेव और बुद्ध को पुराणकारो ने विष्णु का अवतार घोषित कर दिया। नारायण, वासुदेव, कृष्ण और विष्णु का तादात्म्य ईसा पूर्व की तीसरी, चौथी सदी तक पूर्ण हो चुका था।[93] शायद यह उसके भी पूर्व हुआ हो तो आश्चर्य नही।

नारायण, वासुदेव, कृष्ण और विष्णु के समन्वय की इस भावना ने यदि अवतारवाद के सिद्धात को भी प्रेरित किया हो तो आश्चर्य नही। अवतारवाद वैष्णव धर्म की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रहा।

अवतारवाद

अवतारवाद वैष्णव मत की विशेषता है। इसने उसे व्यवस्थित और सगठित करने मे विशेष योग दिया। अवतावाद के सिद्धात की उत्पत्ति पर विद्वानो मे मतभेद है। जैन धर्म मे चौबीस तीर्थंकरो का उल्लेख मिलता है।[94] बुद्ध के अवतारो की भी कल्पना की गई है।[95] 'बोधिसत्व[96] और 'प्रत्येक बुद्ध[97] के विचार ने भी इसे प्रभावित किया होगा। परतु यहा ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि इन पर देवत्व का आरोप बहुत बाद मे हुआ।[98] इसके विपरीत विष्णु ऋग्वैदिक कालीन देवताओ मे से एक थे।[99] उनके वराहावतार का सकेत ऋग्वेद मे मिलता है।[99A] ऋग्वेद मे ही वामनावतार का भी सकेत है।[99B] उपनिषदो मे परमात्मा के विभिन्न रूपो

मे प्रकट होने का प्रतिपादन है। यह माना गया कि अनेक देव एक हैं तो एक देव भी अनेक हो सकता है। इसी ने अवतारो की कल्पना को जन्म दिया।[100] ब्राह्मण-साहित्य, जो निश्चय ही प्राचीन है, मे भी वामन,[101] वराह,[102] मत्स्य,[103] कूर्म[104] आदि अवतारो की चर्चा की गई है। इन आश्चर्यजनक प्राणियो, जिनके पास रहस्यात्मक शक्ति थी, ने भी अवतारवाद को प्रभावित किया था।[105] अत अवतारवाद, बौद्ध-जैन धर्मों की तुलना मे अधिक प्राचीन है। यदि वैष्णव मत से सबधित इस अवतारवाद ने बाद के जैन-बौद्ध धर्मों को प्रभावित किया हो तो आश्चर्य नहीं।

महाभारत के शांति पर्व के 'नारायणीय खड' मे विष्णु के अवतारो का उल्लेख अधिक स्पष्ट है। गीता ने इसे पुष्ट किया। वासुदेव, वैष्णव धर्म की प्रतिस्थापना, साधुओं के परित्राण और दुष्टो के विनाश हेतु अवतार (सृजाम्यहम्) लेते हैं।[106] विष्णु का महत्व उनके अवतारो मे ही नही, वरन उनके नाभि-कमल से ब्रह्मा की भी उत्पत्ति मान ली गई।[107] अन्य ग्रंथो मे इसकी प्रतिध्वनि मात्र है। अवतारवाद नारायण, कृष्ण, वासुदेव और विष्णु के समन्वय के बाद अधिक विकसित हुआ। इनके तादात्म्य ने भी उसे गति दी हो तो आश्चर्य नही।

अवतारवाद वैष्णव मत के विकास की एक नई सीढ़ी सिद्ध हुआ। इसने इसे नई गति प्रदान की। पौराणिक साहित्य मे इसने नई ऊचाई प्राप्त की। अलग-अलग लेखको ने विष्णु के अलग-अलग अवतार बतलाये। आरभ मे छ अवतार थे। बाद मे ये दस माने गये। इनमे वराह, मत्स्य, कूर्म और नृसिह अवतारो की पशु तथा मानव के मिश्रण से रचना की गई।[108] इन मिश्रित अवतारों को अग्रेज विद्वान प्रकृति और सृष्टि के विकासवादी सिद्धात से जोड़ते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिह पुरातन पशु थे। ये जीवन की, मछली, रेंगनेवाले जतुओ और स्तन-पायियों से होते हुए अर्द्धमानव के रूप मे विकसित होनेवाली प्रगति को दर्शाते है।[109] श्री हटर[110] के विचार से मत्स्य प्रजनीय योनि है, कूर्म-लिंग, वराह, लौकिक उर्वरक (Terrestrial Fertilizer) तथा नृसिह, दिव्यता (Celestial) है। यह अवतारवाद की तोड-मरोड है। प्रथम दृष्टिकोण तो सही हो सकता है, परतु दूसरा अव्यावहारिक है।

नृसिह, वराह, मत्स्य, कूर्म अवतारो का सदर्भ तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मणो मे मिलता है। वामन अवतार का उल्लेख वैदिक साहित्य मे है, क्योकि सूर्य से सबधित होने से तीन पगो मे उन्होने ब्रह्माड नापा था।[111] अवतारो की सख्या यही तक सीमित न रही। वैष्णव मत के विकास के साथ उनमे भी वृद्धि हुई। दस से इनकी सख्या चौबीस हो गई।[112] परशुराम, राम, वासुदेव-कृष्ण, हंस, कल्कि, दत्तात्रेय, व्यास, धन्वतरी, मोहिनी के साथ बुद्ध और जैन तीर्थंकर ऋषभदेव भी अवतारो म सम्मिलित कर लिये गये।[113] शायद बौद्ध-जैन धर्मों की लोकप्रियता

को धक्का लगाने हेतु ही बुद्ध व ऋषभदेव को अवतारो मे सम्मिलित किया गया था। इनमे सनत्कुमार, नारायण, नारद, पृथु भी मिला लिये गये। ऐसा लगता है कि ऐतिहासिक स्तर पर जिस किसी भी अलौकिक व्यक्तित्व ने ज्ञान अथवा समाज कल्याण के क्षेत्र मे विशिष्ट सेवाए की, उन्हें अवतारो मे स्थान मिलता चला गया। वे विष्णु से सबधित कर दिये गये।

सनत्कुमार, नारायण, कृष्ण, नारद, पृथु और परशुराम वास्तव मे ऋषि थे। वैदिक ऋचाओं के निर्माण मे इनका प्रमुख हाथ था। कुछ विद्वानो ने तो अर्द्ध-मानव अवतारो को भी पुरातन ऋषि माना है। मत्स्य, कूर्म, नृसिह आदि तो उनके वश तथा गोत्रो के परिचायक मात्र हैं। इनमें से कुछ वर्णों के नाम उनके सबोधन सूचक नामो पर आधारित हैं। शौनक, मत्स्य इसी श्रेणी मे आते हैं।[114]

अवतारवाद के सिद्धात मे एक तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। किसी भी योनि म अवतार लेने के बाद भी अवतारी पुरुष अपने देवत्व और स्वय के विष्णु का अशधारी होने के प्रति सदैव सजग रहता है। वह परमात्मा, ईश्वर अथवा विष्णु का ही रूप है। वह अपने अवतार के उद्देश्य से भी परिचित है।[115] इसीलिये वह 'पूर्ण पुरुष' और भक्ति-उपासना का केन्द्र है। अपने कार्य की समाप्ति के बाद वह अपनी लीला समेटकर विष्णु मे विलीन हो जाता है।[116]

चौबीस अवतारो मे सबसे अधिक लोकप्रियता 'राम' और 'कृष्ण' अवतारो को मिली। उनके लोकरजक रूप ने लोगो को अत्यधिक प्रभावित किया। राम के शील, शक्ति और सौंदर्य ने जनता को मुग्ध कर लिया। वाल्मिकी ने राम मे देवत्व की स्थापना नही की, पर उनकी चारित्रिक श्रेष्ठता और सूर्यवश से सबधित होने से विष्णु के साथ उनके समन्वय मे कठिनाई नही हुई। कालिदास-काल तक वे विष्णु के अवतार मान लिये गये। उनमे देवत्व भी प्रतिष्ठित हो गया।[117] कृष्ण की लीला, उनके योगीश्वर रूप और गीता के उपदेश ने उन्हे बहुरगा चरित्र प्रदान किया। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति की सरलता ने मानवीय कल्पना की पूर्ति कर दी। राम सातवें और कृष्ण आठवें अवतार हैं। इनकी दैवी लौकिकता से प्रभावित होकर 'रामायण' और 'महाभारत' महाकाव्यो की रचना हुई।

विष्णु के स्वरूप का भी निर्धारण हो गया। शख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त चतुर्भुज विष्णु श्वेत द्वीप के समान क्षीरसागर मे शेपशायी हो गये।[118] समय-समय पर लोगो के त्राण हेतु वे अवतार लेने लगे। उनकी उपासना की विधिया भी निश्चित कर दी गयी।[119] श्री और समृद्धि देवी चतुर्भुजा लक्ष्मी उनकी पत्नी बनी।[120] यहा लक्ष्मी के विष्णु से सबधित होने की चर्चा सामयिक रहेगी।

लक्ष्मी एवं विष्णु

विष्णु पत्नी लक्ष्मी की उत्पत्ति के विषय मे प्रो० एच० डी० भट्टाचार्य[121] का विचार

है कि ऋग्वेद और अथर्ववेद मे उनका उल्लेख है। जातको मे वर्णित श्री देवी[122] और लक्ष्मी से भी लक्ष्मी का विकास माना गया।[122A] शायद सिंधु-सभ्यता की मातृ दवी पूजा और वैदिक कालीन देवियो की उपासना का मिला जुला परिणाम लक्ष्मी के विकास मे देखा जा सकता है। वैसे वैदिक साहित्य म लक्ष्मी का अस्तित्व नहीं मिलता। उत्तर वैदिक कालीन धार्मिक परिवर्तनों के साथ पूर्व वैदिक कालीन देवियो की स्थिति मे जो परिवर्तन हुए, उसने भी शायद लक्ष्मी के विकास मे सहयोग दिया। धन, सपत्ति, श्री व समृद्धि की देवी के रूप मे ही लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ। क्योकि धन-सपत्ति की देवी का पूर्व मे अभाव था। उसी की कमी को पूरा करने के लिए लक्ष्मी का विकास शायद किया गया। उसके कथात्मक परिवेश के साथ ही उसके माहात्म्य एव प्रभाव मे वृद्धि होती चली गयी।

ईसा पूर्व की छठी शताब्दी के जातको मे 'शक्क (इद्र)' की पुत्री के रूप मे 'सिरी (श्री)' का उल्लेख मिलता है।[123] वह प्रमुख देवी थी और लक्ष्मी नाम से भी प्रख्यात थी।[124] मौर्य,[125] शुग,[126] सातवाहन कालो मे भी वह श्री-लक्ष्मी नाम से भी पूजित रही। सातवाहन काल मे तो वह गज-लक्ष्मी, श्री लक्ष्मी आदि नामो से भी जानी गयी। इन कालो मे उसका मूर्तीकरण भी होने लगा था। बसाढ की मुद्राए इसका उदाहरण हैं।[127]

अत यह मानना उचित होगा कि ईसा पूर्व की छठी शताब्दी के पूर्व से ही लक्ष्मी पूजन महत्त्व पाने लगा। ईसा पूर्व की चौथी, तीसरी और दूसरी शताब्दियो के मध्य लक्ष्मी ने पर्याप्त श्रेष्ठता पा ली। अन्य देवियो के समान उसके भी अन्य रूप और नाम प्रचलित हुए। परतु उसके गुणो मे कोई अतर नही आया।

विष्णु से लक्ष्मी का सहयोग शायद ईसा पूर्व की सदियो के मध्य ही हुआ। शायद इन्ही सदियो के बीच शक्र (इद्र) की इस पुत्री श्री का विष्णु से सबध स्थापित किया गया। वैदिक विष्णु की पत्नी का उल्लेख हमे वैदिक साहित्य मे नही मिलता। सभवत इन्हीं सदियो के मध्य अन्य देवताओ की पत्नियो के समान, लक्ष्मी विष्णु की पत्नी मान ली गयी। पुराण-काल तक यह सबध दृढ हो गया। उन्होंने उसे पूर्णता पर पहुचा दिया। विष्णु अब लक्ष्मी नारायण कहलाने लगे। दोनों के युग्म की पूजा होने लगी। मानव-परिवारो के आधार पर ही सभवतया देव-परिवारो का गठन किया गया था।

विष्णु और उनके अवतारो के पुरातत्त्वीय और अभिलेखीय उद्धरण प्राप्य हैं।[128] अवतारवाद के माध्यम से वैष्णव-मत ने कला को काफी प्रेरित व प्रभावित किया। उसने वैष्णव मत को अत्यत रोमाटिक बना दिया। विष्णु के अवतार और उनका कथात्मक परिवेश, जैन तीर्थंकरो और बुद्ध-अवतारो से भी अधिक आकर्षक और लोकरजक सिद्ध हुआ। उन्होंने महाकाव्यो और पुराणो को विषय सामग्री प्रदान की।

महाकाव्य और वैष्णव मत

वैष्णव मत को सर्वसाधारण का धर्म बनाने मे महाकाव्यो ने बडा सहयोग दिया। महाकाव्यो मे 'रामायण' और 'महाभारत' आते है। 'रामायण' राम-कथा से सबधित है। महाकवि वाल्मीकि इसके रचयिता हैं। राम सूर्यवशी हैं। वे विष्णु के अशधारी अवतार हैं।[129] अवतारवादी राम का मानवीयकरण सभी को भाया। उनका मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र समाज के लिए अनुकरणीय सिद्ध हुआ। व्यकरणाचार्य पाणिनी राम के बारे मे जानकारी नही देते। रामायण का रचना काल विद्वान् ईसा-पूर्व की तीसरी या चौथी सदी मानते हैं। ईसा की दूसरी सदी तक राम-विष्णु के संबंध अभेद रूप से कायम हो गये।[130]

महाभारत भागवत पुराण मे भी सम्मिलित है। अलग से भी इस महाकाव्य की रचना की गयी। भारतीयो का युद्ध इस महाकाव्य की विषय-वस्तु है परतु कृष्ण का चरित्र और उनका योगीश्वर रूप सारे महाकाव्य पर छाया है। इसमें कृष्ण ने वैष्णव मत को दार्शनिक आधार-भूमि प्रदान की। गीता का इसमे समावेश है। भागवत दर्शन पर इसमे अच्छा प्रकाश डाला गया।[131] महाभारत के वैशम्पायन व सौती लिखित खडो मे कृष्ण स्पष्ट रूप से विष्णु के अवतार है। उनकी प्रेम-लीलाओ, गौरवमय कार्यों और अलौकिक चरित्र का सुदर निरूपण महाभारत मे किया गया। इसका निर्माण काल ईसा पूर्व की चौथी सदी से लेकर ईसा की चौथी सदी माना गया है।[132] पुराणो ने महाकाव्यो के कार्य को आगे बढाया।

वैष्णव मत और पुराण

पुराणो ने वैष्णव धर्म को परिपुष्ट करने मे अमूल्य सहयोग दिया। इन्हे पचम वेद माना है।[133] पुराणो ने जनसाधारण को धर्म से लगाये रखने मे अच्छा सहयोग दिया।[134] इस हेतु इनका कथन, श्रवण और प्रवचन होता रहा।[135] पुराणो मे सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, वश-परपरा वर्णन, मन्वतर आदि का विवरण है।[136] पुराणो की सख्या अठारह है।[137] इनमे भी ब्रह्म, पद्म, विष्णु, भागवत ब्रह्मवैवर्त, कूर्म, मत्स्य, गरुड आदि पुराणो मे विष्णु, उनके अवतारो और पूजा की विधि की विस्तृत चर्चा की गयी है। भागवत पुराण के दोनो खड कृष्ण-लीला से भरे पड़े है। इसीलिए यह पुराण अधिक लोकप्रिय हुआ। कृष्ण का जनरजक रूप सभी को अत्यधिक पसद आया।

नारायण, वासुदेव, कृष्ण और विष्णु का समन्वय हो जाने पर, प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व मे वैष्णव मत के संबध मे, हमे विष्णु के इन पर्यायवाची नामो के माध्यम से जानकारी मिलती है। अतः वैष्णव मत के ऐतिहासिक विकास की रूप-रेखा का अलग से विश्लेषण समीचीन रहेगा।

वैदिक विष्णु का उपर्युक्त समन्वय के बाद ऐतिहासिक स्तर पर विकास हुआ। नारायण, वासुदेव, कृष्ण आदि द्वारा प्रतिपादित सिद्धात अब वैष्णव मत के पर्यायवाची बन गये। इन कई सूत्रो से आये हुए तत्त्वो के विष्णु मत म समाहित हो जाने से वह अधिक लोक-प्रचलित हुआ।[138]

ईसा-पूर्व की छठी शताब्दी मे बुद्ध-महावीर के काल मे बासठ से भी अधिक सप्रदाय थे। इनमे देवधम्मिको का उल्लेख मिलता है। अत. विष्णु-पूजको को इनमे रखा जा सकता है।[139] उस काल के आजीवक सप्रदाय के लोग भी वैष्णव थे, क्योकि उन्हे वराह मिहिर ने 'नारायणाश्रिताम' अर्थात् नारायण-विष्णु पर आश्रित भक्त माना है।[140] बौद्ध-जैन साहित्य मे वासुदेव कृष्ण के भाई बलदेव की पूजा का भी उल्लेख मिलता है।[140A] अत ईसा-पूर्व की छठी सदी मे भी विष्णु मत था। परतु वह अधिक प्रभावशाली नही लगता।

ईसा-पूर्व की पाचवी सदी के वैयाकरण पाणिनी[141] ने स्पष्टतया सिनिवासुदेवा', 'सकर्षण वासुदेवो' और 'वासुवार्ज्जुना भ्यावुन' का उल्लेख किया है। वे विष्णु के रूप वासुदेव को पूजनीय देवता मानते हैं। और उस काल मे वैष्णव मत के अनुयायी थे ऐसा उनसे पता चलता है।[142]

ईसा पूर्व की चौथी सदी तक आते-आते वैष्णव मत काफी लोक-प्रचलित हो गया। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज को कई हेराक्लीज (Herakles), (कृष्ण) भक्त, सौरसेनाई (Sourseno1) और मेथोरा (शूरसेन-मथुरा) क्षेत्र मे दृष्टिगोचर हुए।[143] चौथी सदी का बौद्ध निद्देस जिन सप्रदायो की आलोचना करता है उनमे वैष्णव मत से सबधित 'वासुदेव-बलदेव' भी हैं। इस पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वैष्णव मत ने प्रभाव पा लिया था। कौटिल्य भी वासुदेव उपासको की उपस्थिति का उल्लेख करता है।[144] ईसा पूर्व की दूसरी सदी के राजपूताना के घोसुडी अभिलेख से प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र मे वैष्णव मत से सबधित वासुदेव और सकर्षण के युग्म[145] की पूजा-भक्ति की जाती थी। विष्णु और अग्नि के युग्म की उपासना का चलन आग्ना वैष्णव के रूप म था। पतजलि इसका उल्लेख करते हैं।[145A] उनके काल मे कृष्ण, वासुदेव बलराम की पूजा हेतु मदिरो का निर्माण होने लगा था, जहा नृत्य, गान, वाद्य द्वारा उनकी भक्ति की जाती थी। कृष्ण-भक्ति का प्रचार था।[145B] भागवत धर्म इतना अधिक लोकमान्य हो गया था कि विदेशी भी उससे प्रभावित हुए। पूर्वी मालवा के विदिशा के पास बेसनगर मे यूनानी दूत हेलियोडोरस ने देवाधिदेव वासुदेव के सम्मान मे गरुड स्तभ का निर्माण कराया। उसने 'परम भागवत' का विरुद भी धारण किया।

देश भर म वैष्णव मदिरो का निर्माण होने लगा था, जहा प्रत्यक्ष देवता की

पूजा होती थी। इस प्रकार के देवालय विदिशा और मथुरा आदि स्थानों पर थे।[146] वासुदेव सकर्षण की पूजा का समर्थन ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी का नानाघाट अभिलेख भी करता है। भागवत मत के पच वीर सकर्षण, वासुदेव प्रद्युम्न, साम्ब, और अनिरुद्ध की सामूहिक उपासना भी प्रचलित थी। मथुरा मे प्रथम सदी मे महाक्षत्रप शोडास के शासन काल मे तोषा नाम की उपासिका ने पचवीरो की मूर्तिया स्थापित कर वैष्णव मत के प्रति भक्ति प्रगट की थी।[147]

गुप्त काल तक आते-आते भागवत धर्म काफी जनप्रिय हो गया था। महाकाव्यो मे वर्णित विष्णु के अवतार जनता मे मान्य हो चले थे। परम भागवत और परम वैष्णव का प्रचलन समाज मे हो चला था। पश्चिम भारत के त्रैकूटो की मुद्राओ पर इन्हें स्पष्ट देखा जा सकता है।[148]

गुप्त काल मे कालिदास का 'रघुवश' विष्णु के अवतार और वैष्णव धर्म की जनप्रियता का परिचायक है। रघुवश मे दाशरथि राम को विष्णु का अवतार ही माना गया।

गुप्त कालीन वैष्णव धर्म, नाना लोक आस्थाओ के समन्वय का प्रतीक है। इसमे अनेक देवी-देवता इस प्रकार प्रस्तुत किये गये कि वे विष्णु के साथ होते हुए भी अलग हैं। इस प्रकार लोक-भावना ने एक हल्का सा मोड ले लिया।[149] इस काल के अभिलेखो मे विष्णु कई नामो जैसे चक्रधर,[150] गोविंद,[151] जनार्दन,[152] वराहावतार,[153] शारगपाणि[154] आदि से पूजित थे।

गुप्त सम्राटो ने 'परम भागवत', 'परम वैष्णव' और 'परम दैवत' विरुद धारण कर वैष्णव मत के प्रति श्रद्धा प्रगट की।[155] वे वैष्णव थे।[156] गरुड और लक्ष्मी, विष्णु के साथ हो गये थे। उनकी भी उपासना होने लगी थी। गरुड को अर्द्ध देवता के रूप मे पतजलि काल मे ही मान्यता मिल चुकी थी। शायद वे ईसा पूर्व की सदियो मे ही विष्णु के वाहन, देवासुर सग्राम मे उनके सहायक और पूजनीय माने लिये गये थे।[156A] वे ध्वजाक देव भी कहलाते थे। इस काल मे उदयगिरि मे विष्णु के वराह अवतार को उत्कीर्ण किया गया।[157] विष्णु की मूर्तियो व मदिरो का भी निर्माण किया गया। इनमे भीटरगाव का मदिर विशेष उल्लेखनीय है।[158] देवगढ की नर नारायण मूर्ति मे नारायण चतुर्भुज है।[159]

हर्ष काल मे विष्णु पूजा को धक्का लगा। परतु वह जन मानस मे उपास्य थे। ह्वेनसाग को भारत भर म अनेकानेक देव मदिर दिखायी दिये। इनमे विष्णु की भी पूजा होती थी। इनमे से कई वैष्णव मत से सबधित थे। विष्णु, वासुदेव और नारायण नाम से भी पूजित थे। उनकी मूर्तिया बनती थी। वैष्णव सिद्धातो को व्यापक रूप से अपनाया और प्रचारित किया जाता था। वासुदेव और नारायण देव की मूर्तिया लाल चदन की लकडी से बनायी जाती थी।[160]

हर्षवर्धन बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था।[161] राज्याश्रय न मिलने के

बाद भी वैष्णव मत लोकमान्य और लोकप्रिय बना रहा। विष्णु की सत्वगुण सपन्न पालनहार के देवता के रूप म उपासना की जाती थी। पुराणो के प्रभाव के कारण उन्हे नृसिह रूपधारी वासुदेव भी माना जाने लगा था।[162] विष्णु के मोहिनी, नृसिह, वामनादि अवतार की कथाए समाज मे प्रचलित हो गयी थी।[163] शख, चक्र चिह्नधारी विष्णु तथा समुद्र-मथन से जन्मी विष्णु-पत्नी लक्ष्मी की भी पूजा की जाने लगी थी।[164] नारायण (विष्णु) के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति जन-मानस मे कथात्मक रूप मे मान्य हो गयी थी।[165] विष्णु पुडरीकाक्ष नाम से भी जाने जाते थे।[166]

बाणभट्ट शिव के साथ विष्णु के भी भक्त थे। उन्होंने अपने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' मे कई स्थानो पर विष्णु और उनके पर्यायवाची नामो का खुलकर उपयोग किया है। हर्ष काल मे वह भागवत, पाचरात्रिक और पौराणिक मतो के नाम से जाना जाता था।[167] शायद शैवो के समान वैष्णव मत भी विभिन्न उप-समुदायो म विभाजित हो गया था। बाणभट्ट स्पष्ट रूप से उक्त तीन अलग-अलग नामो का उल्लेख करता है। डा० रा० ब० पाडे भागवत और पाचरात्रिका को वैष्णव ही मानते हैं।[168] पौराणिक भी वैष्णव मत से ही सबधित था, क्योकि अधिकाश पुराण विष्णु के समर्थक हैं। हर्ष युग मे यह धर्म सर्वमान्य था।

वैष्णव दर्शन

वैष्णव दर्शन का विकास भारतीय दर्शन की मुख्य कडी है। नारायण, वासुदेव, कृष्ण आदि ने इसे दार्शनिक आधार प्रदान किया। इनके द्वारा प्रारभ मे किय गय कार्य को पूर्व मध्य युग और मध्य युग म रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क, रामानद आदि ने आगे बढाया। महाभारत का नारायणीय खड, भागवत, गीता, पाचरात्र सिद्धात, विष्णु पुराण आदि का मिश्रण ही वैष्णव-दर्शन है। जिस प्रकार नारायण-वासुदेव-कृष्ण का समन्वय हुआ, उसी प्रकार से इनके द्वारा प्रतिपादित मार्ग वैष्णव-दर्शन माना गया।

वैदिक कर्मकाड और बलि का विरोध उपनिषद साहित्य मे प्रतिध्वनित हुआ।[169] वैष्णव मत के चिंतक ऋषि नारायण और कृष्ण आगिरस ने तो वैदिक काल म ही नयी प्रवृत्तियो का प्रणयन कर डाला था। वैष्णव दर्शन के चिंतक इसके अपवाद न थे। उपनिषदो ने मुक्त चिंतन की धारा को अधिक परिपुष्ट किया। मुक्ति के लिए एकातिक धर्म, दर्शन और भक्ति का उन्होंने प्रतिपादन किया। उपनिषदकारो के समर्थन से शायद उन्हे बल मिला। वैष्णव अवतारवाद, एक देववाद से बहुदेववाद और बहुदेव से एव देववाद के सिद्धात की चर्चा उपनिषदो मे है।[170] विष्णु के सभी अवतार उनसे निकलकर उन्हीं मे समाहित होते हैं। वैष्णव दर्शन एकेश्वरवाद और बहुदेववाद के समन्वय का सर्वोत्तम उदाहरण है। यही वैष्णव दर्शन का मूल

तत्त्व है।

वैष्णव दर्शन एकातिक भक्ति पर जोर देता है। यह दर्शन 'तापस', 'दान', 'आर्जव', 'अहिंसा' तथा 'सत्यवचन' की प्रेरणा देता है। दर्शन के ये विचार नारायण, कृष्ण और उपनिषदो की देन है।[171] आगे चलकर ये ही गीता की आधारभूमि बने।[172] गीता-दर्शन पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री बौद्ध प्रभाव ढूढते हैं।[173] परतु उपर्युक्त ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक तथ्य इसका स्पष्ट खडन करता है।

चतुर्व्यूहवाद एव पाचरात्र दर्शन

व्यूहवाद वैष्णव दर्शन का मुख्य तत्त्व है। पाचरात्रिक धर्म इसी से सबधित है।[174] यह पाचरात्र दर्शन के सकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न साब और अनिरुद्ध से सबधित है। ये सभी वासुदेव परिवार[175] के है। इन्हें देवत्व मिल गया था। इस कारण से इनकी पूजा[176] आरभ हो गई।

'अहिर बुधनय सहिता', 'विश्वक सेन सहिता', 'ईश्वर सहिता', 'कपिजल सहिता' आदि मे पाचरात्र दर्शन की सुदर विवेचना की गई है। 'सात्वत', 'पारस्कर', 'पाराशर', 'शाडिल्य' और 'विष्णु' सहिताए भी इसमे सहायक हैं। 'नारद पाचरात्र' के अलावा छ अन्य ग्रथो मे भी पाचरात्र दर्शन की चर्चा है।[177] ये सभी कालातर मे वैष्णव दर्शन की पृष्ठभूमि बना।[178] इनम ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या के माध्यम से ब्रह्म, जीव तथा जगत का निरूपण किया गया है। इसके साथ ही ये मुक्ति मार्ग वैष्णव मदिर, देवमूर्तियो का निर्माण तथा वैष्णव पूजा विधियो पर भर प्रकाश डालते हैं।

अवतारवाद मे विश्वास करने के कारण वैष्णव दर्शन अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना हेतु विष्णु अवतरण को मानता है। अवतार के भी चार प्रकार हैं—व्यूह, विभव, अर्चावतार और अतर्यामी अवतार।[179] व्यूहवाद मे वासुदेव अपने 'परा' रूप मे भक्ति-उपासना के केंद्र हैं। व्यूह सकर्षण 'प्रकृति अथवा माया', व्यूह प्रद्युम्न 'मानस', व्यूह अनिरुद्ध 'अहकार' और व्यूह साब 'महाभूत' मान गये।[180] इन सभी की उत्पत्ति एक दूसरे से हुई है।[181] अहिर बुधनय सहिता सकर्षण को ज्ञान तथा बल, प्रद्युम्न को ऐश्वर्य एव वीर्य और अनिरुद्ध को शक्ति तथा तेजगुणो का समूह मानती है। वह इन्हे जगत के सृजन व शिक्षण का श्रेय देती है।[182]

वासुदेव षट्गुणो[183]—ज्ञान, बल, वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेज के पुज माने गये, जबकि अन्य व्यूह मात्र एक अथवा दो गुणो के ही धारक बताये गये। इसने वासुदेव की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। व्यूह सिद्धात का उल्लेख गीता में नही है। वैसे समस्त तत्वो और पृथ्वी की उत्पत्ति महाभूत ब्रह्म से मानी गई।

परब्रह्म को नारायण, वासुदेव कृष्णादि माना गया।[184] उन्हें 'सर्वद्वन्द्व विनिर्मुक्त, सर्वोपाधि विवर्जितम्' तथा 'सर्वकारण-कारणम्' स्वीकार किया गया।[185]

आरम्भिक वैष्णव दर्शन चतुर्व्यूहों का ही उल्लेख करता है। परन्तु भागवत पुराण में संकर्षण के ही ग्यारह व्यूहों और उनसे सम्बन्धित गुणों की विशद चर्चा है।[186] अतः कालांतर में व्यूह और पांचरात्र दर्शन में सामयिक परिवर्द्धन होता रहा।

पांचरात्र दर्शन, प्रकृति की 'त्रिगुणात्मक शक्ति', उसके 'जड़-चेतन' और 'परम भोगार्थ' रूप का भी विवेचन करते हैं।[187] यद्यपि संकर्षणादि के तात्विक गुणों का गीता में उल्लेख नहीं है, पर गीता भी 'जीव', 'बुद्धि', 'मानस', 'अहंकार' आदि की विशद व्याख्या करती है। अतः गीता और पांचरात्र दर्शन भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं।[188] पांचरात्र और व्यूहवाद ने वासुदेव-संकर्षणादि की दार्शनिक विवेचना की है। परन्तु जनसाधारण में वे पूजनीय और उपास्य बने रहे। उनमें देवत्व की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। वृष्णी-सात्वत समूह में वासुदेव परिवार के ये सदस्य पूजे जाने लगे।[189]

गीता

गीता ने वैष्णव दर्शन की सुंदरतम विवेचना की है। वह महाभारत का अंग है।[190] कृष्ण-अर्जुन संवाद के माध्यम से भागवत दर्शन प्रस्तुत किया गया है। गीता का रचना काल ईसा पूर्व की दूसरी अथवा पहली सदी माना गया है।[191] परन्तु यह उससे भी पूर्व हो सकता है। गीता की शिक्षा का स्वरूप धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और व्यवहारवादी अधिक है। कृष्ण ने 'ज्ञान', 'कर्म' और 'भक्ति' का विश्लेषण कर भक्ति को ही अपनाने की अनुशंसा जनसाधारण को दी है।

गीता निवृत्ति' और 'प्रवृत्ति' के बीच का मार्ग सुझाती है।[192] वह जीवन की व्यावहारिकता का दार्शनिक प्रतिनिधित्व करती है। गीता में कृष्ण ने 'स्वधर्म', 'कर्तव्य-अकर्तव्य' और 'पाप एवं पापी' की व्याख्या की है।[193] वह 'जीव अथवा आत्मा', 'शरीर या क्षेत्र', 'माया अथवा प्रकृति' और परमात्मा या ईश्वर कृष्ण-वासुदेव' के संबंधों की विशद चर्चा करती है।

'अज्ञान' ही 'जीवात्मा' को 'मोह माया' के बंधन में बांधता है। इसके नाश के साथ ही 'जीवात्मा' सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है।[194] 'माया मोह' और 'शरीर' अस्थायी है, जबकि 'जीवात्मा' अमर है। वह 'न जायते न म्रियते' है, क्योंकि नाश तो मात्र शरीर का ही होता है।[195] 'जीवात्मा' तो 'वासांसि जीर्णानि' (पुराने वस्त्र के समान शरीर) का त्याग कर 'नवानि गृह्णाति (नए वस्त्र रूपी शरीर)' को धारण करती है—

"तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही"[196]

गीता का आत्मा के अमरत्व मे विश्वास है। उसे 'नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक' शस्त्र और अग्नि नष्ट नही कर सक्ते।[197] अत वह 'शरीर' और 'इन्द्रियो' से परे है। इसीलिए मनुष्यो को निष्काम भावना से सासारिक कर्मों को करना चाहिए।[198] फल की आसक्ति सुख दु ख की जनक है। जबकि निष्काम कर्म से 'चित्त की शुद्धि' होती है और 'अहकार', 'माया-मोह' तथा 'कामना' आदि का नाश होता है। सतत अभ्यास से जीवात्मा 'स्थितप्रज्ञता' पा सकता है।[199] यही गीता के 'कर्मयोग' का सार है।[200]

जीवात्मा की मुक्ति हेतु एक अन्य मार्ग भी है। योगी भी उसे 'ज्ञान मार्ग' कहते हैं। गीताकार ने ज्ञान मार्ग की विस्तृत विवेचना की है।[201] 'ज्ञानी', 'कर्म', 'आत्मा' और माया' के बधनो से परे रहता है। सबकुछ करते हुए भी वह 'अलिप्त' है। ज्ञानी जन 'ज्ञान यज्ञेन' से ईश्वर का भजन करते हैं।[202] ज्ञान, जीवात्मा को योगी बनाकर—

' यदा विनियत चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
नि स्पृह सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।"

आत्मा को शुद्ध चित्त, इच्छा रहित, भोग तृष्णा से परे कर देता है।[203] परतु ज्ञान-मार्ग अत्यत दुरूह है।

ज्ञान और कर्म योग की अपेक्षा, गीताकार के अनुसार 'भक्ति' अत्यत सरल मार्ग है। गीता ने उसे 'भक्ति योग' की सज्ञा दी है।[204] भक्ति सर्वसाधारण के लिए श्रेष्ठ है।[205] सब कुछ भूलकर जीवात्मा को 'ईश्वर-वासुदेव' की भक्ति करनी चाहिए, क्योकि ईश्वर' सब 'भूतो का आधार' है।[206] भक्त जब श्रद्धा से पत्र, पुष्प, फल तोय' चढाता है तो प्रभु उसे स्वीकार करते हैं।[207] भक्त को 'शुभाशुभ फलैरेव' को भी 'वासुदेव' को अर्पण कर 'कर्म बधन' से छूटना चाहिए।[208] भक्त को 'नदृष्यति', 'न शोचति' और 'शुभाशुभ परित्यागी' बनने का सतत प्रयत्न करना चाहिए।[209] भक्ति ही मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग है।[210]

'प्रकृति' को गीता 'त्रिगुणात्मक'—'सत्व, रजस्तम इति गुणा'—मानती है। इन्होने ही जीवात्मा को देह से बाध रखा है। इनमे 'सतोगुण' श्रेष्ठ है, जबकि 'रजोगुण', 'मोह' का और 'तमोगण', 'प्रमाद' का कारण है।[211] इनसे छुटकारा पाने के लिए दु ख सुख को समान समझते हुए, 'निंदा-स्तुति' से परे रहने का प्रयत्न करना चाहिये। 'माया' भ्राति पैदा करती है।[212] भक्ति के माध्यम से भक्त को जीवात्मा को इन सबसे छुटकारा दिलाना चाहिए। इसलिए उसे 'अत करण की शुद्धि', 'दान', 'तप', 'आर्जव' आदि का अभ्यास करना चाहिए।[214] साथ ही 'अहिसा', 'दया' को अपना कर 'असत्य भाषण' और 'क्रोध का परित्याग' करना चाहिए।[215] तभी वह 'मोक्ष' पा सकता है।

इस दार्शनिक व्याख्या के माध्यम से गीताकार ने 'आत्मा', 'परमात्मा',

'जीवन' और 'मृत्यु' के साथ ही पुनर्जन्म माया और मोक्ष का बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है। गीता एक व्यवहारवादी और आचारवादी दर्शन प्रस्तुत करती है। उसकी इस व्यावहारिकता के कारण आचार्य चतुरसेन ने उस पर बौद्ध प्रभाव ढूढने का प्रयत्न किया है।[216] जबकि गीता दर्शन की मूल प्रेरणा और कदाचित बौद्ध दर्शन के प्रेरक-बिंदुओ को वैदिक-उपनिषद् साहित्य मे खोजा जा सकता है। 'ज्ञान-कर्म-भक्ति' से सबधित अनेक दार्शनिक तथ्य उक्त साहित्य मे प्राप्य हैं। ये बौद्ध के धर्म के प्रवर्त्तन के पहले ही प्रचलित थे। गीता तो उस दार्शनिक चितन की धारा का परिणाम मात्र है। उसने वेदो-उपनिषदो मे बिखरे पडे भक्तिपरक विचारो को व्यावहारिक उद्देश्य से एक भक्ति-मुक्ति मार्ग मे ढाल दिया।[217]

गीता ने पूर्व मध्य युगीन वैष्णव मत को काफी गहराई तक प्रभावित किया। एक साधारण गृहस्थ भी अपने दैनिक कर्मों को करते हुए इनका पालन कर सकता था। गीता ने दैनिक कामो और भक्ति का सुदर समन्वय किया था। वह प्रवृत्ति मे निवृत्ति का दर्शन सिद्ध हुआ। अत गीता और उसका दर्शन पारिवारिक पूजा की वस्तु बन गई। परस्पर दो विपरीत धाराओ का मिलन ही गीता है। वह पूर्व-कालीन धार्मिक समन्वयवादी परपरा की सशक्त कडी है। कालातर मे इस पर कई भाष्य और टीकाए लिखी गयी।[218]

रामानुज और भागवत दर्शन

पूर्व मध्य युग, दर्शन का एक विशेष उल्लेखनीय युग है। इस काल ने कुमारिल भट्ट, शकराचार्य, मडन मिश्र, रामानुज जैसे दार्शनिक इतिहास को दिये। इनके काल निर्णय के बारे मे इतिहासकारो म मतभिन्नता है। फिर भी बहुसख्यक विद्वान इन्हे पूर्व मध्य युग का ही मानते है।[219]

रामानुज ने पूर्व मध्य काल मे वैष्णव मत व दर्शन को परिपुष्ट किया। उन्होंने शकर के 'अद्वैत' के विरोध मे 'विशिष्टाद्वैत' का प्रतिपादन किया था।[220] गीता के दर्शन को विशिष्टाद्वैत ने आगे बढाया। रामानुज की विचारधारा पर दक्षिण के रहस्यवादी आलवार सतो, पांचरात्र मत और गीता का बहुत अधिक प्रभाव पडा।[221] उन्होंने वेदात से भी प्रेरणा ग्रहण की।[222] उनके दर्शन की नीव यामुनाचार्य के तर्कों पर खडी थी।[223]

रामानुज ने 'वेदार्थ सग्रह', गीता भाष्य' और 'श्री भाष्य' नामक तीन प्रमुख ग्रथो का प्रणयन किया था। इनमे वैष्णव दर्शन की विवेचना है। रामानुज ने विष्णु को 'ब्रह्म' अथवा 'ईश्वर' तत्व मानकर उसका विवेचन किया है। उन्होंने 'ब्रह्म', 'जीव' और 'प्रकृति' के सबधो पर भी प्रकाश डाला। खासकर ब्रह्म के 'स्वरूप', उनके 'सत्य', 'ज्ञान' और 'अनत' गुणो का विश्लेषण किया।[224] रामानुज का विशिष्टाद्वैत 'ब्रह्मविद आपनोति परम' मे विश्वास करता है।[225] वह 'शरीर',

और 'शरीरिन' की चर्चा कर 'जीव' को 'शरीर' का आधार मानते हुए स्पष्ट करता है कि 'शरीर' से अलग होते हुए भी 'शरीरिन' उसका अंग है, उसे गतिमान रखता है। उसी प्रकार 'ब्रह्म' 'समस्त ब्रह्माण्ड' अथवा 'विश्व' (जीव समेत) का 'शरीरिन' है। यह विश्व उसकी 'लीला' है।[226]

रामानुज ने 'सूक्ष्म-चिदाचिद-विशिष्ट' की व्याख्या की। उसने ब्रह्म को सर्जक, कारणावस्थ और कार्यावस्थ माना।[227] ईश्वर सगुण है और वह अपने व्यूह, पर, विभव आदि अवतार ग्रहण करता है।[228] चित्त भोक्ता जीव है और अचित् भोग्य जगत्। ये दोनों स्वतंत्र होते हुए भी ब्रह्म से जुड़े हुए हैं।[229] ईश्वर इनमें अंतर्यामी रूप से विद्यमान होने से ये उसके अधीन हैं।

ज्ञान, कर्म और भक्ति में रामानुज ने भक्ति पर अधिक जोर दिया है। इसे उन्होंने 'प्रपत्ति' अथवा 'शरणागति' भी कहा।[230] प्रपत्ति ही ईश्वर-प्राप्ति का सुगम मार्ग है। इस हेतु विद्याभ्यास, योग साधना अथवा ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं। भगवान की शरण जाने पर वे तुरंत अपना लेते हैं। उन्होंने 'साधन-सप्तक' अनुशासन अनुशंसित किया।[231] गीता के 'निष्काम कर्म' को भी रामानुज ने मान्यता दी।[232]

रामानुज ने अपनी प्रपत्ति के द्वार सभी के लिए खोल दिये। सामाजिक समानता की दिशा में तत्कालीन ब्राह्मण जहां तक जा सकते थे, रामानुज वहीं जाकर रुके। उनके निर्देश में वैष्णव मत ने अनेकों शूद्रों और अंत्यजों को अपना कर उसे विस्तृत कर दिया।[233] दर्शन की कई सारगर्भिताएं यद्यपि विष्णु-भक्तों की समझ में नहीं आयीं, पर प्रपत्ति अथवा शरणागति भक्ति उनका आधार बन गयी। यह भक्ति से भी एक कदम आगे की बढ़ी थी। इसने वैष्णव धर्म को काफी लोकप्रिय बनाया। मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य ने कालांतर में वैष्णव दर्शन की नयी-नयी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। विष्णु के कृष्णावतार की लोकमान्यता के कारण ही उन्होंने 'ब्रह्म' या 'ईश्वर' का स्थान ले लिया। वे वैष्णव दर्शन का केंद्र बिंदु बन गए। भक्ति वैष्णव दर्शन का मूल आधार बनी रही।

वैष्णव मत को राज्याश्रय

पूर्व मध्य युग में विष्णु और उनके अवतारों की प्रतिष्ठा भली भांति हो चुकी थी। वे गरुडासन देव, चक्रस्वामी, वंशीधर मोहन, वराह आदि नामों से पूजित थे।[234] यह इतना लोकमान्य हो गया था कि विदेशी यात्रियों को भी उसने आकर्षित किया।[235] साधारण जनता से लेकर बड़े-बड़े नरेश तक वैष्णव धर्मानुयायी थे। भारतीय समाज में वैष्णव मत उन्नति के शिखर पर था।

काश्मीर में भी इस मत का अच्छा प्रचार था। काश्मीर नरेश का अवन्तिवर्मन (सन् 855-84 ई०) परम वैष्णव था।[236] काश्मीरी महाकवि क्षेमेन्द्र (सन् 1066)

ने विष्णु के विभिन्न अवतारो को आधार बनाकर 'दशावतार चरित्र' की रचना की थी।[237]

अलबीरुनी स्थाणीश्वर के चक्रस्वामी (विष्णु) के मदिर का उल्लेख करता है। यह मदिर हिंदुओ मे बडा आदरित था। आसपास व दूर के लोग यहा पूजा हेतु आते रहते थे।[238]

चदेल राज्य सीमा मे भी विष्णु-भक्ति का बडा जोर था। खजुराहो मे चदेलो ने विष्णु के लिए भव्य मदिरो का निर्माण कराया था। चदेलेश यशोवर्मा विष्णु का परम उपासक था। उसने विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति कन्नौज से लाकर खजुराहो मे स्थापित की थी।[239] मध्य भारत का तत्कालीन समाज वैष्णवी अहिंसा से ओतप्रोत था। न केवल विष्णु और उसके अवतार पूजित थे, वरन धर्म के सिद्धातो का भी पालन किया जाता था।[240] राजा ही नही वरन उनके कर्मचारी भी विष्णु-भक्त थे। परमर्दिदेव के प्रधान सचिव सुलक्षण ने भी विष्णु-मदिर का निर्माण कराया।[241] खजुराहो का चतुर्भुज मदिर विष्णु की कीर्ति का प्रतीक बन गया। इस मदिर मे विष्णु के वराह, नृसिह, पूतनावध के अवतारो की कथा को कलात्मक रीति से उत्कीर्ण किया गया।[242] इस काल के प्रसिद्ध नाटककार कृष्ण मिश्र भी विष्णु और नृसिह की भक्ति का उपदेश देते हैं।[242A]

आठवी सदी मे सिरपुर (रायचूर) मे एक देवायतन द्वार के अग्रभाग पर शेषशायी विष्णु मूर्ति उत्कीर्ण की गई। आयतन द्वार के बाह्य पार्श्व द्वारो पर भी विष्णु के अवतारो को अकित किया गया। यह दर्शाता है कि इस भाग मे विष्णु और उनके अवतारो की अच्छी प्रतिष्ठा थी।[243]

मालवा-निमाड मे भी वैष्णव मत का प्रचार था। इस क्षेत्र मे राष्ट्रकूट, मौर्य और प्रतीहार वश के नरेशो ने वैष्णव[244] धर्म को भी समर्थन दिया था। परमार वश यद्यपि शैव था परतु वे वैष्णव मत को भी मान्यता देते थे।[245] क्योकि यह धर्म लोकमान्य था। मालवा के कई भागो मे विष्णु-मदिरो की स्थापना की गयी थी। सन् 861 ई० का पठारी अभिलेख दर्शाता है कि मालवा मे विष्णु, मुरारी, कृष्ण और हरि नामो से पूजित थे।[246] शख, चक्र, गदा, माला के चिह्नो से युक्त विष्णु-मूर्ति का निर्माण आठवी नवी सदी मे धमनार मे किया गया।[247]

मालवा-निमाड की सर्वसाधारण जनता भी विष्णु, उपासक थी। अल्ल नामक एक व्यक्ति ने ग्वालियर मे चतुर्भुज मदिर भगवान विष्णु को अर्पित किया था।[248] ग्वालियर का ही तेली का मदिर भी प्रारभ मे विष्णु को ही समर्पित किया गया था।[249]

शैव होते हुए भी परमार नरेशो ने विष्णु के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट की थी। उन्होने विष्णु के वाहन गरुड को अपना राज-चिह्न बनाया था।[250] परमार सीयक द्वितीय का हरसोला ताम्रपत्र[251] नृसिह भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा का

परिचायक है। वाक्पतिराज द्वितीय ने भी 'राधा-विरहातुरा-मुरारी' के प्रति सन्मान प्रगट किया था।[252] इस वश का राजा नरवर्मन तो वैष्णव हो गया था। उसने 'निर्वाण नारायण' का विरुद धारण किया था। विष्णु के विभिन्न अवतारो के प्रति उसने भक्ति प्रकट की थी।[253] विष्णु मदिरो के लिए उपवन लगाकर उन्हे दान मे पूजार्थ दिया जाता था। महाराज सुभटवर्मन ने विष्णु के उपयोगार्थ उपवन लगाकर दान मे दिया था।[254] मालवा मे विष्णु के नृसिह, मत्स्य, वराह, कूर्म, कृष्ण, परशुराम, राम आदि अवतार पूजित थे। इनके सबध मे कथा-वार्ताए भी प्रचलित एव लोकमान्य थी।

निमाड मे भी विष्णु और उनके विभिन्न अवतारो की पूजा-उपासना का प्रचलन था। निमाड के प्रसिद्ध शैव तीर्थ मान्धाता मे 'दैत्य-सूदन' (विष्णु) के लिए देवालय का निर्माण किया गया था।[255] अत शिव विष्णु के मध्य सह-अस्तित्व कायम हो गया था। निमाड मे परमार काल मे ही कुछ और विष्णु मदिर बनाये गये।[256] अत निमाड की जनता शिव-विष्णु दोनो की उपासक थी। ग्यारहवी सदी मे अरयूना मे प्राप्त पुत्र-मा की एक मूर्ति को कृष्ण-यशोदा माना गया है।[257] अत कृष्ण के बालपन की कथाए अत्यत जनप्रिय उस काल मे इस क्षेत्र मे थी।

मध्य देश मे भी वैष्णव मत काफी लोक-प्रचलित था। कृष्ण और उनकी गोपीलीला की कथाओ से लोग परिचित थे। सातवी सदी का पेहोम अभिलेख 'श्रीकृष्ण-गोपियों' का उल्लेख करता है।[258]

राजस्थान मे चतुर्भुज विष्णु और उनकी भार्या लक्ष्मी का पूजन जन-मान्य था। जोधपुर अभिलेख परमेश्वर को चतुर्भुज बताता है। वे शख, चक्र, गदा, पद्म और कौस्तुभ मणि धारण करते है। उनकी भार्या लक्ष्मी भी पूजनीय है।[259] इस क्षेत्र मे गरुडासन-विष्णु के साथ ही हल-मूसल से युक्त मस्तक पर फणीधरवाले रूप का भी पूजन किया जाता था।[260] ओसिया से प्राप्त यह मूर्ति वासुदेव-सकर्षण पूजा का समर्थन करती है। इसे नवम सदी का माना गया।[261]

उस काल मे अनेक वैष्णव मदिर बने। गुजरात मे भी विष्णु-पूजा का चलन था। 'दशावतार' का मदिर सिद्धराज ने बनवाया था।[262] जयसिह के मत्री ने भी गगनारायण के मदिर का निर्माण कराया था।[263] विष्णु, केशव नाम से भी पूजित थे। भीम द्वितीय के एक शासकीय अधिकारी ने केशव देव का मदिर बनवाया था।[264]

बगाल से प्राप्त विष्णु, गजलक्ष्मी आदि की मूर्तिया उस क्षेत्र मे विष्णु-पूजा का समर्थन करती हैं।[265] बगाल मे विष्णु हयग्रीव और विश्वरूप नाम से भी पूजित थे। इस प्रकार कई मूर्तिया बगाल के विभिन्न भागो मे मिली हैं।[265A]

दक्षिण भारत मे वैष्णव मत

उत्तर के समान दक्षिण मे भी वैष्णव मत अधिक लोकमान्य था। इस काल मे विष्णु-भक्ति के प्रचार हेतु आलवार सतो ने सर्वाधिक काम किया। वैष्णव आचार्यों ने उसके दार्शनिक पक्ष का विकास किया। इसकी चर्चा भक्ति से सबधित अध्याय मे विस्तार सहित की गई है।

दक्षिण के कई राजवश वैष्णव मत के माननेवाले थे। एलोरा के प्रसिद्ध दशावतार मदिर मे विष्णु की शेषशायी प्रतिमा उत्कीर्ण की गई। लक्ष्मी विष्णु के चरण दबा रही है और नाभि कमल पर ब्रह्मा आसीन है। नृसिह, वामन, वराह, कृष्ण और गोवर्धन धारण की कथाओ का भी अकन किया गया है। इसका निर्माण राष्ट्रकूट राजदति दुर्ग के काल मे हुआ।[266] कालिया मर्दन की कथा का भी अकन इस मदिर मे किया गया।[267]

पल्लवेश नदिवर्मन (सन् 730-800) ने काची के प्रसिद्ध वैकुठ पेरूमल मदिर का निर्माण कराया। वह विष्णु-भक्त था। पल्लव देश मे विष्णु पूजा का प्रचलन था।[268] इस काल के वैष्णव आचार्य तिरुमगई ने विष्णु-भक्ति का प्रचार किया।[269]

चोल देश मे विष्णु का राम अवतार काफी लोक-प्रचलित था। विरूपाक्ष और दशावतार मदिरो मे राम अवतार के साथ ही रामायण के दृश्य और हिरण्यकश्यप की मृत्यु के दृश्य भी उत्कीर्ण किये गये।[270]

विष्णु की पूजा ब्रह्मा-विष्णु-महेश और दत्तात्रेय के युग्म के रूप मे भी की जाती थी। इस प्रकार की मूर्तिया देश के कई भागो मे पायी गयी।[271] शायद विभिन्न धार्मिक सप्रदायो मे इस प्रकार से समन्वय कायम करने का प्रयत्न किया गया।

केरल मे भी विष्णु-पूजा का प्रचार था। केरलेश कुलशेखर विष्णु-पूजक था। उसने वैष्णव मत को गौरवान्वित करने के लिए 'मुकुद माल' की रचना की थी।[272]

उपरोक्त तथ्य दर्शाते हैं कि पूरे गौरव के साथ वैष्णव मत से सबधित विभिन्न अवतार सारे देश मे पूजित थे। विष्णु के कई नाम तत्कालीन अभिलेखो मे पाये जाते हैं।[273] उनके प्रति लोगो मे भक्ति, श्रद्धा और आदर की भावना रही। वे लोग पूजित देवता ही नही बने वरन् उन्होंने हिंदू धर्म मे शीर्ष स्थान बना लिया।

संदर्भ

1 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 332 38
आचार्य चद्रसेन शास्त्री भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ० 850
2 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 312
3 हटर द इडियन एपायर, पृ० 208
4 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 15
5 बी० जी० गोखले एनसिएट इडिया, पृ० 157
6 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 434
पाचरात्र—4/2/88, महाभारत—नारायणीय खड, 12 325/4
7 महाभारत, 5/97
8 सुधाकर चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 24
8A जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ० 607
8B वही, पृ० 608
9 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 431
10 के० जी० गोस्वामी वैष्णवइज्म, पृ० 2
11 चद्रभान पाडे *आध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास*, पृ० 131
12 हटर द इडियन एपायर, पृ० 192
13 देखिए एच० सी० रायचौधरी द अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट
सुवीरा जायसवाल ओरिजन एड डेवलपमेंट आफ वैष्णवइज्म
सुधाकर चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट
14 सुवीरा जायसवाल ओरिजन एड डेवलपमेट आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० 32
15 वही, पृ० 52
16 वही, पृ० 32-33
17 वही, पृ० 32, 64
17A ऋग्वेद 3-62 10
18 वही 1-139-11, 1 154 2, 1 22 17, 1-22 20
19 द वैदिक एज, पृ० 366
20 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 431
21 सूर्यकात वैदिक देवशास्त्र, पृ० 85 86
22 द वैदिक एज, पृ० 371
23 हटर द इडियन एपायर, पृ० 200, फुटनोट-4
24 वही ।
25 वही ।
26 एस० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 27
27 एम० एल० विद्यार्थी इडियाज कल्चर, पृ० 217 18
28. ऐतरेय ब्राह्मण 1 1, 6-3 15
29 शतपथ ब्राह्मण 1-9, 3-9

30 अवतारवाद पर आगे विस्तृत चर्चा है।
अवतारवाद हेतु देखिए—तैत्तिरीय संहिता, 2-1, 3-1
31 बी० जी० गोखले एंशिएंट इंडिया, पृ० 157-58
32. द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 360-61
33 एन० चट्टोपाध्याय : एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 41
बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 103
34 हॉपकिंस एपिक मैथालोजी, पृ० 217
35 बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 103
36 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 432
37 देखिए, इस अध्याय 'का कृष्ण'
38 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 434
39 वही, पृ० 433
40 आर० जी० भंडारकर : वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 10
41 वही।
42. एन० चट्टोपाध्याय : एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 44-48
43 आस्पेक्ट आफ अर्ली वैष्णविज्म, पृ० 11
44 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 447
44A वही।
44B गीता . 7-4 5
44C आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 14
44D एन० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 33
44 (क) पाणिनी अष्टाध्यायी 4 3 98 "वासुदेवार्जुन माभ्यां वुन्"
44 (ख) पतंजलि · महाभाष्य, 6-3-5
45 एन० चट्टोपाध्याय : एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 34
46. देखिए, इस अध्याय का 'वैष्णव धर्म की समन्वयता'
47 आर० जी० भंडारकर : वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० *14, 15, 40*
47A एच० सी० रायचौधरी . पोलिटिकल हिस्टरी आफ इंडिया, पृ० 119
अर्ली हिस्टरी आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० 26-39
43 ऋग्वेद : 8 85, 86, 87, 10-42, 43, 44
49 वही : 8 96, 13-15
50 सहीस घोर आंगिरस—कृष्ण देवकी पुत्र,
छांदोग्य उपनिषद : 303 17-6
51 कौषीतकी ब्राह्मण : 30 8-9
52. चतुरसेन शास्त्री : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० 441-42
53 पाणिनी : अष्टाध्यायी . 4 1-96, 4-1-99
54 आर० जी० भंडारकर : वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 13
55 महाभारत : शांति पर्व, 191-29
56 वही, उद्योग पर्व · 123 16
57 वही, भीष्म पर्व · 116-36

57A भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० 438 57
57B वही, पृ० 439
58 रिलिजंस आफ इंडिया एंड इंडिक मैथालॉजी
58A द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 434 35
59 वी० जी० गोखले एनशिएंट इंडिया, पृ० 158
59A रामाश्रय अवस्थी वासुदेव और कृष्ण को एक ही मानते हैं—
देखिए—खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ० 58
60 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 14
61 वही।
62 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 434
63 हरिवंश 5876-78, वायु पुराण अध्याय 98
भागवत 2-7
64 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 42
65 जर्नल आफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृ० 981 (1907)
66 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 43
67 वही, पृ० 36
68 द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आफ वैष्णवइज्म, पृ० 36
68A अष्टाध्यायी 4-3 98
69 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 35-36
70 शतपथ ब्राह्मण 13-3-4
71 तैत्तिरीय आरण्यक 10-11
72 द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आफ वैष्णवइज्म, पृ० 32-33
72A भक्तिमार्ग एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एंड एथिक्स, भाग 2
73 वामन पुराण अध्याय 6
74 ऋग्वेद 10-90
75 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 436-37
आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 37-38
76 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 436-37
77 भागवत समुदाय, पृ० 100-15
78 अष्टाध्यायी 4 1-99
79 बृहज्जातकम 15 1
80 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, 436-37
81 इस अध्याय मे वैष्णव मत की उत्पत्ति देखें
82 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 437
83 उद्योग पर्व, 49, 19
84 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 440
85 एम० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 38
86 महाभारत वन एवं उद्योग पर्व, वामन पुराण, अध्याय 6
86A आर० जी० भंडारकर वैष्णव शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 44

87 बी० जी० गोखले एनशिएट इंडिया पृ० 157 58
88 एस० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 36
88A पी० डी० अग्निहोत्री पतजलि कालीन भारत, पृ० 508 9
88B पतजलि महाभाष्य, 6-2-26, पृ० 310
89 बी० जी० गोखले · एनशिएट इंडिया, पृ० 158-59
90 तैत्तिरीय आरण्यक, दशम प्रपाठक
कीथ जर्नल आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग V, पृ० 171 (1908)
91 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 360-61
92. वही।
93 एस० चट्टोपाध्याय एवोल्यूशन आफ हिंदू सेक्ट, पृ० 35
94 स्टीवेंसन द हार्ट आफ जैनिज्म
95 बील द रोमांटिक लीजेंड्स आफ साक्य बुद्ध (1875)
जातक कथाएँ अनूदित काशी नागरी प्रचारिणी सभा
96 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 450
97 द क्लासिकल एज, पृ० 415
98 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 386, 450
99 देखिए, विष्णु की उत्पत्ति
99A ऋग्वेद, 8-7 10
99B ऋग्वेद, 1-154 1
100 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 2
101 तैत्तिरीय सहिता, 2/1/3/1
102 शतपथ ब्राह्मण, 14/1/2/11, तैत्तिरीय सहिता, 6/2/4/2/3, शतपथ ब्राह्मण 7 5, 1-5
103 शतपथ ब्राह्मण, 2/8/1/1
104 वही, 7/5/1/5
105 द क्लासिकल एज, पृ० 415
106 गीता अध्याय 4/7 8
107 महाभारत 38/12/34
108 भागवत पुराण 3/18/19, मत्स्य पुराण 246/48, अग्नि पुराण, अध्याय 2
109 हटर द इंडियन एपायर, पृ० 201 (फुटनोट)
110 वही।
111 वही, पृ० 200-201
112 भागवत पुराण, खड 1, प्रथम स्कध, अध्याय 3
वही, खड 2, स्कध 11, अध्याय 4
113 वही।
114 कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भाग 3, पृ० 285
115 गीता 4/7-8
116 कृष्णावतार का अपनी लीला समेट कर स्वधाम गमन
भागवत पुराण : अध्याय 30-31 (कल्याण प्रकाशन)

117 रघुवंश 10/44, गीत 11/45, 46, 50
118 वही, 10-26 गीता, 9/26
119 बृहद हारीत स्मृति अध्याय 10, 5/145, हेमाद्रिवृत्त खड, पृ० 1034
120 अग्निपुराण, अध्याय 3 पृ० 11 (कल्याण प्रकाशन)
121 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 469 71
122 जातक, 6-292
122A द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 470-71
123 जातक 6/292
124 वि० च० पाडे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास पृ० 202
225 कौटिल्य अर्थशास्त्र
126 पी० डी० अग्निहोत्री पतजलि कालीन भारत, पृ० 508
127 चद्रभान पाडे आध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० 142
128 एपीग्राफिया इडिका, भाग 28 पृ० 43
129 वाल्मीकि रामायण, सग 2-6
130 विटरनिट्ज हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, भाग I पृ० 500-17
131 महाभारत अध्याय 19
132 विटरनिट्ज हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, भाग I पृ० 465
133 शतपथ ब्राह्मण 11/5/7/9
134 ब्रह्मसूत्र भाष्य
135 शतपथ ब्राह्मण, 14/2/4/10
136 बल्देव उपाध्याय पुराण विमश, पृ० 140-161
137 सूची हेतु देखिए वही
138 परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 482
139 सूत्र कृताग 11, 2 79
140 बृहज्जातक 15 1
140A आवश्यक नियुक्ति, 481
चद्रभान पाडेय आध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० 139
141 अष्टाध्यायी 4-2 24 4 2 94, 4-3 95, पृ० 100
142 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अय धार्मिक मत, पृ० 10
143 मेगास्थनीज मेक्रिंडल, पृ० 74 85
केम्ब्रिज हिस्टरी आफ इडिया, पृ० 376-79
आर० जी० भडारकर वैष्णव शैव एव अय धार्मिक मत, पृ० 176-79
144 अर्थशास्त्र 13 3 67
145 एपीग्राफिया इडिका, भाग 16 पृ० 27 भाग 22, पृ० 203
145A महाभाष्य 6-3 8, पृ० 311
145B वही, 4-3 97, पृ० 245, 2 2 24, पृ० 369, 4-3-98, 3 1 26 पृ० 175
146 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 452
147 एपीग्राफिया इडिका भाग 24 पृ० 194 200
148 परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 484

149 परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 486-87
150 कार्पस इस्क्रिप्शस इंडिकेरम भाग III, पृ० 62
151 वही, पृ० 61
152 वही, पृ० 89
153 वही, पृ० 160
154 वही, पृ० 146, 176
155 जर्नल आफ द न्यू मेसमेटिक सोसायटी आफ इंडिया, भाग X, पृ० 104
156 परमेश्वरीलाल गुप्त गुप्त साम्राज्य, पृ० 489
156A महाभाष्य 5 3-100, पृ०480-81, 4-3-125, पृ० 253
157 कुमारस्वामी हिस्ट्री आफ द इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट, पृ० 174
158 द क्लासिकल एज, पृ० 512
159 वही।
160 बील बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स आफ वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० 262-63
161 वही, पृ० 214-221
162 बाणभट्ट कादम्बरी, मंगलाचरण, 1, 3, 7
163 वही, हर्षचरित
164 वही।
165 वही, चतुर्थ उच्छ्वास।
166 वही।
167 वही, अष्टम उच्छ्वास, पृ० 432
168 प्राचीन भारत, पृ० 282
169 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 1-2
170 वही।
171 छांदोग्य उपनिषद, 16-3
172 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 433
173 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 458
174 द क्लासिकल एज, पृ० 423 24
175 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 14-44
176 प्रोसीडिंग्स आफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, भाग VII, पृ० 82
177 बल्देव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 115-116
178 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 447
179 भागवत सम्प्रदाय, पृ० 124
180 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 447-48
181 शंकर भाष्य, 2/2/42-45
182 अहिर बुधन्य संहिता, 5, 17 60
183 वही, 2-56
184 भागवत सम्प्रदाय, पृ० 120
185 अहिर बुधन्य संहिता, 2 53
186. भागवत पुराण, अध्याय 25-5, पृ० 648 51

187 अहिर बुधनय सहिता, 14 6, 13, 15, 30, 41
आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 44 45
188 वही, पृ० 30-31
189 द एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० 449
190 वही, पृ० 440
191 वही, पृ० 441
192 वही, पृ० 442
193 गीता 2/3-5, 1/36-37
194 वही, 2/11-12
195 वही, 2/20-23
196 वही, 2/22
197 वही, 2/23
198 वही, 2/47
199 वही, 2/55
200 वही, अध्याय 2-3
201 वही, अध्याय 4, 5, 6, 9
202 वही, 9/15
203 वही, 6/18
204 वही, अध्याय 7
205 वही, 8/22
206 वही, 9/5-17
207 वही, 9/26
208 वही, 9/28
209 वही, 12/27
210 विस्तृत अध्ययन हेतु देखिए, अध्याय 7
211 गीता · 14/5
212 वही, 14/6-13
213 वही, 14/24
214 वही, 16/1
215 वही, 16/2 3
216 भारतीय सस्कृति, पृ० 458
217 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 413
218 देखिए—बी० जी० तिलक · गीता रहस्य
मो० क० गाधी गीता दर्शन
विनोबा भावे · गीता प्रवचन आदि
द साग आफ गॉड नाम से इसे अग्रेजी मे अनूदित भी किया गया
219 आचार्य चतुरसेन भारतीय सस्कृति, पृ० 864
220 वही, पृ० 293
221 वही।

222 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 300
223 डी० एस० शर्मा द हिंदू रिनेसा
224 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 302
225 तैत्तिरीय उपनिषद, पृ० 2 1
226 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III पृ० 308 9
227 भागवत सप्रदाय पृ० 210
228 देखिए—पाचरात्र दर्शन
229 सर्वदर्शन सग्रह (कावेल एड गफ)
230 वही।
231 श्री भाष्य विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुधर्ष
232 कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 309
233 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 295
234 कार्पस इस्क्रिप्शस इडिकेरम, भाग III, पृ० 160
कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, पृ० 4 5
235 अलबीरूनी भाग I, पृ० 117
236 सी० वी० वैद्य हिस्टरी आफ मेडीवल इडिया, भाग III, पृ० 415
237 ए० बी० कीथ हिस्टरी आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृ० 136
238 अलबीरूनी भाग I, पृ० 117-118
239 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए
240 केशव मिश्र चदेल और उनका राजत्वकाल, पृ० 205
241 एपीग्राफिया इडिका, भाग I, पृ० 209-210
242 आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग II, पृ० 425-27
242A प्रबोधचद्रोदयम्, पृ० 4-5
243 आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट (वेस्टर्न सर्कल), पृ० 21
244 के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 414
245 वही, पृ० 415
246 एपीग्राफिका इडिका, भाग IX, पृ० 248
आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इडिया रिपोर्ट, 1905-6
247 द कल्चरल हेरिटेज आफ मध्य भारत
248 वही।
249 वही।
250 के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 415
251. एपीग्राफिका इडिका, भाग XIX, पृ० 236
252. उदयपुर प्रशस्ति, इडियन एटीक्वेरी, भाग XIV, पृ० 160
253 नागपुर प्रशस्ति, एपीग्राफिया इडिका, भाग II, पृ० 182
254 एपीग्राफिया इडिका, भाग IX, पृ० 109
255 वही।
256 प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ आर्कियालाजिकल सर्वे, वेस्टर्न सर्कल, 1920-21
257 इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग XXX, पृ० 343

परतु वह हिंदू धर्म को भी दुर्लक्षित न कर सका, न ही वह अशोक-कनिष्ककालीन गौरव बौद्ध धर्म को दिला पाया। हर्ष साम्राज्य के पतन के साथ ही बौद्ध धर्म की अवनति भी आरभ हो गयी। बगाल-बिहार के पाल-सेन शासको[11] को छोडकर भारत के पूर्व मध्यकालीन शासको का एकछत्र सरक्षण वह न पा सका। अत वह बगाल-बिहार-आसाम और उडीसा अर्थात् पूर्वी भारत मे ही सिमटकर रह गया। विक्रमशील उसका केंद्रबिंदु था।[12] दक्षिण भारत मे उसे शैवो वैष्णवो के तीव्र विरोध का सामना करना पडा। वे उसे इस युग मे वहा से अपदस्थ करने मे सफल भी हुए।

पूर्व मध्य युग तक आते-आते उसमे अनेक दार्शनिक और सैद्धांतिक परिवर्तन हो गये थे। वह मत्र योग मे सिमट गया।[13] उसमे धार्मिक दुराचार प्रवेश कर गया। इसने सुखवाद को विकसित किया।[14] वह अनेक देवी-देवताओ मे विश्वास करने लगा, जिनकी अर्चना से सिद्धि मिल सकती थी। बुद्ध अनेक देवी देवताओ से नाग, किन्नर, यक्ष-अप्सराओ से घिर गये।[15] बुद्ध गौडपादाचार्य के पूर्व ही विष्णु का अवतार मान लिए गये थे। इसने भी उसके स्वतत्र अस्तित्व को खतरा पहुचाया।[16]

बुद्ध की शिक्षाओ का स्थान बुद्ध-पूजा ने ले लिया। उन्हे सर्वशक्तिमान और सर्वव्याप्त मानकर ग्रहण कर लिया गया, तब उनकी अर्चना रहस्यमय और जटिल हो गयी।[17] इसने भक्ति के साथ भोग को प्रश्रय दे वैपुल्यवाद को विकसित किया।[18] वज्रयान,[19] तत्र मत्र यान या तांत्रिक-महायान,[20] सहजयान[21] की प्रवृत्तिया बल पा गयी।

इस युग मे गुह्य यौगिक क्रियाओं के साथ ही कर्मकांड का भी बौद्ध धर्म मे बोलवाला था। काश्मीरी बौद्ध विद्वान् सर्वज्ञान मित्र ने अनेक 'स्तव' और 'स्तोत्रो' की आठवी सदी म रचना कर डाली। 'मुद्रा', 'मडल', 'क्रिया' तथा 'चर्या' को महत्त्व प्राप्त हो गया।[22] साधना के लिए यौगिक क्रियाए मान्य हो गयी।[23] यह विश्वास किया जाने लगा कि 'धारिणी' मत्रो के पठन मनन से नाग, राक्षस, यक्ष, प्रेतात्मा और अभाग्य से बचा जा सकता है। जीवन मे सुख, शाति, पुनर्जन्म से छुटकारा पाकर इनसे 'बोधिचित्त' मिल सकता है।[24] तथागत बुद्ध, अवलोकितेश्वर तथा बोधिसत्व वैरोचन के रूप मे पुजने लगे। इन्ही के साथ तारा भी उनकी शक्ति बनकर पूजित हुई।[25] इनकी स्तुति मे स्तोत्रो की रचना की गयी। 'ओम मणि पद्म' के जाप की अनुशसा भक्त को की गयी।[26] तारा, लोचना, पढरवासिनी, मामाकी, समय तारा, सुतारा, श्वेता आदि नामो से भी लोकप्रिय हुई।[27]

वज्रयान

पूर्व मध्य युग के पहले ही महायान शाखा ने 'करुणा' और 'शून्यता' के सिद्धात विकसित कर लिए थे।[28] वज्रयानियो ने इन्हें ही 'प्रज्ञा' तथा 'उपाय' के नाम

दिये।[29] परतु वज्रयानियो ने 'शून्यता' को 'वज्र' मान लिया।[30] यह शून्य यान भी कहाया।[31] महासुखवाद के प्रवेश के बाद यह यान वज्रयान कहलाने लगा। अर्थात् वह यान जो वज्र के समान दुर्भेद्य, अचल और अनीश्वर हो।[32] साधक, साध्य और साधन तीनो 'वज्र' माने गये।[33] बुद्ध वज्रसत्व अथवा वज्रधर भगवान[34] कहलाये। उन्हे और उनकी शक्ति तारा का वैरोचन, रत्न सभव, अक्षोभ्य, अमिताभ, अमोघसिद्धि तथा वज्रधातेश्वरी, आर्य तारा, पाढरा माना गया।[35] यह उनका ध्यानी-बुद्ध रूप था। वज्रयानी भी मुद्रा, मत्र, मडल, मास और मत्स्य के पच प्रकारो मे विश्वास करते थे।[36] प्रज्ञा और 'उपाय' के मिलन से ही बोध-चित्त' पाया जा सकता है तथा बोध-चित्त व्यक्ति ही आगामी दस भूमियो को पार कर धर्ममेघ अथवा बोधिसत्व प्राप्त कर पाता है।[37] नर-नारी के समागम म जो आनदानुभूति मिलती है वही बोधचित्त क शून्य म मिलने से मिलती है।[38] वज्र-यान ने गुरु शिष्य परपरा को भी मान्यता दी। साधक द्वारा किसी सुदरी को महा-मुद्रा बनाकर बोधचित्त और निर्वाण की कामना न इसे रहस्यवादी बना दिया।[39] ध्यानी बुद्ध व उनकी शक्तियो की धूप दीप पुष्प, ध्यान योग आदि से पूजा ने उसे लौकिकता प्रदान कर दी।[40]

कालचक्रयान

दसवी सदी के आसपास वज्रयान न कालचक्रयान को जन्म दिया। यह वज्रयान से अलग बौद्ध दर्शन का स्वतत्र तात्रिक स्कूल था।[41] कालचक्रयानी, प्रज्ञा को काल की सज्ञा देते थे। चक्र को वे 'उपाय' मानते थे। अत कालचक्रयानी 'प्रज्ञा' 'उपाय' के सम्मिलन से बोध-चित्त की प्राप्ति सभव मानते थे।[42] वज्रयान तथा कालचक्र-यान मे अधिक भेद नही है। परतु कालचक्रयानी बुद्ध व उसकी शक्ति के अनेक रूपो के साथ डाकिनी आदि की उपासना, शाति के लिए मत्र, बलि, मडल, जादू-टोनो मे विश्वास रखा करते हैं।[43] वे समय अथवा काल के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उसे उन्होंने क्षण, घटिका, दिन, रात, सप्ताह, मास आदि मे विभाजित कर शरीर से सबधित कर दिया। शारीरिक वायु को योग द्वारा नियत्रित करने मे उनका विश्वास है।[44]

सहजयान

बगाल मे ही पाल वशी शासको के काल मे बौद्ध परपरा, विधि विधान, मत्रवाद आदि के विरुद्ध जिन नव बौद्धो न विद्रोह किया वे सहजयानी कहलाये। सहजयानी जीवन की नैसर्गिकता मे विश्वास करते थ।[45] उन्होने इसका उपयोग आत्मा व परमतत्त्व दोनो के लिए किया।[46] परतु कालातर मे मन-इद्रियो की माग के आगे सहजीये झुक गये। सहज-यान भी यद्यपि 'प्रज्ञा' 'करुणा' मे विश्वास करता था,

परतु वे चर्यापदो अथवा भक्ति दोहो को भी मान्यता देते थे । वे सुगध, ससार, महासुख और वज्रसत्व के समन्वय मे विश्वास करते थे ।[46A] वे योग के द्वारा शरीर को भी सबल और सशक्त बनाना चाहते थे, ताकि वे शरीर मे निहित शक्ति निर्माण चक्र को जागृत कर सकें ।[47] सहजियो ने उपवास, प्रार्थना, धार्मिक कृत्य[47A] की अपेक्षा मासिक अनुशासन पर अधिक बल दिया ।[47B] उन्होने मत्र तत्र की आलोचना की[47C] और जाति बधनो को तोडकर[47D] नाथ सप्रदाय की पृष्ठभूमि तैयार कर दी परतु वे इसमे सफलता न पा सके ।

इन सभी शाखाओ ने जब यौगिक साधना के लिए 'मुद्रा' अथवा नारी को सहभागी बना लिया तो बौद्ध धर्म की पवित्रता बनी न रह सकी । क्योकि वे 'उपाय प्रज्ञा' को पुरुष नारी के समन्वय के स्तर तक ले आय । इसने सेक्सो-योगिक अभ्यास की शुद्धता को भी नष्ट कर दिया । वे यह मानने लगे कि बुद्धत्व पाने के लिए साधक मुद्रा के साथ साथ साधना करना चाहिए । उनके अनुसार बुद्ध 'उपाय' के अवतार और गोपा 'प्रज्ञा' थी । महासुख' जो निर्वाण का ही पर्याय है गोपा-प्रज्ञा के सहवास से पाया जा सकता था ।[48] अत प्रज्ञा को युवती, भगवती, वज्रकन्या, बौद्ध तत्रो ने मान लिया । यहा तक कि नारी योनी भी प्रज्ञा ही मानी गयी ।[49] प्रज्ञा उपाय, पुरुष नारी और पद्म वज्र बन गये । सोलह वर्षीया सुदरी साधना का अनिवार्य अग मानी गयी ।[50] परिणामस्वरूप अत साधना बाह्य मुद्रा-साधना तक ही सीमित रह गयी । मुक्त यौन सबधो के पोषक, चक्र सवर आदि देवता, उनके मत्र के माध्यम से गुह्यसमाज एकत्र होने लगे, जहा स्त्री पुरुषो के मध्य मैथुन को धार्मिक मान्यता मिल गयी ।[51] इसने समाज और धर्म को कुत्सित बना दिया।

इतना सब होते हुए भी काल म कई बौद्ध दर्शनाचार्य हुए जिन्होने बौद्ध साहित्य के भडार म काफी अभिवृद्धि की । इनमे आठवी सदी के आचार्य शातरक्षित मुख्य थे । उन्होने तिब्बत मे बौद्धमत की नीव को पक्का किया था ।[52] अन्य विद्वानो मे आचार्य अगवज्र, पद्मवज्र इद्रभूति और पडित लक्ष्मीमकरा[53] थी । जहा एक ओर बौद्धधर्म की सहजयान आदि शाखाओ न विकृतियो को जन्म दिया वही आठवी सदी मे नया सुधारवादी आदोलन जन्मा जो सिद्ध सप्रदाय नाम से लोकप्रिय हुआ ।

सिद्ध सप्रदाय

बौद्ध धर्म ने एक करवट और बदली । आठवी शताब्दी के अतिम उत्तरार्द्ध मे नालदा विश्वविद्यालय के आचार्यद्वय शातरक्षित एव हरिभद्र के शिष्य भिक्षु राहुल-भद्र ने तत्कालीन धार्मिक भेद-भाव, जातिबधन, ऊच-नीच आदि के विरुद्ध विद्रोह किया । उसने सरहपाद नाम धारण कर एक निम्न वर्ग की लडकी को मुद्रा बनाकर उसके साथ रहना आरभ कर दिया।[54] शीघ्र ही लुईपाद और अन्य कई उनके शिष्य बन गये । यह आदोलन चल निकला और यह सिद्ध सप्रदाय कहलाया ।

सिद्धो का काल शुरू मे सहजयान का आरभिक काल था। सहजयानियो से एक कदम आगे बढकर इन्होंने वर्णाश्रम के बधनो के खोखलेपन का पर्दाफाश किया।[55] सरहपाद ने तो चाडालो के साथ भी भोजन-पान को शास्त्र-सम्मत माना।[56] परिणामस्वरूप हिंदू धर्म के कई वर्गों म यह काफी लोकप्रिय हुआ। 'प्रज्ञा-उपाय' के बौद्ध दार्शनिक सिद्धातो मे सिद्ध भी विश्वास करत थे।[57] परतु मुद्रा के लिए नीच जाति की स्त्री का उपयोग निषिद्ध नही मानते थे। ये अक्सर निम्न जातियो की लडकियो मे से ही अपनी मुद्राओ का चयन करते थे।[58] परतु सिद्ध आदोलन के सभी सिद्ध निम्न जातियो मे से न थे, जैसा कि कुछ विद्वानो[59] का विचार है। वरन वे देश की विभिन्न जातियो और भागो से आये थे। कर्नाटक के कन्हप्पा ब्राह्मण थे,[60] जुलाहे ततिया व लुईपाद उज्जैन के थे,[61] विनपाद, डोम्बी-पाद और देवकोट के उघारिया क्षत्रिय थे।[62] लुईपाद तो बग नरेश धर्मपाल के उच्चपदस्थ अधिकारी भी थे। इन सिद्धो की सख्या चौरासी थी।[63] ये मात्र बगाल तक ही सीमित न रहे वरन दोरिप्पा ने काची मे गुह्य क्रियाओ का प्रचार किया था।[64]

सिद्धो ने 'भाव' तथा 'निर्वाण' के लिए डोम्बी कन्या के सहवास का समर्थन किया, क्योकि उनके ससर्ग से ही 'सहज सुख' अथवा 'महासुख' पाया जा सकता है।[65] सिद्धो ने निम्न जाति के सभी वर्गों—चाडाल,[66] मातग,[67] शबरी[68] आदि को मुद्रा बनाने की अनुशसा की, क्योकि वे 'नैरात्म्य' व 'शून्यता' का प्रतीक हैं। वे 'महासुख का स्थान' हैं।[69] गुह्य साधना के योग्य वे ही हैं।[70]

सिद्धो ने पूरी तरह से निम्न वर्गों मे अपने कार्य का प्रसार किया। उन्होंने निर्वाण के द्वार निम्न जातियो के लिए खोल दिये। परतु मुद्रा के माध्यम से महासुख की साधना का दुरुपयोग हुआ। फलस्वरूप उसका प्रभाव भी सीमित ही रहा। वह वासना के भ्रमजाल म उलझ कर भटक गया। उच्च वर्णों के लोगो के द्वारा इसमे सम्मिलित होने के बाद भी वह सामाजिक धार्मिक प्रतिष्ठा न पा सका। सिद्ध एक प्रकार के स्वाधीन राजगीर (Free Masonry) थे।[70A]

पूर्व मध्य काल मे बौद्ध धर्म अपने अतिम चरण मे था। बगाल मे नालदा, ओदतपुरी,[71] देवी भेट, विक्रमपुरी (ढाका), पट्टिकेरक (कोमिल्ला) और पडित विहार (चटगाव) भी उल्लेखनीय थे।[72] बगाल नरेश धर्मपाल ने अपने नाम पर विक्रमशील विहार बनवाया था।[73] उसने सोमापुरी और ओदतपुरी विहार भी स्थापित किये थे।[74] हरिभद्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् उसके सरक्षण मे था।[75] बगाल के देवपाल और अन्य पालवशी नरेश बौद्ध समर्थक थे।[76] महीपाल प्रथम ने तो बोध-गया के विहार-स्तूपो की मरम्मत करायी थी।[77] इसी वश के महेद्रपाल (सन् 900 ई०) ने बौद्ध विहार का जीर्णोद्धार कराया था।[78] बगाल के ही दामोदर नामक एक ब्राह्मण ने बोध-गया मे बग नरेश लक्ष्मण सेन के राज्यकाल मे विहार

का निर्माण कराया था।[79]

काश्मीर मे भी बौद्ध धर्म के अवशेष बचे हुए थे। यदा-कदा वहा नये निर्माण-कारी काम भी बौद्धो द्वारा हो जाते थे। यद्यपि काश्मीर का कार्कोट व लोहार वश हिंदू धर्मानुयायी हो गया था। परतु धर्मसहिष्णता की नीति का पालन करते हुए नरेश ललितादित्य मुक्तापीड न चौरासी हजार प्रस्थ से कासे की आकाशव्यापी बुद्ध प्रतिमा का निर्माण कराया था।[80] वह मगध की एक बुद्ध प्रतिमा को भी काश्मीर ले गया जहा एक विहार मे उसे स्थापित किया था।[81] दसवी शताब्दी मे काश्मीरी बौद्ध विद्वान् धनपाल धर्म प्रचार हेतु चीन गया था।[82] ग्यारहवी सदी मे एक अन्य काश्मीरी श्रमण ने बोधिवृक्ष की शाखा चीनी सम्राट ने भेट की थी।[83] बोधिरुचि नामक एक अन्य बौद्ध दर्शनज्ञ ने भी सन् 693-713 ई० के मध्य चीन म भी काफी काम किया।[84] काश्मीर की अनेक नदियो, जिनमे वितस्ता प्रमुख है, के किनारे कई विहार थे।[85] काश्मीरी मत्री रिल्हण की पत्नी सुस्साला ने बौद्ध छात्रो के निवास हेतु कक्षो का निर्माण कराया था।[86]

मध्य देश मे, हर्ष की मृत्यु के बाद मे, यहा के बौद्ध तीर्थों की दशा ठीक न थी। गहडवाल शासक हिंदू थे, परतु वे बौद्धा के प्रति भी उदार थे। महाराज गोविंदचद्र की रानिया वसतादेवी व कुमारदेवी बौद्ध थी।[87] उनकी प्रसन्नता हेतु गोविंदचद्र ने शाक्य-भिक्षु-सघ को 6 ग्राम दान मे दिये थे।[87A] जयचद्र भी बौद्ध भिक्षु श्रीमित्र का बडा आदर करता था।[88] इसी काल मे कई चीनी बौद्ध यात्री भारत आये और उन्होन वहा इस क्षेत्र मे स्तूपो की स्थापना भी करायी थी।[89]

अरब यात्रिया के विवरणो मे भी बौद्धो का उल्लेख मिलता है। अलबरूनी उन्हे 'शमनिय' (श्रवण) कहता है।[90] उसने उन्हे लाल वस्त्रो मे विचरण करते हुए देखा था।[91] परतु उसे वे शायद अधिक प्रभावशाली न लगे। फिर भी सारनाथ,[92] जेतवन[93] आदि मे कुछ न कुछ कार्य चलता रहा। मालवा[94] व कालजर[95] मे भी बौद्धो को सरक्षण मिला। साची पूर्व मध्य युग म भी बौद्ध शिक्षा का केद्र बना रहा।[95A] उज्जैन के बौद्ध तत्रज्ञ लुईपा ने काफी नाम कमाया। धमनार, ग्यारसपुर मे भी स्तूप आदि बने।[95B]

जैन धर्म

जैन धर्म अत्यत प्राचीन है। वैदिक कालीन ऋषभदेव को जैन धर्म का प्रवर्तक माना जाता है।[96] ऋषभदेव के बाद 23 तीर्थंकर और हुए। ईसा पूर्व की छठी शताब्दी मे वर्द्धमान महावीर ने जो, बुद्ध के समसामयिक थे, इस धर्म को एक नयी गति-शीलता प्रदान की थी।[97] परतु शीघ्र ही ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी मे जैन धर्म दिगबर और श्वेतावर शाखाओ मे विभाजित हो गया।[98] यद्यपि अशोक-कनिष्क-हर्ष जैसे उत्साही समर्थक सम्राट जैन धर्म को नही मिले; परतु इसका प्रसार धीरे-

धीरे भारत के कई भागो मे होता रहा। स्थानीय सरक्षण उसे हमेशा ही मिला।

जैनाचार्य भद्रबाहु के दक्षिण की तरफ उन्मुख होते ही गुजरात मालवा और दक्षिण मे इस धर्म का प्रचार हुआ।[99] यह घटना ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी मे घटी थी।[100] धीरे-धीरे दक्षिण की एक तिहाई जनता जैन धर्मानुयायी हो गई।[101] विशेषता यह थी कि जैन धर्म मगध व उसके आसपास के भागो मे प्रभावहीन होता जा रहा था, जबकि गुप्त काल के पूर्व ही वह भारत के अन्य दूरस्थ स्थानो मे लोकप्रिय हो रहा था।[102] जैन धर्म पहले सीधे दक्षिण मे पहुचा। सन 800 से 1200 ई० के मध्य वह गुजरात आया।[103] इसमे सदेह नही कि पूर्व मध्य काल मे जैन धर्म पश्चिम भारत के कई प्रदेशो मे अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका था। विशेषकर वणिक वर्ग और कुछ राजघरानो द्वारा वह समर्थित था।[104] वैश्यो को उसकी अहिंसा और आचारमय जीवन ने अधिक प्रभावित किया।[105]

पूर्व मध्य युग मे जैन धर्म मे दार्शनिक व सैद्धातिक परिवर्तन नही हुए; न ही प्रमुख दो शाखाओ—दिगम्बर और श्वेताबर—के अलावा कोई नये समुदाय बने। परतु उसमे स्थानीय तत्वो का समावेश अवश्य ही हुआ। उसकी दोनो मुख्य शाखाए सघ, गण, कुल, शाखा और गच्छो मे अवश्य ही बट गई।[106] दसवी शताब्दी तक वह 84 गच्छो[106A] तथा श्वेतपट, पाडुभिक्षु, निर्ग्रन्थ,[106B] क्षपणक[106C] इत्यादि मे विभाजित हो गया।

बौद्ध और हिन्दू धर्म के प्रभाव के कारण जैनो ने भी तीर्थंकरो के नाम पर भव्य मदिरो का विशाल पैमाने पर निर्माण शुरू कर दिया था। जैन धर्म के आदर्शों के स्थान पर 'जिन पूजा' की शुरुआत हो गई।[107] इन तीर्थंकरो के मदिरो मे जैन देवी-देवताओ की मूर्तिया भी पूजा हेतु उत्कीर्ण की जाने लगी।[108] जैनो ने विद्या की देवी सरस्वती, धन की देवी लक्ष्मी और सिद्धि विनायक गणेश को भी अपना लिया।[109] इस प्रकार जैनो ने भी कर्मकाड, जिन-पूजा-भक्ति को मान्यता दे दी। उस युग और अन्य धर्मों की लोकमान्य प्रवृत्तियो का जैन धर्म पर यह प्रभाव था। महावीर ने जिन कर्मकाडो के विरोध मे धर्म सुधार किया था, अब वे ही कर्मकाड जैनो के दैनदिन कार्य बन गये। हिंदुओ के समान जैन भी जाति-प्रथा, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि मानने लगे।[110] इसने उन्हे हिंदुओ के और निकट ला दिया।

जैनो के दो वर्ग थे, गृहस्थ और सन्यासी। इनमे सन्यासियो का आचरण पवित्रता, त्याग, निस्पृहता आदि से भरा था। इसने समाज मे उन्हे आदरणीय व श्रद्धेय स्थान दिला दिया।[111] परतु सभी जैन सन्यासियो का जीवन आदर्श न था। अनेक आनद मनाने के लिए भी साधु बन गये थे।[112] कुल मिलाकर जैन साधुओ का नैतिक स्तर अच्छा था। इसीलिए वे समाज व शासन मे लोकप्रिय व पूज्य थे। उन्होने वणिक व समृद्ध वर्गों को चार दानो—ज्ञानदान, अन्नदान, औषधिदान तथा उपाश्रय निर्माण हेतु दान या शरणस्थलो की स्थापनाऐ—का महत्व समझाया,

इस हेतु उन्हें प्रेरित किया।[113] जबकि वे स्वय के लिये कुछ भी नहीं स्वीकारते थे। परिणामस्वरूप पूर्व मध्य युग मे देश के कई भागो—विशेषकर पश्चिमी भागो—राजस्थान, मालवा, गुजरात मे अनेक जिनालय व उपाश्रय बनाये गये।[114] अन्य धर्मावलबियो के सदृश जैनो ने भी 'ओम णमो अरिहन्ताणम्', 'महावीराय नम' तथा 'अहन', 'अर्हत' के मन्त्रो के जाप मे ही अपने मोक्ष का साधन इस काल मे ढूढ निकाला।[115] जैनो की विद्या सबधी ख्याति-गरिमा ने अनेक ब्राह्मणो को जैन धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया।[116]

पूर्व मध्य युग मे गुजरात जैनो का गढ था। इस युग मे दक्षिण म जैनों को शैवो की कडी प्रतिद्वद्विता का सामना करना पडा। शायद इसीलिए उत्पीडन से त्रस्त होकर कुछ जैन गुजरात व अन्य, राजस्थान मे आ गये होंगे।[117] गुजरात का चालुक्य वशी पूरी तरह से जैन धर्म के प्रति उदार था। ऐसा कहा जाता है कि इस वश के सस्थापक मूलराज ने अन्हलवाड पाटन मे मूलवसिका' नामक जैन मदिर का निर्माण कराया था।[118] अन्हलवाड के प्रसिद्ध प्राग्वात जैन घराने का सज्जन नामक विद्वान मूलराज के 'धर्म स्थानक गोष्ठिक' पद पर कार्यरत था।[119] हरिभद्र ने आठवी शताब्दी मे जैन धर्म के प्रचार हेतु गुजरात मे विशेष प्रयत्न किये।[120] चालुक्य काल मे ही देवगढ मे तीर्थंकर शांतिनाथ के नाम पर जैन मदिर बनवाया गया। अधिकाश जैन मदिरो का प्रबध गोष्ठियो द्वारा होता था।[121] हस्तकुडीवशी राष्ट्रकूट नरेश विदग्धराज ने भी राजस्थान और गुजरात मे कई जैन मदिरो का निर्माण कराया। मूलराज के उत्तराधिकारी चामुडराज ने भी 'जिन-भवन', 'जिन-बिम्ब' और 'जिन पूजा' हेतु दान दिया था।[122] दुर्लभराज के दरबार मे सन 1024 ई० मे जिनेश्वर और चैत्यवासियो म शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमे जिनेश्वर ने चैत्यवासियो को हराया। दुर्लभराज ने जैन धर्म के प्रति श्रद्धावनत[123] हो जिनेश्वर को 'खरतर' (तीव्र बुद्धि) की उपाधि से विभूषित किया।[124]

अन्हलवाड पाटन के एक प्रसिद्ध व्यापारी निम्न ने ऋषभदेव के मदिर का निर्माण कराया था।[125] वत्सराज प्रतीहार ने कन्नौज तथा ग्वालियर मे महावीर स्वामी की भव्य मूर्तियों की स्थापना की थी। जैन प्रबध मे उन्हे अम्मा' नाम से संबोधित किया गया।[126] गिरनार, श्वेताबर जनो का मुख्य तीर्थ था। सपादलक्ष, त्रिभुवनगिरी, अर्बुदाचल आदि मे जैन अच्छी सख्या मे फैले थे। भीम प्रथम के शासन काल मे उसके दडनायक विमल ने वर्द्धमान सूरी की प्रेरणा से आबू म सन 1031 ई० मे आदिनाथ का प्रसिद्ध जैन मदिर बनवाया।[127] विमल को अपने शासक का उदार सरक्षण एव स्वीकृति निश्चय ही प्राप्त होगी। जयसिह सिद्धराज और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल चालुक्यो के काल म जैन धर्म गुजरात मे अधिक प्रभावशाली हो गया। सिद्धराज ने सोमनाथ से लौटते वक्त नेमीनाथ

मदिर के दर्शन किये[128] तथा शत्रुजय तीर्थ को आर्थिक सहायता दी।[129] उसने सिद्धपुर मे महावीर चैत्य भी बनवाया।[130]

कुमारपाल तो आचार्य हेमचद्र की विद्वत्ता से प्रभावित हो एक प्रकार से जैन ही हो गया था।[131] पाटन मे उसी के काल मे पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई।[132] उसने अनेक जिनालयो की स्थापना की, जिनमे तारगा पहाडी का अजीत-नाथ मदिर काफी लोकप्रिय हुआ।[133] सन 1108 ई० मे खवात मे चितामणि पार्श्वनाथ के मदिर का निर्माण हुआ था।[134]

पजाब और उत्तरप्रदेश मे भी जैन-मदिर बनवाये गये होंगे, परतु इस युग के मुसलमानी हमलावरो की ध्वस-नीति के कारण वे लुप्त और नष्ट हो गये होंगे।[135]

राजस्थान म भी जैनो का अच्छा प्रभाव था। आबू और कुभारिया के मदिर इसके साक्षी हैं। कई जैन राजस्थान के राजवशो की सेवा मे थे। इन्होने भी तीर्थंकरो की पूजा हेतु जिनालयो का निर्माण कराया। अधिकारीद्वय विमल और तेजपाल ने तीर्थंकरा की पूजा हेतु भव्य मदिर बनवाए। कई जैनाचार्यों ने, जैन पट्टावलियो के अनुसार मालवा से राजस्थान जाकर धर्म का प्रचार किया। उज्जैन के जैनाचार्य माघचद्र द्वितीय ने बरन (कोटा-राजस्थान) को अपना केंद्र बनाया।[135A] कुछ जैनाचार्य चित्तौड भी जा बसे।[135B] इनकी एक शाखा बघेरा भी जा बसी।[135C]

परमार काल मे मालवा भी जैन धर्म का केंद्र था। मालवा-निमाड के धार, *माडव, नालछा, उज्जैन, ऊन आदि मे कई जैन-परिवार बसे हुए थे।* दसवी सदी में धार, उज्जैन, ऊन तथा मालवा के कई जैनो ने ऋषभदेव की पूजा हेतु शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की।[136] मालवा के जैनाचार्यों म अमितगति, महासेन, धनपाल और धनेश्वर को परमार नरेश वाक्पति मुज का सरक्षण मिला था। नरेश भोज-देव ने धनपाल को 'सरस्वती' की उपाधि प्रदान की थी। उसने 'तिलक मजरी' आदि का प्रणयन किया था।[136A] मालवा के जैन कई गच्छो मे विभाजित थे।[136B] मालवा के जैन, तीर्थंकरो के नाम पर उत्सवो और पर्वों का आयोजन भी करते थे। तीर्थंकर नेमीनाथ के नाम पर सन 1134 म एक उत्सव का आयोजन किया गया था।[137] परमार नरेश नरवर्मदेव (सन 1133 ई०) के काल मे जैन धर्म मालवा मे काफी फला-फूला। नरवर्मदेव आचार्य वल्लभसूरि का बडा आदर करता था।[137A] मालवा मे शास्त्रार्थ की परपरा थी। उज्जैन म शैवाचार्य विद्या शिववादी और जैनाचार्य रत्नसूरि के मध्य शास्त्रार्थ हुआ था। ग्यारहवी सदी में ऊन मे जैनों ने कई मदिरो का निर्माण कराया था।[137B] भोजपुर मे भी पार्श्वनाथ का जैन देवालय *चिल्लन नामक वैश्य ने बनवाया था।*[139]

बुदेलखड के चदेल शासक भी जैनो के प्रति बडे उदार थे। खजुराहो मे हिन्दू धर्म के देवी देवताओ के साथ ही चदेलेश धग के राज्य काल (सन 950 970 ई०)

मे पार्श्वनाथ के मदिर का निर्माण कराया गया।[138A] इस क्षेत्र के जैन धर्म की यह विशेषता थी कि ब्राह्मण धर्म की छत्रछाया मे सिमटकर विकसित हो रहा था।[139] महोवा और खजुराहो के जैन मदिरो पर अनेक हिंदू देव प्रतिमाए उत्कीर्ण है। इनम परशुराम, राम-सीता, कृष्णलीला, हनुमान, शिव, नवग्रह, दिग्पाल आदि उल्लेखनीय है।[139A]

दक्षिण भारत मे हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के कारण जैनो को धक्का पहुचा। परतु वहा के नरेशा, वैश्यो और कृषको के वर्गों मे इसका प्रसार होता रहा।[139B] राष्ट्रकूट राज अमोघवर्ष का झुकाव जैना की ओर था। जिनसेन नामक आचार्य ने उसे अधिक प्रभाविव किया था। महावीराचार्य के अनुसार वह जैनो के स्याद्‌वाद[139C] मे विश्वास करता था। उसने जैन-विद्वानो के सत्सग से प्रभावित होकर 'प्रसन्नोत्तरान मालिका' नामक जैन ग्रथ का प्रणयन किया।[140] गगाशासक मारसिंह अजीतसेन जैन आचार्य का शिष्य व पक्का जैन था।[141] अमोघवर्ष का पुत्र कृष्ण द्वितीय आचार्य गुणभद्र का शिष्य था। उन्ही की प्रेरणा पर उसने मूलगुड के एक जैनालय को दान दिया था।[142] इसी वश के इन्द्र तृतीय ने अर्हत शातिदेव के हेतु स्नानपीठिका बनवाई।[143] कर्नाटक मे दिगम्बर जैन मतावलम्बियो की सख्या अच्छी खासी थी।[144]

चालुक्य नरेशो विजयादित्य (सन 696-733 ई०) और विक्रमादित्य के दरबार मे जैन पडितो को सरक्षण प्राप्त था।[145] विजयादित्य की बहिन कुकुम महादेवी ने लक्ष्मीश्वर मे एक जैन मदिर की स्थापना की थी।[146] होयसाल नरेश विष्णुवर्धन प्रारभ मे जैन था, बाद म वह रामानुज से प्रभावित हो वैष्णव बना।[147] पश्चिम चालुक्यो मे तैलप, सत्याश्रय, जर्यासिह द्वितीय, सोमेश्वर प्रथम व द्वितीत तथा विक्रमादित्य षष्ठ ने जैनो के प्रति उदारता दिखायी थी।[148] विष्णुवर्धन होयसाल यद्यपि वैष्णव बन गया था फिर भी उसने जैन सत श्रीपाल त्रैवेद्यदेव के प्रति सम्मान प्रगट करत हुए सन 1125 ई० मे जिनालय बनवाया।[149] उसकी महारानी शातलदेवी जैन धर्म की पक्की समर्थक थी।[150] श्रमणबेलगोला पूर्व मध्य युग म भी दक्षिण का प्रमुख जैन तीर्थ बना रहा जहा की होयसाल नरेश नरसिंह प्रथम ने यात्रा की।[151] दसवी शताब्दी के मध्य मे अम्म द्वितीय ने दो जिनालयो का निर्माण कराया। इनमे भोजनालय साथ थे और यहा जैन श्रमण भोजन प्राप्त करते थे।[152] दक्षिण के कदब शासक भी जैनो के सरक्षक थ।[153]

पूर्व मध्य युग मे जैन साधुओ ने अपन धर्म और दर्शन के विकास एव प्रचार के लिए सतत प्रयत्न किए। उन्होने निरालस्यता से अपने धर्म के निखार के लिए कार्य किया। उनकी सबसे बडी विशेषता, स्थानीय लोकभाषा के विकास मे उनका योगदान था। दक्षिण मे जहा उन्होंने कन्नड, तमिल, तेलगू आदि लोक-भाषाओ को अपनाया, वही गुजरात राजस्थान, मालवा म अपभ्रश म साहित्य का निर्माण

किया। संस्कृत को भी उन्होंने दुर्लक्षित नही किया। इस काल के प्रसिद्ध जैनाचार्यों मे सहस्रकीर्ति, श्रुतकीर्ति, श्रीकीर्ति, सोमदेव और हेमचद्र गुजरात मे सर्वमान्य थे।[154] शीलगुणश्री अपने जैन प्रबधो की रचना के कारण ख्यात हुए।[155] अकलक, हरिभद्र और विद्यानद ने भी काफी ख्याति पायी। मालवा के धनपाल, शातिसूरि और धनेश्वर सूरि परमार-राजसभा की शोभा थे।[156] दक्षिण मे रन्न ने कन्नड को समृद्ध किया और वर्धमानदेव, श्रीपाल त्रैविद्यादेव का योगदान भी दक्षिणी साहित्य में स्पृहणीय माना गया।[157]

अन्य देवी-देवताओ का पूजन

सूर्य-पूजन : पिछले अध्यायो मे वर्णित शैव, शाक्त और वैष्णव मतो के मुख्य देवी-देवताओ के अलावा भी अन्य देवी-देवताओ की उपासना समाज मे की जाती थी। इनमे सूर्य पूजन का विशेष स्थान था। सूर्य-पूजको की दृष्टि मे सूर्य की सत्ता सर्वोपरि थी। वे कार्यसिद्धि के कारण और जगत्नियता थे। सूर्य पूजा की परपरा भारत मे अत्यत प्राचीन है। सूर्य आदित्य और ग्रह के रूप मे पूजित थे।[158] वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्य काल तक सूर्य-उपासना का सिलसिला बराबर जारी रहा। मुलतान मे सूर्य का एक प्रसिद्ध मदिर था, जहा देश के हर कोने से दर्शनार्थी आते थे। मूलस्थानपुर की सूर्य-मूर्ति स्वर्ण की थी। वह अनेक बहुमूल्य धातुओ से अलकृत थी। मदिर मे हर समय विभिन्न देशो के भक्त उपस्थित रहते थे। महिलाए नृत्य, सगीत, धूप-दीप, पुष्प, गध आदि से सूर्य-देव की पूजा करती थी।[159]

अरब यात्रियो ने भी सूर्य-पूजा का उल्लेख किया है। मुल्तान के सूर्य-मदिर के विषय मे अलबीरूनी लिखता है: 'सूर्य को अर्पित की गई उनकी सबसे बडी मूर्ति आदित्य कहलाती थी। वह लकडी की थी और चमडे से ढकी थी। उसकी दोनो आखो मे दो लाल पदम राग थे। कहा जाता है कि वह पिछले 'कृत युग' मे बनी।[160] अलकाजविनी[161] और मुकद्दसी[162] भी सूर्योपासना का समर्थन करते हैं।'

एलोरा की गुफा[163] और खजुराहो के मदिर[164] मे सूर्य की मूर्तिया पूजन हेतु उत्कीर्ण की गई थी। खजुराहो मे तो सूर्य की अनेक आकार-प्रकार की कई प्रतिमाए मिलती है।[165] सन 1026-27 ई० मे गुजरात मे मोढेरा मे सूर्य-मदिर का पूजन हेतु निर्माण किया गया।[166] उडीसा का कोणार्क का सूर्य मदिर पूर्वी भारत मे सूर्य-पूजन का समर्थन करता है।[167] मध्य भारत मे भी सूर्य पूजा हेतु मन्खेरा मे प्रतीहारो ने मदिर बनवाया था।[168] ग्वालियर, मदसौर और राजस्थान के चित्तौड तथा ओसिया के सूर्य मदिर इस क्षेत्र मे सूर्य-पूजा का समर्थन करते हैं।

सूर्य की उपासना तरुणादित्य देव,[169] इन्द्रादित्य देव,[170] गगादित्य[171] लोकार्क[172] आदि नामो से की जाती थी। गुजरात मे सूर्योपासना का चलन था।[173]

दक्षिण भारत मे भी सूर्य-पूजा की जाती थी। राष्ट्रकूट शासन सूर्य देवता के उपासक थे।[174] करगद्रि के एक मदिर मे विष्णु-शकर-भास्कर (सूर्य) की पूजा सम्मिलित रूप से होती थी।[175] दक्षिण के ही पापानाथ और दुर्गा मदिरो में भी सभवतया आदित्य-पूजन का आयोजन किया जाता था।[176] भारत मे सूर्य पूजन को लोकप्रिय बनाने मे मग, भोजक और शकद्वीपी ब्राह्मणो का हाथ मुख्य रूप से था।[177] प्रतीहार नरेश रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त थे।[177A] गहडवाल वश भी सूर्योपासना का आदर करता था। नरेश जयचद ने लोकार्क भगवान के नाम पर आधा गाव दान मे दिया था।[177B]

गणेश पूजन पूर्व मध्य युग मे बने भव्य मदिरो मे उत्कीर्ण देवी-देवताओ का अध्ययन यह स्पष्ट दर्शाता है कि अन्य देवो के मानने वाले मूर्ति-पूजक छोटे सप्रदाय भी थे। सूर्य के बाद गणेश-पूजा[178] का भी समाज मे प्रचलन था। गणेश को पचायतनदेवो मे सम्मिलित कर लिया गया था।[178A]

वेदो मे गणपति 'ब्रह्मणस्पति' नाम से जाने जाते थे।[178B] ब्रह्मणस्पति के मत्रो मे 'गणपति' शब्द विशेष रूप से प्रयुक्त किया गया था।[178C] वे 'महाहस्ती', 'एक-दन्त', 'वक्रतुण्ड' और 'दन्ती' नाम से भी विख्यात थे।[178D] वैसे गणपति का अर्थ गणो या समुदायो का स्वामी है। रुद्र से सबधित 'मरुतो' के स्वामी गणपति हैं। शतरुद्री मे उन्हें 'गणपति' और 'सेनानी' कहा गया है। उनके अन्य नामो मे 'गणेश' और 'विनायक' भी व्यवहृत हैं। कालातर म वे प्रथम देवता बने और अन्य देवो के साथ उनका उल्लेख होने लगा।[178E] वे अनिष्ट के नाशक 'शाल सकट', 'कूष्माड राजपुत्र', 'उस्मीत' और 'देव-यजन' है।[178F]

कार्तिकेय और गणेश दोनो शिव पार्वती के पुत्र थे। परतु कार्तिकेय की अपेक्षा गणेश अधिक जनप्रिय देवता थे।[179] कार्तिकेय का प्रभाव, गुप्तकाल की तुलना मे पूर्व मध्य युग मे कम हो गया था। दक्षिण मे कार्तिकेय महासेन, मुरुग, वेलायुध नाम से पूजित थे।[180]

आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे एलोरा की दो गुफाओ मे गणपति का चित्रण किया गया।[181] राजस्थान में गणपति की उपासना 'ओम विनायकायनम्' करके की जाती थी। मूर्ति बनाकर भी उनकी पूजा होती थी।[182] पूर्व मध्ययुग मे गणेश सप्रदाय के छह भेद हो गये। ये महागणपति, हरिद्रा गणपति, स्वर्ण गणपति, सतान गाणपत्य, नवनीत तथा उन्मत्त-उच्छिष्ट कहलाते थे। ये गणपति की विभिन्न रूपो मे उपासना करते थे।[183]

गणेश, पचानन,[184] लबोदर, सिद्धि विनायक,[185] गजानन, बाल गणपति[186] आदि नामो से पूजित थे।[187] कार्यसिद्धि देव होने के कारण बौद्धो जैनो ने भी पूर्व मध्ययुग मे उन्हे अपना लिया।[188] गुर्जर-प्रतीहार राज्य-सीमा मे विनायक गणेश नाम से पूजित थे।[189] बुदेलखड की जनता और वहा का चदेल राजवश भी गणेश

का उपासक था। खजुराहो के देव मदिरो मे गणेश की विभिन्न आसनो और मुद्राओ की अनेक मूर्तिया उत्कीर्ण की गई। इनमे से द्विभुज से लेकर दस भुजाओ तक की है।[190] गुजरात मे भी गणेश के भक्त थे।[191] गणेश, शिव-परिवार स सबधित होने से भारत के अनार्यों के उपास्य देवता माने गये।[192] परतु पूर्व मध्य युग म कल्याण के देवता के रूप मे वे भारतीय समाज मे अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो गये थे।

नवग्रह-पूजन : समृद्धि, शाति, वृष्टि (कृषि के लिए) दीर्घायु, पुष्टि एव अम्मार (शत्रु-विनाश) की कामना हेतु विभिन्न धातुओ से निर्मित (स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि) अथवा सुगधित लेप द्वारा पटलिखित नवग्रह-प्रतिमाओ के पूजन का विधान स्मृति-ग्रथो म मिलता है।[193] पुराण और अन्य शास्त्र भी इसका समर्थन करते है।[194] अतएव पूर्व मध्य युग के पहले से ही नवग्रहो की शाति का विधान धर्म व्यवस्था मे था।[194A] भारत के विभिन्न भागो मे नवग्रह-पूजा-परपरा सनातन से चली आ रही थी।[195]

नवग्रहो मे सूर्य, चद्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की ही गणना की जाती थी। इन नवग्रहो की शाति 'स्वस्तयन' औ 'ग्रहयाग' के लिए होती थी।[196] खजुराहो, उडीसा के भुवनेश्वर और बगाल के मदिरो मे नवग्रह पट्ट स्पष्ट रूप से उत्कीर्ण मिलते हैं।[197] दक्षिण भारत मे भी नवग्रह-पूजा का प्रचार था। वहा के मदिरो मे इन्हे उत्कीर्ण किया गया।[198] अत पूर्व मध्य युग मे नवग्रहो की पूजा को अपना लिया गया था।

अष्ट दिक्पाल . पौराणिक देवशास्त्र के अनुसार विश्व की आठ दिशाएँ— पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान्य, आग्नेय, नैऋत्य एव वायव्य—आठ सरक्षित देवताओ द्वारा शासित हैं। इन्हें दिक्पाल या लोकपाल कहा गया है। दिक्पालो की परपरा वैदिक काल से चली आ रही है। खजुराहो मे प्राप्त अष्ट दिक्पालो की प्रतिमाओ के आधार पर यह सहज ही मान लिया जा सकता है कि पूर्व मध्य युग मे भी ये पूजनीय थे।[199] इनकी पूजन परपरा भी प्राचीन थी। वैदिक साहित्य व सहिता मे इनका उल्लेख मिलता है।[200] परंतु इनमे इद्र, अग्नि, यम, निऋँति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान को सामान्यतया मान लिया गया था। भुवनेश्वर के मदिरो मे भी इन्हे उत्कीर्ण किया गया। अतएव इनकी पूजा हिंदू धर्म का अग बन गयी। गग कालीन मदिरो मे भी दिक्पाल पूजित थे।[201]

हनुमान-पूजा . पूर्व मध्य युग मे विष्णु के राम अवतार से सबधित हनुमान की पूजा का भी प्रचलन हुआ, क्योकि पवनपुत्र हनुमान राम के भक्त, सहायक, दूत थे। आर्यो ने उन्ही की सहायता से विजय पायी थी। अत कृतज्ञता हेतु उनको पूजने लगे।[202] चदेलराज पृथ्वी वर्मा के अनेक सिक्को के पृष्ठ भाग पर हनुमान उत्कीर्ण थे। यह उनके प्रति भक्ति का ही ज्ञापन था।[203] खजुराहो मे हनुमान का मूर्तीकरण कर उनकी पूजा स्वतत्र रूप मे की जाती थी।[204]

बल्लालवशीय ब्राह्मणो ने एक जैन मदिर को भूमि दान मे दी थी।[241] पूर्व मध्ययुग मे बने भव्य मदिर मठ-जिनालय इस दान-प्रथा का ही परिणाम थे। सोमनाथ के मदिर को 10,000 ग्राम दान मे मिले हुए थे।[242] ग्यारहवी सदी मे सुलतान महमूद गजनवी भारतीय मदिरो को दान मे मिली लाखो की सपत्ति उत्तर भारत से लूट ले गया।[243]

तीर्थयात्राए धार्मिक जीवन मे धर्मयात्राओ की दृष्टि से तीर्थयात्राओ को बहुत ऊचा ठहराया गया। पुरातन युग से ही तीर्थयात्राओ और तीर्थस्थलो का धार्मिक महत्त्व स्वीकारा गया। सामान्यतया धर्मप्राण जनता इन तीर्थों की यात्रा करती थी। क्योकि इन स्थानो के दर्शन को ही लोग मोक्ष का साधन मानते थे। ऐसा विश्वास था कि पवित्रता के जिन स्थलो से बुद्धि उत्कृष्ट होती है वे बहुत ही मूल्यवान माने जाते है।[244] पूर्व मध्य युग मे भी तीर्थस्थानो का महत्त्व यथावत था। तीर्थ पवित्र नदियों के तट पर अवस्थित थे। वहा किसी प्रसिद्ध देवी देवता का मदिर रहता था। हिंदुओ के लिए तीर्थयात्राए वाछनीय ही नही वरन् अनुमत और श्लाघ्य हैं। एक मनुष्य पवित्र स्थान के लिए, किसी महत्त्वपूर्ण पूजनीय मूर्ति के लिए अथवा कुछ पवित्र नदियो के लिए चल पडता है। उनमे वह पूजन विधि सपन्न करता है। व्रत रख ब्राह्मणो-पुरोहितो तथा अन्यो को दान देता है व सिर मुडाकर घर लौटता है।[245] यह सब पूर्वजो के श्राद्ध आदि के निमित्त भी किया जाता था।

तीर्थों मे वाराणसी अथवा काशी का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। वह ब्रह्मा की बनायी दूसरी अमरावती तथा नदनवन मानी गयी, जहा मोक्षदायी गगा तथा बडे बडे विद्वान् निवास करते थे।[246] काशी शिक्षा विशेषकर सस्कृत ज्ञान का बडा भारी भारत-विख्यात केंद्र था। स्वय शकराचार्य ने भी वहा की यात्रा विशेष अध्ययन हेतु की थी।[246A] वह पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट मुक्ति क्षेत्र थी।[247] यहा मरने पर कैवल्य प्राप्त होता था। इसे 'काशी लाभ' भी कहा गया। अत धर्मप्राण लोग शरीरात तक वहा रहना चाहते थे ताकि मृत्यु के बाद उन्हे उत्तम पुरस्कार मिले। वह हिंदुओ का काबा था।[248]

स्थाणीश्वर भी महत्त्वपूर्ण तीर्थ था। वह भारत और दुष्टो के विनाश के युद्धो मे वासुदेव के पराक्रम का रगमच होने से लोग उस स्थान की यात्रा[249] करते थे। तानेशर (थानेश्वर) अथवा कुरुक्षेत्र का महाभारत काल से ही महत्त्व था।[250] यहा लोग दान आदि करते थे, क्योकि इसके लिए यह उपयुक्त स्थान था।[251] पूर्व मध्य युगीन विद्वानो[252] ने भी पुराणो[253] के आधार पर इसे पवित्र तीर्थ निरूपित किया था।

कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा भी अत्यत पवित्र स्थल के रूप मे वैष्णवो के मध्य विशेष स्थान रखती थी। पद्म[254] एव वराह[255] पुराणो ने भी इसके महत्त्व का

प्रतिपादन किया। पूर्व मध्य युग मे यहा अनेको भव्य मदिर थे।[255A] अलबीरूनी भी माहुर (मथुरा) को ब्राह्मणो से भरा तीर्थ एव वासुदेव की जन्मस्थली निरूपित करता है।[255B]

पूर्व मध्य युग मे प्रसिद्ध सरोवरो ने भी तीर्थों की ख्याति पा ली थी। अलबीरूनी लिखता है, 'तालाब विशेषकर पवित्रता के लिए इस कारण प्रसिद्ध हो जाते हैं कि या तो वहा कोई महत्वपूर्ण घटना घटित हुई या पवित्र ग्रथो (धर्मग्रथो) अथवा परपरा से उनका सबध है।[256] मुलतान अथवा मूलस्थान अपने सूर्य कुड[257] और सूर्य मदिर के कारण ही पवित्र तीर्थ था, जहा भारत भर से हजारो की सख्या मे भक्त जाते थे।[258] सूर्य-कुड मे हिंदू स्नान करत थ।[259] इस प्रकार के अनेक सरोवर-तालाब भारत भर मे भारतीयो द्वारा निर्मित किये गये थे। जहा वे विशिष्ट पर्वों, उत्सवो पर स्नानार्थ जाया करते थे।[260]

सोमनाथ प्रभासपट्टन भी भारत की धर्मप्राण जनता की श्रद्धा-भक्ति का अनुपम तीर्थ माना जाता था। वहा काश्मीर से पुष्पो[261] टोकरी और गगाजल[262] प्रतिदिन पूजार्थ लाया जाता था। प्रतिदिन हजारो की सख्या मे तीर्थयात्रा हेतु भक्तजन आते थे।[263]

भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंग, भारत के प्रमुख तीर्थ मान लिए गये थे।[264] वैसे स्कद पुराण भारत मे स्थित 68 शिवलिगो की पूजा का विवरण देता है।[264A] इनमे सेतुवध, रामेश्वरम्, त्र्यबकेश्वर, केदारनाथ आदि थे। अयोध्या, काशी, काची, मथुरा, अवतिका, पुरी, द्वारावती आदि मोक्षदायिनी नगरिया[265] थी अत तीर्थयात्री अवश्य ही वहा जात थे।

काश्मीर अपने सस्कृत शिक्षण, सौदर्य और शारदा मदिर[266] के लिए अत्यत प्रसिद्ध था। अत सुदूरवर्ती भारतीय वहा की यात्रा करते थे।[267]

मालवा मे महाकालेश्वर के कारण उज्जयिनी और निमाड मे ओकारेश्वर मान्धाता जो नर्मदा के तट पर था, अत्यत ही पवित्र तीर्थस्थानो मे गिने जाते थे।[268] ओकारेश्वर मे दर्शनज्ञ शकर ने गोविंद भगवत्पाद से अद्वैत की शिक्षा ग्रहण की थी।[269] प्रयाग[270] अपने सगम—गगा, यमुना, सरस्वती—तथा गया[270A] अपने श्राद्ध पक्ष के कारण प्रसिद्ध था। गगा भारत की प्रसिद्धतम धार्मिक नदी थी और तीर्थयात्री गगास्नान हेतु जाते रहते थे जो कि 'गगा जाना' (गगा यात्री)[271] कहलाते थे। धर्म प्रिय लोग गगा किनारे प्राण त्यागना श्रेष्ठ मानते थे, क्योकि वह सभी पापो से मुक्त करती थी। जीवन से परिश्रात व्यक्ति गगा मे प्राण-विसर्जन करना पुण्य मानते थे।[272] हरिद्वार अथवा गगाद्वार भी तीर्थ था। जहा दूरस्थ प्रदेशो से सैकडो-हजारो तीर्थयात्री आकर गगा स्नान कर दान पुण्य करते थे।[273] अत तीर्थयात्राओ ने धार्मिक जीवन मे स्थायी जगह बना ली थी। इनको जाने वाले तीर्थयात्री सर्व कर्म-पीडा विनिर्मुक्त हो जाते थे ऐसी धार्मिक मान्यता थी।[274]

त्योहार-उत्सव-मेले-उपवास : गुप्त युग तक पुराणो का लेखन, सकलन और सपादन पूरा हो गया था। पुराणो और अन्य धर्म साहित्य ने अनेक धार्मिक कृत्यो, त्योहारो, उत्सव, मेले, उपवास का निर्धारण कर दिया। इन सबको धार्मिक परिवेश व दर्जा मिला था। विभिन्न देवी देवताओ तथा ग्रहो से सबधित कथात्मक आकलन कर निश्चित तिथियो पर त्योहारो मेलो-उपवासो का आयोजन किया जाने लगा था। इन तिथियो पर समारोहपूर्वक उत्सव-उपवास प्रतिवर्ष मनाये जाने लगे। इन्हे धार्मिक श्रद्धा-भक्ति से प्रत्येक मनुष्य मनाता था। यद्यपि सभी पर्वों मे स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते थे, परतु कुछ उत्सव मात्र बच्चो व स्त्रियो के लिए ही होते थे।[275]

वर्ष मास मे और मास सप्ताहो मे विभाजित कर दिये गये थे। इन पर भी धार्मिक आवरण चढा दिया गया।[276] प्रत्येक माह मे भारतीय कोई न कोई धार्मिक पर्व मनाते ही थे। इन दिनो व माहो के नाम नक्षत्रो और देवताओ पर आधारित थे। ये ही इनके स्वामी निरूपित हुए। चैत्र मास के छठे दिन लोग सूर्य-पूजन उत्सव मनाते थे। इस दिन वे सूर्य-पूजा कर दान देते थे।[277] 'हिंडोला-उत्सव' भी इसी माह मे मनाया जाता था।[278] इसके अतर्गत विष्णु मदिर मे उनकी मूर्ति को झूले मे झुलाते थे। गुजरात मे शिव मूर्ति का डोलोत्सव मनाया जाता था।[279] चैत्र पूर्णिमा के वसतोसव पर नारिया सुदर वस्त्राभूषण धारण कर भेंट उपहार पाती थी।[280]

वैशाख मास मे गौरी-तृतीया का पर्व विशेषकर औरतो द्वारा मनाया जाता था। गौरी-पूजन के साथ ही कथा-वार्ता और धूप दीप से पूजन कर भोजन ग्रहण किया जाता था।[281] ज्यष्ठ मास मे पूर्णिमा को वट-साविश्री का त्योहार स्त्रिया मनाती थी। वे इस दिन वट वृक्ष का पूजन कर कथा वार्ता सुन, फलो का दान देती थी। ऐसी मान्यता थी कि इस व्रत के करने से नारिया वैधव्य से बचती है।[282] आज भी महिलाए इस उत्सव को श्रद्धापूर्वक मनाती हैं।

गणेश-उत्सव भी काफी लोकप्रिय था। लोग गणेश-मूर्ति की स्थापना कर उसका पूजन करते थे। यह आषाढ की चतुर्थी के दिन आयोजित किया जाता था।[283] इसके एक दिन पूर्व हरताली तीज अथवा गौरी पूजन का व्रत नारिया रखती थी।[284] देवशयनी एकादशी का उपवास भी धार्मिक लोग करते थे। विष्णु के नाम पर यह व्रत रखा जाता जा। लोगो मे ऐसी मान्यता थी कि विष्णु चार माह शयन करते हैं।[285] इन चारो माहो मे विवाह आदि कार्यक्रम नही होते थे।

श्रावण मास मे प्रत्येक सोमवार को लोग शिव के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिए श्रावण सोमवार का उपवास करते थे। गुजरात मे सोमनाथ के लिए पवित्र उपवास किया जाता था।[286]

कृष्ण जन्म उत्सव भी मनाया जाता था। यह 'कृष्ण-जन्माष्टमी' के नाम से

प्रसिद्ध हुआ। इस दिन लोग उपवास रखकर फलाहार (दूध-फल) आदि ही करते थे।[287]

दुर्गा पूजा का त्योहार आश्विन (कुआर मास) मे मनाते थे। यह पूजन नौ दिन तक चलता था। अत यह 'नवरात्र' उत्सव भी कहलाता था। इस अवसर पर बलि की प्रथा भी थी।[288] लोग इन नौ दिनो तक उपवास रखते थे। देवी माहात्म्य की कथा का वाचन भी किया जाता था। कौमुदी महोत्सव पर शिव की विशेष रूप से आराधना की जाती थी।[289]

'दीपावली या दिवाली' समाज के सभी वर्गों, वर्णों और जातियो के लोग धार्मिक भेदभाव भुलाकर सोल्लास कार्तिक मास मे मनाते थे। स्नान के बाद नये वस्त्र धारण किए जाते और देव-दर्शन के बाद लोग एक-दूसरे को उपहार आदि देते थे। नाना प्रकार के मिष्टान्न बनाए जाते थे। रात्रि मे प्रत्येक घर मे असख्य दिए जलाए जाते थे।[290] इस अवसर पर महालक्ष्मी का पूजन भी होता था।[291] दीवाली पर जुआ खेलना और उसम हार-जीत भाग्य अभाग्य का द्योतक माना जाता था।[292] दीपावली के पर्व पर एकादशी के दिन विष्णु के जागने का दिन था। इसे देवोत्थानी एकादशी' भी कहा जाता था।[293] विष्णु मूर्ति का धूप दीप, शहद आदि से पूजन करते थे।[294] इस दिन कुछ लोग उपवास भी रखत थे[295] और विष्णु का भक्ति-भाव से जुलूस भी कही-कही निकाला जाता था। पौष माह के रविवार अत्यत ही पवित्र धार्मिक दृष्टि से माने गए। इस दिन काफी मात्रा म 'पूहवल' (पूए की मिठाई) तैयार की जाती थी, उसे ही खाया जाता था।[296] आज भी यह पर्व मनाया जाता है और महिलाए पौष क रविवार सबधी कथाए कहती हैं। निमाड म इसका काफी महत्त्व है।

महाशिवरात्रि का पर्व भी लोग मनाते थे। रात-भर शिव का पूजन कर जागरण होता था।[297] नृत्य-गायन के साथ ही शिव सबधी कथाओ को सुनाया जाता था। राजपूताना, मध्यप्रदेश और उत्तरी भारत मे यह काफी जनप्रिय था।[298] लोग इस पर्व पर दान आदि भी दते थे।

फाल्गुन का सर्वप्रिय त्योहार होली था। इसे भी सभी वर्णों वर्गों के लोग उत्साहपूर्वक मनाते थ। इस अवसर पर रग गुलाल का उपयोग खुल कर किया जाता था। ग्राम-नगर के बाहर होलिका दहन की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती थी।[299] आज भी यह पर्व आनदपूर्वक मनाते हैं और लोग आपसी वैर-भाव भूलने का प्रयत्न करते हैं।

अनेक पर्व स्थानीय रूप मे भी आयोजित होते थे। काश्मीर मे राजा ललितादित्य ने 'सहस्र भक्त' नामक उत्सव का आरभ किया था जब ब्राह्मणो को उत्सव के दौरान चावल और दक्षिणा दी जाती थी। इन दानपात्रो की सख्या एक लाख होती थी।[300] गुजरात में भी 'वोरल्ली' नामक पर्व मनाते थे।[301] गुजरात मे ही

आश्विन मास मे महिलाए मालपुवा बनाकर पूजन के बाद अपने पतियो को खिलाती थी।[302] उत्तर भारत मे अशोक वृक्ष के पूजन का त्यौहार मनाया जाता था।[303]

तीर्थस्थानो, विशेष पर्वो आदि पर मेलो का भी आयोजन होता था। इसमे सब से प्रसिद्ध कुभ था। यह भारत के प्रमुख चार तीर्थस्थलो पर होता था। उत्तर भारत मे गगा नदी के तट पर प्रयाग एव हरिद्वार, दक्षिण मे गौतमी गगा, गोदावरी के किनारे नासिक एव मध्यप्रदेश मे क्षिप्रा के तट के उज्जयिनी मे हर बारहवें वर्ष मे भरता था।[304] उज्जैन का कुभ सिंहस्थ कहलाता था।[305] अर्द्धकुभ भी होता था। स्थानीय रूप मे भी मेले होते थे। विशेषकर शिवरात्रि पर शैव मदिरो मे लोग दर्शनार्थ जाते थे। आसपास के लोग भी पूजार्थ वहा आते थे। उत्सव, मेले का रूप धारण कर लेता था। सक्राति के दिन पवित्र नदियो पर स्नान किया जाता था, अत वहा मेले भरते थे। सक्राति पर गगा स्नान पर दान देना स्पृहणीय था।[306] चद्र-ग्रहण और सूर्य ग्रहण के अवसरो पर भी धार्मिक कृत्य किये जाते थे।[307]

मत्र-तत्र और जादू-टोना भी धार्मिक विश्वास का अग बन गया था।[308] अनेक मात्रिक इस पद्धति से पूजा-उपासना करते थे। यह शायद आदिम जातियो के धार्मिक विश्वासो, शैव, शाक्त और सहजयानी बौद्ध पूजा का प्रभाव था। मत्रो को सिद्ध करने के लिए प्रयोग भी किये जाते थे।[309] सर्प-विष आदि उतारने के लिए इन्हे सिद्ध करते थे। डाकिनी, पिशाच, वेताल, भूत-प्रेत, योगिनी आदि की अर्चा भी की जाती थी।[310] समाज मे सभी प्रकार की उपासनाए प्रचलित थी।

धर्म ने इस काल मे व्यापक रूप धारण कर लिया था। धार्मिक कर्म बहुमुखी हो गए। उपरोक्त तथ्य इसके समर्थक हैं। यही पूर्व मध्ययुग की विशेषता बन गया। सर्वोत्तम कल्याणकारी देवो से लेकर जादू-टोने तक उसका विस्तार हो गया। धर्म का स्वरूप पहले इतना व्यापक न था। इस युग मे मानव का हर पल, दिन मास और समस्त जीवन धार्मिक नियत्रण मे आ गया। इस युग की लोकमान्य धार्मिक प्रवृत्तियो ने थोडे बहुत परिवर्तन के साथ आगामी सदियो मे भी अपना प्रभुत्व बनाए रखा। आज भी सुधरे रूप मे उनका चलन है।

संदर्भ

1 आनदगिरी शकर दिग्विजय, 3-7

1A वही।

2 किताब उल-तवारीख, भाग IV, पृ० 9-10

2A कब्रिज हिस्टरी आफ इडिया भाग I पृ० 144-45

3 2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 85

4 रायचौधरी स्टडीज इन इडियन एटीक्वीटीज, पृ० 139-40

5 ग्रार० सी० मजुमदार आउट लाइन आफ एसियेंट इडियन हिस्ट्री एड सिविलाइजशन, पृ० 208
6 *2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 86-93*
7 ग्रानदकुमारस्वामी बुद्ध एड द गॉस्पल आफ बुद्धिज्म, पृ० 223 28
8 रा० व० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 178 191
9 ग्रार० सी० मजुमदार एव ए० एस० ग्रल्तेकर वाकाटक-गुप्त, पृ० 19, 22
10 ग्रार० के० मुकर्जी मेन एड थॉट इन एसियेंट इडिया, पृ० 179
बी० स्मिथ हर्ष रूलर्स आफ इडिया सिरीज
11 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 257
12 2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 360
13 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 403-404
14 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 190-92
15 2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 359
16 वही, पृ० 355
17 केशव मिश्र चदेल ग्रौर उनका राजत्वकाल, पृ० 202
18 वही।
19 एस० बी० दासगुप्ता इट्रोडक्शन टु तात्रिक बुद्धिज्म, पृ० 85 87
20 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 266
21 दिनकर सस्कृति के चार ग्रध्याय, पृ० 193
2500 इयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० 376
22 द एज ग्राफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 259 60
23 वही।
24 सद्धर्म पुडरीक स्तोत्र, 396-477 (अनु० डा० एन० दत्त)
25 मजूश्री मूल कल्प, गुह्य समाज 2
26 द एज ग्राफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 262
27 मजूश्री मूल कल्प, 508, 647-48
28 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 108
29 वही।
30 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 410
31 एस० बी० दासगुप्ता इट्रोडक्शन टु तात्रिक बुद्धिज्म, पृ० 87-88
32 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 192
33 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 410-11
34 गुह्य समाज तत्र, ग्रध्याय 17
एस० बी० दासगुप्ता इट्रोडक्शन टु तात्रिक बुद्धिज्म, पृ० 91 93
35 वही, पृ० 93
36 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 410
37 सी० डी० चटर्जी भारत कौमुदी, पृ० 161
38 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 110
39 वही।

40 एस० बी० दासगुप्ता इट्रोडक्शन टु तांत्रिक बुद्धिज्म, पृ० 83 85
41 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 412
42 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म इन बेंगाल, पृ० 163
43 वही।
44 एस० बी० दासगुप्ता आब्सक्योर रिलिजस कल्ट्स आफ बेंगाल, पृ० 80-86
45 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 194
46 वही।
46A राहुल साकृत्यायन दोहा कोश, पृ० 14, 30, 142, 146, 166
47 एस० बी० दासगुप्ता आब्सक्योर रिलिजस कल्ट्स आफ बेंगाल, पृ० 39, 128
47A राहुल साकृत्यायन दोहा कोश, पृ० 2
47B वही, पृ० 26
47C वही, पृ० 4
47D वही, पृ० 18—
"पण्डिअ सअन वत्थ वक्खाणअ।
देहहिं बुद्ध वसन्त जाणअ॥"
48 एस० बी० दासगुप्ता इट्रोडक्शन टु तांत्रिक बुद्धिज्म, पृ० 116
49 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 409
50 वही।
51 राहुल साकृत्यायन हिंदी काव्यधारा, पृ० 76
52 वाडेल बुद्धिज्म आफ तिब्बत, पृ० 31
53 साधन माला, भूमिका गायकवाड ओरिएटल सिरीज, न० 44
पी० एन० बोस इडियन टीचर्स आफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, पृ० 35-37
54 राहुल साकृत्यायन दोहा कोश, भूमिका, पृ० 9 16
55 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 199
हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्मसाधना।
56 सरहपाद दोहा कोश 'जइ चडाल घरे भुज्जई', पृ० 26
57 लुईपाद, योगिनी समय चर्या एव वज्रसाधना
मिस्टिक टेल्स आफ लामा, तारानाथ, पृ० 11 20
58 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 20
59 वही।
60 बुद्धप्रकाश आस्पेक्ट्स आफ इडियन हिस्ट्री एड सिविलाइज़ेशन, पृ० 270
61 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 268
62 बुद्धप्रकाश आस्पेक्ट्स आफ इडियन हिस्ट्री एड सिविलाइज़ेशन, पृ० 210 11
63 वही।
64 वही।
65 कान्हपा चर्यागीति कोश, पृ० 33, 64 (सपादन पी० सी० बागची—शातिभिक्षु शास्त्री)
66 भुसुकपा वही पृ० 159
67 डोबीपा वही, पृ० 47

68 शबरप्पा चर्यागीति कोश, पृ० 92
69 वही।
70 इद्रभूति ज्ञानसिद्धि, भाग I पृ० 82
बी० भट्टाचार्य टु वज्रयान वर्क्स, पृ० 39 (गायकवाड ओरिएटल सिरीज)
70A लुई रेनॉन रिलिजस ग्रॉफ एसिएट इडिया, पृ० 87
71 जर्नल आफ द बिहार रिसर्च सोसायटी, XXXIV
72 पी० एन० बोस द इडियन टीचर्स आफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, पृ० 30 48
73 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 165
74 वही।
75 वही।
76 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 270-75
77 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 172
78 एपीग्राफिका इडिका, भाग XXI, पृ० 99
79 आर० सी० मजूमदार हिस्ट्री आफ बेंगाल, भाग I, पृ० 232
80 कल्हण राजतरगिणी, 4/203
81 वही, 4/259 262
82 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 419
83 पी० सी० बागची इडिया एड चाइना, पृ० 55 56
84 2500 इयर्स ग्राफ बुद्धिज्म, पृ० 249-50
85 कल्हण राजतरगिणी, 7 121, 8 246, 250 1171 72
86. वही, 8-2416
87 एपीग्राफिका इडिका, भाग IX, पृ० 321
87A वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक सांस्कृतिक इतिहास, भाग II, पृ० 160
88 इडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भाग VIII
89 बी० एम० बरुग्रा गया एड बोध गया, भाग I, पृ० 199 201
90 ग्रलबीरूनी, भाग I, पृ० 40
91 वही, पृ० 158
92 बी० मजूमदार गाइड टु सारनाथ, पृ० 28 36
93 एपीग्राफिका इडिका, भाग XI, पृ० 423
94 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 423
95 आर्कियालाजिकल सर्वे ग्राफ इडिया रिपोर्ट, पृ० 166-67 (1929-30)
95A द मानूमेट्स ग्राफ साची
95B के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 397 99
96 ऋग्वेद 10/166 1, केशी सूक्त, 10-136
97. केम्ब्रिज हिस्ट्री ग्राफ इडिया, भाग I, पृ० 143
98 वही, पृ० 147
99 आर्कियालाजी ग्राफ गुजरात, पृ० 233
100 राधाकुमुद मुकर्जी चद्रगुप्त मौर्य ग्रौर उनका काल, पृ० 65-67
101 ए० एस० अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एड देयर टाइम्स, पृ० 313

102 बी॰ डी॰ शुक्ला भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ॰ 318
103 सी॰ वी वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग II पृ॰ 290 (मराठी)
104 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ॰ 288
105 सी॰ वी॰ वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग II पृ॰ 290 (मराठी)
106 बी॰ डी॰ शुक्ल भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ॰ 318
106A ब्यूल्हर इडियन सेक्ट्स आफ द जैन्स, पृ॰ 77 78
106B वि॰ च॰ पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ॰ 92
106C. कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, तृतीय अक, पृ॰ 112 व आगे
107 भारतीय विद्या, 1/73 (हिंदी)
108 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए—पार्श्वनाथ मदिर, पृ॰ 15 16
109 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ॰ 343
110 सी॰ वी॰ वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग II, पृ॰ 289
111 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ॰ 289
112 कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, तृतीय अक, श्लोक 5 6
113 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ॰ 289
114 मथुरालाल शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ॰263-64
115 कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, तृतीय अक, 'ओम नमोऽर्हंन्दय'
116 केशवचद्र मिश्र चदेल और उनका राजत्व काल, पृ॰ 202-203
117 मथुरालाल शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ॰ 264
118 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ॰ 427
119 वही, पृ॰ 428
120 आर्कियालाजी आफ गुजरात, पृ॰ 235
121 वि॰ च॰ पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास, पृ॰ 142
122 भारतीय विद्या, 1/73 (हिंदी)
123 द्वयाश्रय 7/64
124 दशरथ शर्मा खरतर गच्छ पट्टावली—इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग XI पृ॰ 248
इडियन एटीक्वेरी, भाग XI, पृ॰ 779
125 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ॰ 289 90
126 प्रभावक चरित, सिंघी जैन सिरीज, पृ॰ 85
127 एपीग्राफिका इडिका, भाग IX, पृ॰ 149
128 द्वयाश्रय, 15/69-75
129 मुनी जिनविजय राजर्षि कुमारपाल, पृ॰ 6
130 द्वयाश्रय, 16
131 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ॰ 428
132 कुमारपाल प्रतिबोध, पृ॰ 117
133 वही, पृ॰ 143, 174
134 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ॰ 429
135 एम॰ एल॰ शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ॰ 264

135A के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 400
135B वही।
135C वही।
136 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 295
136A गुरु गोपालदास वरीय स्मृति ग्रंथ
136B के० सी० जैन मालवा थ्रू द एजेज, पृ० 400
137 एपीग्राफिका इंडिका, भाग II पृ० 80
137A वी० एन० लुणिया युग-युगीन धार, पृ० 24 25
137B आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, 1918 19
डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 264
138 एपीग्राफिका इंडिका, भाग XXV
138A *कृष्णदेव एंसिएंट इंडिया, आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, पृ० 55*
139 केशवचंद्र मिश्र चंदेल व उनका राजत्व काल, पृ० 203
139A रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ० 16
139B सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, पृ० 290
139C जैन सिद्धांत भास्कर, 9/1
140 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 162
141 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 290
142 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 276
143 वही।
144 विंटरनिट्ज हिस्ट्री आफ इंडियन लिट्रेचर, भाग II, पृ० 431
145 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 314
146 वही, पृ० 300
147 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 430
148 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 429
149 एपीग्राफिया कर्नाटिका, भाग V, पृ० 149, 190
150 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 430
151 एपीग्राफिया कर्नाटिका, भाग II पृ० 143, 349
152 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 438
153 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग VI, पृ० 428
154 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 428
155 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 288-89
156 द इंडियन एंटीक्वेरी, XXXVI, पृ० 149-72
157 एपीग्राफिया कर्नाटिका, भाग V, पृ० 124, 140, 183, 190
158 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ० 161
159 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग XI, पृ० 274 75
160 अलबीरूनी भाग II, पृ० 296
161 असर-उल-बिलाउद, पृ० 81
162 अहसन-उत-तवासीम, पृ० 483

163 द एज इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 333
164 रामाश्रय प्रवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए, पृ० 170-83
165 वही।
166 जे० बर्गेस आर्कियालाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, भाग IX
167 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 652
168 कृष्णदेव एंसिएंट इंडिया—आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, पृ० 44
169 एपीग्राफिका इंडिका, भाग IX पृ० 1 5
170 वही, भाग XIV, पृ० 180-85
171 वही, भाग IV, पृ० 121-23
172 वही भाग V, पृ० 116-117
173 ए० के० मजुमदार चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० 330
174 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 236
175 वही, पृ० 277
176 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 334
177 वही।
177A वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2 पृ० 141
177B वही, पृ० 159
178 अग्नि पुराण, अध्याय 17, श्लोक 1 8 (कल्याण)
178A वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 338
178B ऋग्वेद 2 33 1
178C वही।
178D वही, 8-81-1
178E महाभारत अनुशासन पर्व, 151 76
178F मानव गृहसूत्र, 2 14
179 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 344
180 वही, पृ० 345
181 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 169
182 एपीग्राफिका इंडिका, भाग IX, पृ० 277 79
183 जे० एन० बनर्जी डेवलपमेंट आफ हिंदू आइकनोग्राफी, पृ० 357
सपूर्णानद गणेश, पृ० 12
184 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 345
185 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 338
186 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ०346
187 टी० ए० जी० राव एलीमेंटस आफ हिंदू आइकोनोग्राफी, भाग I, पृ० 51 61
188 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 338
189 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 141
190 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए पृ० 38 51
191 ए० के० मजुमदार चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० 300
192 सपूर्णानद हिंदू देव परिवार का विकास, पृ० 147

193 याज्ञवल्क्य स्मृति 1/265 68
194 अग्नि पुराण 51 11 12
    मत्स्य पुराण 94 3,4,5 6 7 8
    अपराजित पृच्छा 214, 10-19
    रूपमण्डन 2, 18 24
194A कल्हण राजतरंगिणी, अष्टम स्तरंग, श्लोक 69 74
195 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए, पृ० 189
196 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 352
197 एस० के० सरस्वती अर्ली स्कल्पचर आफ बंगाल, पृ० 65 67
198 टी० ए० जी० राव एलीमेंट्स आफ हिंदू आइकोनोग्राफी भाग I पृ० 300
199 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए, पृ० 201
200 अथर्ववेद 3 27-1 6
    तैत्तिरीय संहिता 5 5 10
201 के० सी० पाणिग्रही आर्कियालाजिकल रिमेंस आफ भुवनेश्वर, पृ० 70-71, 143-44
202 सम्पूर्णानंद हिंदू देव परिसर का विकास, पृ० 148
203 केशवचंद्र मिश्र चंदेल और उनका राजत्व काल, पृ० 116
204 कृष्णदेव खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ० 34
205 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 332
206 एम० आर० ठाकौर केटेलाग आफ स्कल्पचर इन द आर्कियालाजिकल म्यूजियम ग्वालियर, पृ० 25
207 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 341
208 वही, पृ० 332, 333
209 कल्हण राजतरंगिणी, चतुर्थ स्तरंग, श्लोक 216
210 फर्ग्युसन ट्री एंड सर्पेन्ट वर्शिप, पृ० 60 62
    सी० वी० वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग II पृ० 282
210A डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर द इंडियन एम्पायर, पृ० 192
211 कल्हण राजतरंगिणी, द्वितीय स्तरंग, श्लोक 102
212 रामाश्रय अवस्थी खजुराहो की देव प्रतिमाए, पृ० 16
213 सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, पृ० 287
213A इब्न-नदीम किताब उल-फेहरिस्त, पृ० 345-49
214 आस्पेक्ट्स आफ इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर, पृ० 293
215 पी० सी० बागची कौल ज्ञान निर्णय-भूमिका, पृ० 7
    हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० 6
216 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्ययुगीन भारत, पृ० 335
217 वही पृ० 336
218 चर्यागीति कोश, पृ० 44 (अनु० पी० सी० बागची एव शांति भिक्षु)
219 गोरख बानी, पृ० 1 33, (सम्पादक पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)
220 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्ययुगीन भारत, पृ० 336
221 एन० के० भट्टशाली मयनामतिरगान, पृ० 4

222 चर्यागीति कोश तू लो डोम्बि हाउ कपाली', पृ० 33 (सपादक पी० सी० बागची एव शातिभिक्षु)
223 बुद्धप्रकाश आस्पेक्टस आफ इंडियन हिस्ट्री एड सिविलाइजेशन, पृ० 297
224 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्ययुगीन भारत, पृ० 336
225 वही।
225A हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 48
226 बुद्धप्रकाश आस्पेक्ट्स आफ इडियन हिस्ट्री एड सिविलाइजेशन, पृ० 301
227 वही, नौ नाथो मे आदिनाथ, मछिद्रनाथ, गोरखनाथ, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ, जालधरनाथ, चौरगीनाथ, कानिफनाथ थे।—हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 46
227A अग्निपुराण अध्याय, 68, 109, 110, 111, 112, 114, 175, 194 व 199
228 कल्हण राजतरगिणी, चतुर्थ स्तरग, श्लोक 234
229 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्ययुगीन भारत, पृ० 343
230 राजतरगिणी, 4/189
231 वही, 232
231A पतजलि महाभाष्य, 2 3 69, पृ० 455
232 राजतरगिणी, 4/190
233 वही अग्नि पुराण, अध्याय, 209, 210, 211, 212 एव 213 (कल्याण)
234 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 160
235 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 270-75
236 राजतरगिणी, 4/191-204
237 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 140
238 कृत्य रत्नाकर, 10/203 204
239 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्य भारत, पृ० 344
240 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, पृ० 142
241 वही, पृ० 277
242 अल-उत्बी/काजिनवी असर उल बिलाउद, भाग I, पृ० 97-98, भाग II, पृ० 468, 469, (अनु० इलियट)
243 ईश्वरी प्रसाद मेडीवल इडिया, पृ० 83 95
244 कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, 43-46
245 अलबीरुनी भाग II, पृ० 142
246 दामोदर गुप्त कुट्टनीमतम् श्लोक 17
246A सी० एन० कृष्णास्वामी अय्यर शकर, पृ० 33
247 'सप्त पृथिव्या परम मुक्ति क्षेत्रम वाराणसी नाम नगरीय"
कृष्ण मिश्र प्रबोधचद्रोदयम्, अक 2
248 अलबीरुनी भाग II, पृ० 146-47
249 वही।
250 महाभारत : वनपर्व, 81 1-6
251 बल्लाल सेन दान सागर, पृ० 37

252 लक्ष्मीधर कृत्य कल्पतरु—तीर्थ विवेचना काड, पृ० 175 76
253 वामन पुराण, 52 254
254 पद्म पुराण, 21 46
255 वराह पुराण अध्याय 157 78
255A अल उतबी किताब ए-यामिनी
255B तहकीक ए हिंद, भाग II, पृ० 147 48
256 वही, पृ० 145
257 भविष्य पुराण अध्याय 17, पद्म पुराण 1 13
258 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग XI पृ० 275
259 अलबीरुनी भाग II, पृ० 145
बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग XI पृ० 275
ह्वेनसाग चार कुडो की सूचना देता है।
260 अलबीरुनी भाग II, पृ० 144 45
261 वही, भाग II, पृ० 104
262 अल-काजिनवी असर-उल बिलाउद, भाग I, पृ० 97 98, (अनु० इलियट)
263 वही।
264 शिवपुराण ज्ञान सहिता, 38, जर्नल आफ द बाम्बे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग X, पृ० 45
264A नागर खड, अध्याय 107
265 अयोध्या मथुरा माया, काशी काची अवतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिका ।।—बृहद्धर्म पुराण 54-5 12
266 राजतरगिणी,
अलबीरुनी भाग I पृ० 117
267 वही, भाग II, पृ० 148
268 एपीग्राफिया इडिका, भाग XXV, पृ० 185
269 सी० एन० कृष्णा स्वामी अय्यर शकर, पृ० 32 33
270 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग IV, पृ० 234
अग्निपुराण अध्याय 111, श्लोक 1-14 (कल्याण)
270A वही, अध्याय 114, श्लोक 1 141
271 इब्न नदीम किताब उल फिहरिस्त, पृ० 345 349
272 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग IV, पृ० 188
राजतरगिणी अष्टम स्तरग, श्लोक 1655 56
273 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग I\ पृ० 198
274 पतजलि महाभाष्य, 2-2 29, पृ० 379
275 अलबीरुनी भाग II, पृ० 178
276 वही, भाग III, पृ० 141-48
चैत्र (रवि), वैशाख (विष्णु), ज्येष्ठ (भानु), आषाढ (विधान), श्रावण (अर्यमन), भाद्रपद (इद्रै), आश्वयुज (सवितृ), कार्तिक (दूषन), मार्गशीर्ष (त्वष्टृ), पौष (अर्क), माघ (दिवाकर), फाल्गुन (अशु)—ये सभी अधिकाशत विष्णु के ही नाम हैं।

277 चडेश्वर कृत्य रत्नाकर, पृ० 121-123
278 अलबीरूनी भाग II, पृ० 178
279 ए० के० मजुमदार चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० 306
280 हेमचद्र देशी नाम माला, 6182, अलबीरूनी, भाग II, पृ० 178
281 हेमाद्रि चतुर्वर्ग चितामणि, व्रत खड
अलबीरूनी भाग II, पृ० 179
282 भोज राजमार्तंड—एनल्स आफ द भडारकर ओरिएटल रिसर्च इस्टीट्यूट, भाग *XXXVI, पृ० 334*
283 चडेश्वर कृत्य रत्नाकर, पृ० 199
284 हेमचद्र देशी नाम माला, पृ० 403
भोज राजमार्तंड—एनल्स आफ द भडारकर ओरिएटल रिसर्च इस्टीट्यूट, भाग 36, पृ० 323
285 लक्ष्मीधर कृत्य कल्पतरु—नियत काल खड, पृ० 391
अलबीरूनी भाग II, पृ० 176
286 वही, पृ० 179
287 लक्ष्मीधर कृत्य कल्पतरु—नियत काल खड, पृ० 395-96
अलबीरूनी भाग II, पृ० 177
288 मार्कंडेय पुराण देवी माहात्म्य, 11, पृ० 92
289 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक-सास्कृतिक इतिहास, भाग II, पृ० 160
290 अलबीरूनी भाग II पृ० 182
291 पी० के० गोडे सम नोट्स आन द हिस्ट्री आफ दीवाली फेस्टीवल—एनल्स आफ द भडारकार ओरिएटल रिसर्च इस्टीट्यूट, भाग XXVI, पृ० 237
292 चडेश्वर कृत्य रत्नाकर, पृ० 411
293 अलबीरूनी भाग II, पृ० 177
294 लक्ष्मीधर कृत्य कल्पतरु, नियत काल खड
295 इडियन एटीक्वेरी, भाग XVII, पृ० 83
296 चडेश्वर कृत्य रत्नाकर, पृ० *378-79*
अलबीरूनी *भाग II, पृ० 182*
297 वही, पृ० 184, अग्निपुराण अध्याय 113, श्लोक 1-6
298 राजतरगिणी—अष्टम तरग, श्लोक 70
एपीग्राफिका इडिका, भाग XI, पृ० 31-32, भाग XXI, पृ० 150
299 भोज—राजमार्तंड
300 राजतरगिणी, 4/241-43
301 हेमचद्र देशी नाम माला, 7/81
302 वही, 6/81
303 अलबीरूनी भाग II, पृ० 180
304. स० वा० दीक्षित *उज्जयिनी—इतिहास तथा पुरातत्त्व, पृ० 1*
305 माधव धवले पक्षे सिहे जीवेत्वजे रवौ।
तुला राशो निशानाथे स्वाति में पूर्णिया तिथौ ।।

व्यतीपाते तु सम्प्राप्ते चन्द्र वासर सम्मुते।
कुशस्थली महाक्षत्रे स्नाने मोक्ष मवाप्नुयात ॥—स्कदपुराण

306 वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनीतिक सास्कृतिक इतिहास, भाग II, पृ० 141
307 वही, पृ० 142
308 *अलबीरूनी भाग II, पृ० 193-94*
309 अग्नि पुराण अध्याय 293 व आगे
310 राजतरंगिणी 21100, 3/340-42 8/2838
आनदगिरी शकर दिग्विजय, श्लोक 3-7

अध्याय 7

भक्ति सम्प्रदाय

धर्म का प्रवाह ज्ञान, कर्म और भक्ति की धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामजस्य से ही धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा म रहता है। इनमे भी कर्म और भक्ति ही समस्त जन-साधारण की सम्पत्ति होती है।[1] पूर्व मध्ययुग की सबसे बडी देन भक्ति सप्रदाय का विकास है। भक्ति ने आठवीं से लेकर पद्रहवीं और उसके बाद की सदियो के भारतीय जीवन और संस्कृति को प्रभावित किया।[2] वह भारतीय धार्मिक जीवन की मुख्य धारा बन गई।

भक्ति की व्याख्या और स्वरूप

पूर्व मध्ययुग के पूर्व ही भक्ति की ऐतिहासिक रूप-रेखा के साथ व्याख्या भी निर्धारित हो गयी थी। श्वेताश्वतरोपनिषद, गीता और भागवत न इसकी व्याख्या कर दी। भागवत मे भक्ति की व्याख्या की गयी 'सासारिक विषयो का ज्ञान देने वाली इद्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति, निष्काम रूप से जब भगवान मे लगती हैं तो इस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं।'[3]

शाडिल्य भक्ति सूत्रो ने भक्ति की परिभाषा देते हुए उसे 'सा परानुक्तिरीश्वरे'—ईश्वर में अनन्य अनुरक्ति या अनुराग को ही भक्ति माना है।[4]

नारद भक्ति सूत्र[5] भी भक्ति पर प्रकाश डालता है। इसके अनुसार भक्ति 'त्वास्मिन् परम प्रेम रूपा। अमृत स्वरूपाश्च। य लब्धा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्यन किंचिद्वा छति न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते नोत्साहि भवति ईश्वर के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है। वह अमृत स्वरूपा है। उसे पाकर मनुष्य सिद्ध और तृप्त हो जाता है। उसके मिल जाने पर भक्त किसी भी वस्तु की इच्छा नही करता। वह शोक द्वेष और सासारिक आसक्तियो से रहित हो जाता है, और न उन वस्तुओ से उत्साहित होता है।' नारद भक्ति-सूत्र, भक्ति को ज्ञान कर्म-योग से श्रेष्ठ मानता है।[6] भक्ति साधन और साध्य रूपा है। वह

उपाय भी है और स्वय उपेय भी है। प्राप्ति का साधन भी है तथा प्राप्ति रूपा भी है।[6A]

भक्ति के लक्षण

परमेश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा, शरणागति, अनुराग, प्रेम इत्यादि तत्त्व ही भक्ति के प्रमुख लक्षण है। कल-युग मे ईश्वर के नाम, गुण, लीला आदि का कीर्तन ही श्रेष्ठ है।[7] भक्त ने अनन्य भाव से, प्रियतम भगवान के चरण कमलो का, दूसरी भावनाओ, अवस्थाओ, वृत्तियो आदि को छोडकर भजन करना चाहिए।[8] हरि-कथा समस्त लोको को पवित्र करनेवाली कल्याणस्वरूपिणी है। अत श्रद्धा से बार-बार उसे सुनना, उसका गान करना, स्मरण और अभिनय करना चाहिए।[9] ये ही भक्ति के लक्षण हैं। इसके साथ ही ईश्वर पर आश्रित रह कर धर्म काम, अर्थ का सेवन करना चाहिए। ऐसा जो करता है, उसे ही अविनाशी ईश्वर के प्रति प्रेममयी अनन्य भक्ति प्राप्त हो जाती है।[10] भक्ति का लक्षण सत्सग और भक्ति योग दोनो का अनुष्ठान है।[11]

भागवत् भी गीता के समान निष्काम भक्ति का समर्थक है। उसे निरतर बना रहना चाहिए। ऐसी भक्ति ही भगवान को उपलब्ध कराकर भक्त को कृतकृत्य करती है।[12] इन लक्षणो से युक्त भक्ति को अपनाने पर वह सच्ची विद्या, ब्रह्म और आत्मा के भेद को मिटाती है।[13] उक्त व्याख्या और लक्षणो से युक्त भक्ति का विकास सातवी सदी के पूर्व ही हो गया था।

सातवी सदी के पूर्व भक्ति

भक्ति के जन्म और ऐतिहासिक विकास के बारे म विद्वानो मे मतभेद है। साहित्य की दृष्टि से भक्ति की जो रूपरेखा है ऐतिहासिक स्तर पर उसके विकास चिह्नो को अलग देखा जा सकता है। साधारणतया यह माना जाता है कि भक्ति पूर्व मध्य काल की देन है। वह मध्ययुग मे अपने चरमोत्कर्ष पर पहुची। परतु भक्ति बीज रूप मे मानव इतिहास के आदि काल मे भी थी। इतिहास का विश्लेषण इस हेतु समीचीन रहेगा।

आर्यों के पूर्व भक्ति का स्वरूप

शायद जन्म मरण के भय और मानव से परे किसी सर्वोच्च नियत्रक शक्ति के प्रति पूज्य भाव ने ही भक्ति-श्रद्धा को जन्म दिया था।[14] यह भावना द्रविड आर्यों के आगमन के पहले ही भारत की आदिम जातियो मे थी। यद्यपि इसके लिखित प्रमाणो का अभाव है,[15] परतु उसकी उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता।

पूजा की भावना और देवी-देवताओ को श्रद्धा-भक्ति से चढायी जानेवाली

वस्तुओं को दृष्टिगत रखा जाये तो भक्ति का आदिम रूप प्रागैतिहासिक काल में तैयार हो गया था। इस काल के लोगों में धार्मिक विश्वासों और पूजा पद्धति का ढाचा लगभग था।[16] द्राविडों के भारत आगमन के साथ भक्ति के इन्ही तत्वों की द्राविड धर्म के साथ समन्वय और समाविष्ट हुई।[17]

सिंधु सभ्यता की धार्मिक भावना में भक्ति के चिह्न और लक्षण अधिक स्पष्ट दिखायी देते हैं। देवी-देवताओं की उपासना, बलि, दीपों द्वारा पूजन तथा मूर्तियों के समक्ष नृत्य-गीत आदि से होती थी। इस युग की उपासिकाओं, देवदासियों और नर्तकियों की मूर्तियां उनके धार्मिक महत्त्व[18] के साथ भक्ति के इतिहास की आरंभिक कड़ियों की ओर इंगित करती हैं। पूर्व मध्ययुगीन भक्ति के प्रकार व साधनों में से अनेक उस समय भी विद्यमान थे। इन्ही द्राविडों के कारण कालांतर में बीज रूपी भक्ति दक्षिण में भी पनपी। पर उत्तर भारत से वह पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई होगी। भक्ति मूल रूप में आर्येत्तर प्रवृत्ति थी।[19] आरंभ में वह शिव-शक्ति की उपासना के रूप में ही प्रस्फुटित हुई, क्योंकि सिंधु सभ्यता के प्रमुख देव-देवी, शिव-शक्ति ही थे।[20] अतः यह स्वीकारना होगा कि भक्ति द्रावडी उपजी[21] अथवा 'उत्पन्नै द्राविडा'[22] मात्र मध्य युग के लिए ही मान्य नहीं होगा। वह तो आदिम और सिंधु सभ्यता की थाती है।

पूर्व वैदिक काल में भक्ति का स्वरूप

डा० रामधारी सिंह दिनकर मानते हैं कि आर्यों में भक्ति का प्रस्फुटित स्वरूप नहीं मिलता।[23] उनका धर्म तो हवन और यज्ञों तक ही सीमित था।[23A] यह तर्क सामयिक नहीं है। भक्ति के आधारभूत तत्त्व वैदिक साहित्य में भी दिखायी देते हैं। एकेश्वरवाद भक्ति का मुख्य तत्त्व है। ऋग्वेद में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा गया, एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि' अर्थात् ईश्वर तो एक ही है, प्रबुद्धजन उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।[24] वैदिक देवताओं में बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों के दर्शन होते हैं।[24A] 'प्रजापति पुरुष' इसके उदाहरण है।[24B] इसी का विकास वाद में सर्वेश्वरवाद में हुआ।[24C] यास्क ने अपने निरुक्त में सृष्टि की मूल और आदि शक्ति को 'ईश्वर' निरूपित किया है। और सभी देवता इस एक आत्मा के अंश हैं। वही विभिन्न रूपों में पूजित हैं।[24D] अतः भक्ति का मूल तत्त्व एकेश्वरवाद आयातित या इस्लाम की देन नहीं है।

वैदिक देवताओं के प्रति भय से प्रेरित स्तुतियां[25] भक्ति के प्रारंभिक रूप की ही परिचायक हैं। उनके प्रति किए गए गान या प्रदर्शित विनय के भाव, उन्हें रिझाने या प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही प्रेरित रहे। स्तोता के हृदय में देवताओं के प्रति सर्वतोभावन प्रेम तथा अनुराग विद्यमान था।[26] एक ऋचा विष्णु भक्ति का स्पष्ट निर्देश देती है—'महस्ते विष्णो सुमति भजा महे।'[27]

ऋग्वेद का सातवा मडल वरुण के स्तोत्रो से भरा पडा है। आर्यों ने वरुण की उपासना के अतर्गत कर्मवाद और भक्ति मार्ग के सिद्धातो का प्रतिपादन किया।[27A] कुकर्मा मनुष्य दु ख भोगता है और सत्कर्मा मानव सुख-समृद्धि। परतु कुकर्मा मनुष्य भी यदि अपने पापो के लिए पश्चाताप करते हुए वरुण देव के प्रति पूर्णत आत्म-समर्पण कर दे, प्रायश्चित करते हुए उनके प्रति आत्मनिवेदन करे तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। इन ऋचाओ मे उपासक भक्त की भक्ति-भावना उन्मुक्त होकर बह रही है। वास्तव मे न केवल उत्तरकालीन भक्ति मार्ग के बीज इन्ही ऋचाओ में दबे पडे हैं, वरन् रामानुज की प्रपत्ति एव शरणागति, जो कि भक्ति का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, ऋग्वेद के सातवें मडल की देन है। अत भक्तिमूलक वैष्णव धर्म अथवा भागवत धर्म का प्राचीनतम आधार ऋग्वेद के वरुण स्तोत्रो में ही निहित है।[27B]

आर्य धर्म के प्रारभिक युग की साधना क्रमश भक्ति का स्पष्ट रूप धारण कर रही थी।[28] यद्यपि भक्ति शब्द का उपयोग लाक्षणिक रूप मे नही हुआ था, वह उसमे अनुस्यूत थी। 'शतरुद्री' मे तो इसका भी प्रयोग हो गया।[29] अत भक्ति उपासना के विचारो का उदय पूर्व मे ही हो चुका था।[30] यद्यपि उसका स्वरूप पूर्व मध्य युग अथवा मध्य युग जैसा न था। कालातर मे सिंधु कालीन भक्ति का आर्यों की भक्ति भावना के साथ समन्वय हुआ। शिव शक्ति की भक्ति उपासना को आर्यों ने भी धीरे-धीरे अपना लिया। दोनो की भक्ति भावना के समन्वय ने ही भक्ति की धारा को विकसित किया। वेदो के काम को उपनिषदो ने आगे बढाया।

उपनिषद काल मे भक्ति

उपनिषदो म भक्ति अधिक प्रखर रूप मे प्रस्फुटित हुई। इनम इतन भक्तिपरक विचार भरे पड़े थे कि व्यावहारिक उद्देश्य से उन्हें एक ऐसे भुक्ति मार्ग मे ढालना आवश्यक था, जो सरलता से ग्राह्य हो सके।[31] श्वेताश्वतर, कठ, मुडक आदि उपनिषदो ने वैदिक साहित्य के अधिकाश मत्रो को आत्मसात कर लिया था। ये सभी मोक्ष-मार्ग के लिए परमात्मा के ध्यान पर बल देते थे।[32] एक नये मार्ग की खोज ने उपनिषदो मे आर्यों को भक्ति मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित किया। वे यज्ञवाद की जडता से ऊबने लगे थे।[33] यह यज्ञ विरोधी आदोलन राजा-वसुधो-परिचर के समय से ही आरभ हुआ था। इसने भक्ति साधना का रूप धारण कर लिया।[34]

श्वेताश्वतर उपनिषद मे तो भक्ति के भाव सर्वत्र बिखरे पडे हैं। जन्म-मरण के चक्कर से छूटने के लिए परब्रह्म परमेश्वर की शरण मे जाने का परामर्श दिया गया।[35] एक स्थान पर कहा गया—'युक्तेन मनसा वय देवस्य सवितु सवे सवर्गेयाय शक्त्या'—अर्थात हमारा मन निरतर भगवान की आराधना रूपी यज्ञ मे लगा रहे।[36] कठ और माण्डूक्य उपनिषद भी इसका समर्थन करते हैं।[37]

पुन कहा गया कि ब्रह्म को ही समस्त जगत का आदि कारण मानकर उसी की शरण मे जाना चाहिए।[38] उन्ही की सेवा करनी चाहिए।[39] कल्याणरूप, आनद-मय परमेश्वर श्रद्धा-भक्ति से ही पकडे जा सकते हैं।[40] एक रूप ब्रह्म (एकेश्वरवाद) अपने को अनेक विभूतियों मे प्रकट करता है।[41] इस ब्रह्म की याचना 'रुद्र',[42] 'शिव'[43] रूप मे की गई।[44] श्वेताश्वतर उपनिषद की शिव रुद्र भक्ति आदिम व सिंधु-सभ्यता की शिव-भक्ति की अगली कडी थी। श्वेताश्वतर उपनिषद ने ज्ञान, कर्म और योग का स्पष्ट प्रतिपादन किया।[45] परन्तु भक्ति उसमे अनुस्यूत है।[46] अत मे 'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा' के माध्यम मे उपनिषदकार ने परमदेव परमात्मा की भक्ति का निरूपण कर दिया।[47] उपनिषदो का स्वरूप धार्मिक-दार्शनिक है। श्वेताश्तवर उपनिषद अन्य उपनिषदो की अपेक्षा उत्तरकालीन भक्ति के अधिक निकट है। इसका ईश्वर और परमानद का वर्णन प्रेम और स्तुति की प्रभा से दीप्त है।[48] भक्ति रहस्य का प्रतिपादन वैदिक सहिता और उपनिषदो म स्पष्ट रूप से किया गया।[49] अत भक्ति मे आरभ से ही ऐतिहासिक तारतम्यता पायी जाती है। वैष्णव मत के विकास ने भक्ति को सहारा दिया।

भक्ति और वैष्णव मत

वैदिक कालीन विष्णु की उपासना ज्यो ज्यो महत्त्व पाती गई, भक्ति भी उसके सहारे विकसित होने लगी। भक्ति की धारा को सात्वत क्षत्रियो ने आगे बढाया। उन्होने वासुदेव कृष्ण की भक्ति पर जोर दिया।[50] नारायण नर नामक ऋषि के वशज नारायण ने भी विष्णु भक्ति का प्रतिपादन किया। इनके पाचरात्रिक अनु-यायी भी भक्ति को मानते थे। वैदिक ऋषि घोर आगिरस कृष्ण भी भक्ति के पक्ष मे थे। नारायण, वासुदेव और कृष्ण, विष्णु से समन्वित हो गए।[50] इसके अनुयायियो द्वारा इनकी भक्ति करने की भावना चल पडी। अत भक्ति के विकास मे वैष्णव मत का विशेष योग रहा। महाकाव्यो म विष्णु के अवतारो की पूजा के साथ भक्ति आगे बढी।

महाकाव्य काल मे भक्ति

महाकाव्यो मे ही भक्ति की रूपरेखा का वास्तविक निर्धारण हुआ। महाभारत के शाति पर्व का 'नारायणीयोपाख्यान' इसका उदाहरण है।[52] विष्णु भक्ति से सबधित पाचरात्र मत भक्ति का प्रचार करने लगा। यही 'भागवत', 'सात्वत' और 'एकातिक' भक्ति भी कहलाया।[53] भक्ति भी इन्ही नामो से जन प्रचलित होने लगी। अत भक्ति अपने आदिम बीज रूप से वैदिक व उपनिषद साहित्य तथा वैष्णव मत के माध्यम से महाकाव्य काल मे पूरी तरह से पुष्पित-पल्लवित हुई। कालातर मे इसका ऐतिहासिक विकास हुआ।

भक्ति का ऐतिहासिक विकास

ईसा पूर्व की छठी सदी तक आते आते भक्ति की रूपरेखा निश्चित हो गई। यह काल बौद्ध-जैनो की धर्म सुधारण का काल था। परतु इस युग के 'देव धम्मिक', देव पूजको[54] के बीच भक्ति विद्यमान थी। ये शिव-विष्णु के ही देव-पूजक थे। ईसा पूर्व की पाचवीं सदी का वैयाकरण पाणिनी शिवभक्तो के बारे मे 'अयःशूलदण्डा-जिनाभ्या' और वासुदेव-भक्तो की उपस्थिति का दिग्दर्शन कराता है। वह भक्ति-कर शब्द की निष्पत्ति की चर्चा भी करता है।[55]

ईसा पूर्व की चौथी सदी का यूनानी राजदूत मेगास्थनीम जोबोरेस-Jobares (यमुना) किनारे के नगर मेथोरा-Methora (मथुरा) के निवासी सौरसेनाई-Souraseno1 (शूरसेनो) को हेराक्लीज-Heracles (कृष्ण) का भक्त बतलाता है।[56] ये तथ्य ईसा के पूर्व की छठी सदी से ईसा पूर्व की चौथी सदी तक भक्ति के विकास के परिचायक हैं। भक्ति, कृष्ण तथा शिव-पूजको के मध्य स्थापित हो चुकी थी।[27] इन कालो मे भक्ति ने इतना प्रभाव ग्रहण कर लिया कि बौद्ध धर्म भी उससे अछूता न बचा।

भक्ति और महायान बौद्ध धर्म

इन शताब्दियो मे बौद्ध धर्म मे सघ-भेद हो गया। वह हीनयान तथा महायान या महासघिको मे बटा।[58] महायानी, बुद्ध को देवता-परमेश्वर मानने लगे। जन-साधारण की धार्मिक भावनाओ की पूर्ति के लिए यह जरूरी था। ईसा पूर्व की सदियो मे ये भक्त बौद्ध प्रतीको की भक्ति करके ही सतुष्ट होने लगे। परतु शीघ्र ही ईसा के बाद की सदियो मे बुद्ध की मूर्तिया बनने लगी। बुद्ध की भक्ति-उपासना व्यापक पैमाने पर होने लगी। सारे देश मे बुद्ध की मूर्तियो और मदिरो का निर्माण हुआ और उनकी भक्ति पूरे आडम्बर के साथ की जाने लगी।[95]

भक्ति और जैन धर्म

भक्ति का स्वरूप जैन धर्म के अनुयायियो को भी पसद आया। मौर्य-शुग कालो[60] के बीच मे ही जैनो ने भी भक्ति को अपना लिया। जैन तीर्थंकरो की मूर्तिया बनने लगी। तीर्थंकरों की मूर्तियो की भक्ति प्रारभ हो गई। पूर्वी भारत मे तो मौर्य काल के पहले ही मूर्ति-पूजा के माध्यम से जैनो मे भक्ति प्रारभ हो गई थी।[61]

इन कालो म भक्ति का प्रवाह हिन्दू-बौद्ध-जैनो की तीन धाराओ मे प्रवाहित हो रहा था। वह इन तीनो धर्मों के माध्यम से ही आगे बढ़ी। इस काल के मूर्ति-निर्माण ने उसे काफी प्रभावित किया। उसकी प्रगति मे विकास हुआ। मूर्ति पूजा का भक्ति पर क्या प्रभाव पडा इसका अध्ययन 'भक्ति को प्रभावित करनेवाले

तत्वो' के शीर्षक के अतर्गत किया जाएगा। वर्तमान मे हम उसके ऐतिहासिक विकास का पुन. अध्ययन-विश्लेषण करेंगे।

शुग-सातवाहन-गुप्त काल मे भक्ति

मूर्ति-पूजा के साथ ही भक्ति का विकास तेजी से इन युगो मे हुआ। पतजलि देव-मूर्तियो की अर्चा का समर्थन करता है।[62] पतजलि-काल मे शिव-भक्ति का प्रचार अधिक था। ये शिव भागवत कहलाते थे।[63] कृष्ण-भक्त भी काफी थे। मूर्ति-पूजा ने भक्ति मे एकातिक भाव और व्यक्तिगत देवता की भक्ति (Worship of a Personal God) की भावना को पुष्ट किया। वैष्णव मत, भागवत धर्म भी कहलाने लगा था। विष्णु-भक्ति इतनी लोकप्रिय हुई कि विदेशी हेलियोडोरस ने भी उसे अपनाया।

गुप्तकालीन पुराणो ने भक्ति धर्म को अधिक परिपुष्ट कर उसके स्वरूप का पक्का निर्धारण कर दिया। पुराणो ने विष्णु के अवतारो की कथाओ के माध्यम से विष्णु-भक्ति का समर्थन किया। गुप्त सम्राट स्वय 'परम भागवत' थे।[64]

'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' के मगलाचरण बाणभट्ट के भक्ति-उद्‌गारो के प्रतीक ही हैं।[65] हर्ष काल मे भी भागवत भक्ति के अनुयायी थे। स्वय सम्राट हर्ष बुद्ध, सूर्य और शिव का भक्त था।[66] बाणभट्ट विष्णुभक्तो की 'भागवतैर्विष्णु भक्ते' रूप मे सूचना देता है।[67] सारे देश मे विभिन्न देवी-देवताओ के भक्त फैले हुए थे।

आदिम काल से पूर्व मध्य युग तक भक्ति मे ऐतिहासिक तारतम्यता है। इन कालो में परिस्थितियो और युग की भावनाओं के कारण विभिन्न धर्मों मे जो परिवर्तन हुए, उनका प्रभाव भक्ति पर भी पडा। उसके स्वरूप मे भी परिवर्तन हुआ। इसकी चर्चा सामयिक होगी।

भक्ति को प्रभावित करनेवाले तत्त्व

पूर्व मध्य युग मे दक्षिण मे भक्ति का व्यापक प्रचार हुआ। इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि भी परिपुष्ट हुई। भक्ति की व्यापकता ने इतिहासकारो को अचभित कर दिया। वे इसे विदेशी प्रभाव की देन मानने लगे।

भक्ति पर विदेशी प्रभाव

इस काल मे भारत के अरब से व्यापारिक सबध बढ रहे थे। कई मुसलमान व्यापारी दक्षिण मे आये। उनमे से कुछ यहा बस भी गये। शायद उन्होंने इस्लाम का प्रचार भी इस क्षेत्र मे किया। अत इसने इस सभावना को जन्म दिया कि भक्ति आदोलनो पर इस्लाम के एकेश्वरवाद और जाति-बधनो को न मानने के सिद्धांतो का प्रभाव

पड़ा ।[68]

इस समय दक्षिण के तटो पर यूरोपीय ईसाई व्यापारियो ने भी अपनी बस्तियां बसाना प्रारंभ कर दिया था । वे भी धर्म-प्रचार और धर्म-परिवर्तन के क्षेत्र मे काम कर रहे थे । स्थानीय शासको की उदारता के कारण ही वे ऐसा कर सके । अत इस संभावना को जन्म मिला कि भक्ति ईसाइयत के प्रभाव की ही देन है ।[69] डा० ग्रियर्सन के विचार से महाभारत के 'नारायणीयोपाख्यान' मे नारद द्वारा 'श्वेतद्वीप' जाकर नारायण से भक्ति का उपदेश पाने का अर्थ क्रिश्चियन मत के प्रबल प्रभाव से ही संभव हुआ होगा ।[70] परंतु यह तर्क अनुमान मात्र है । भक्ति तो भारतीय ही है ।

भक्ति की भारतीयता

भक्ति भारतीय धार्मिक विचारो की ही देन है । उपरवर्णित भक्ति के ऐतिहासिक विकास की रूप-रेखा इसका उदाहरण है । ईसा के जन्म और इस्लाम के प्रवर्त्तन के कई शताब्दियो पूर्व मे ही भारत मे उसकी उत्पत्ति और लोक-प्रचलन हो चुका था । ईसाई और मुसलमानो के बजाय द्राविड[71] और सात्वतो[72] ने ही उसकी जड़ें दक्षिण मे जमाई थी । भक्ति दर्शन के अधिकाश तत्व भारतीय उपनिषद, गीता और पुराणो की ही देन है । इसकी विस्तृत चर्चा भक्ति दर्शन मे की जाएगी ।

ग्यारहवी सदी का अरब यात्री अलबीरूनी भी इस तथ्य का समर्थन करता है कि एकेश्वरवाद की उपासना से भारतीय परिचित थे । अरब मे इस्लाम के जन्म से पूर्व ही एकेश्वरवाद का सिद्धात हिन्दुओ मे था ।[73] इसी प्रकार से प्रपत्ति और शरणागति की भावना श्वेताश्वतरोपनिषद मे सदियो पूर्व प्रकट की गई थी ।[74]

यदि भक्ति को प्रभावित किया ही होगा तो वह भी भारतीय जैन-बौद्ध धर्मों ने ही । भक्ति तत्वो का बाहर से आयात नही किया गया ।

बौद्ध धर्म का प्रभाव

भक्ति का रूप मात्र कोरी प्रार्थना या ईश्वरार्पण के भाव तक ही सीमित नही रह गया था। उसमे तंत्रोपचार का भी, समय और परिस्थिति के अनुरूप समावेश हो रहा था ।[75] बौद्धो के सदाचरण ने भक्ति को प्रभावित किया था । उसके मुख्य तत्व खति (क्षमा) सील (शील), मेत्ता (मैत्री), सच्च (सत्य) आदि भक्ति के दार्शनिकों द्वारा अपना लिए गए ।[76] भक्ति आदोलन ने बौद्धो से ससार की क्षणभंगुरता, समर्पण, मानव जीवन की निस्सारता का सिद्धात, इच्छाओ और इन्द्रियो का दमन तथा *उनके कर्मकाण्डो को भी अपना लिया हो तो आश्चर्य नही ।*[77]

भक्ति और जैन-प्रभाव

जैन धर्म का प्रभाव भी शायद भक्ति पर पड़ा था । भक्ति आदोलन ने जैनो की

नैतिक आचार संहिता को भी स्वीकार कर लिया।[78] जैनों का 'आचार परमो धर्म'[79] भक्तों को अच्छा लगा। शायद दक्षिण के शैव नायनार और वैष्णव आलवारों ने उक्त तत्वों को ही पसंद किया होगा। वैसे बौद्ध-जैन धर्म वैदिक प्रभाव से भी अछूते नहीं रहे थे। अतः यह आदान-प्रदान आपसी ही था। इस युग की भक्ति पर तो मूर्ति-पूजा का भी प्रभाव पड़ा।

भक्ति और मूर्ति-पूजा

भक्ति को मूर्ति पूजा के कारण विकास की अच्छी गति मिली। व्यक्तिगत देवता की भक्ति इसी मूर्ति पूजा का परिणाम थी। भागवत धर्म ने ही इस मूर्ति-पूजा-भक्ति के बीज बोये थे। *वे मानते हैं कि 'अर्चा' या 'श्री विग्रह' अथवा प्रभु का कल्याणकारी* शरीर ही स्वयं 'प्रत्यक्ष देवता' है। इस कारण से यह भक्ति का प्रधान और सर्वोच्च केंद्रबिंदु है।[80] सिंधु-सभ्यता में मिली मूर्तियां व मुहरें भी इस तथ्य का समर्थन करती हैं। इनमें मानवोचित कोमल वृत्तियों की कल्पना की गई। यह मान *लिया गया कि इनसे दया, दाक्षिण्य और अनुग्रह ही नहीं, वरन किसी भी सकटापन्न* स्थिति में भक्ति से प्रेरित होकर वे भक्तों को उबार भी सकती हैं।[81] पूर्व मध्य युग का शिक्षित समाज यह जानता था कि मूर्ति-पूजा मात्र अशिक्षितों के लिए ही है, क्योंकि सत्य मार्ग का अनुसरण करने वाले, दर्शन तथा ब्रह्मज्ञान के ज्ञाता केवल *ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य के पूजन की अपेक्षा नहीं करते। वे स्वप्न में भी* मूर्तियों को पूजने की इच्छा नहीं रखते।[82] तत्कालीन समाज म विशुद्ध ज्ञानियों का वर्ग बहुमत में न था। कारण ज्ञान-मार्ग अत्यंत दुरूह था। वह सर्वसाधारण के बस की बात न थी।

इन ज्ञानियों की सख्या समाज में कम थी। बहुमत तो मूर्ति-पूजकों का ही था। वे मूर्ति को उस अलौकिक सत्ता की छविकृति मानते थे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण की उपासना के प्रति जनसाधारण अधिक आकर्षित होता है। रामानुज जनसाधारण की इस दुर्बलता को जानकर ही सगुणोपासना[83] के प्रचारक बने। *वे शकराचार्य की अपेक्षा इसी कारण से अधिक सफल हुए।* वैसे शकराचार्य ने भी सर्वसाधारण के लिए भक्ति का समर्थन किया था।

भक्ति और समाज-सुधार

भक्ति आंदोलन ने पूर्व मध्य युग में समाज में सामंजस्य कायम करने के लिए भी काम किया। इस काल के आचार्य रामानुज और आळ्वार संतों तथा शैव आड्यार भक्तों ने प्रपत्ति और मोक्ष के द्वार समाज के सभी वर्णों और जातियों के लिए खोल दिए। भगवान की भक्ति करने पर शूद्रों, नारियों और वेश्याओं को भी मोक्ष मिल *सकता था। यह उन्होंने गीता से लिया था।*[84] *गीता से प्रेरित हो रामानुज ने अन्य*

जातियो मे भक्ति का प्रचार किया। उन्होने वर्ष मे कुछ दिन मदिरो के द्वार शूद्रो के लिए खोल दिए।[85] जाति-बधनो का हिन्दू समाज मे ढीला होना इस्लाम से प्रभावित न था। भारत मे इस्लाम के आगमन पूर्व से ही कई ऐसे उप-सम्प्रदाय उठ खडे हुए थे जो जाति प्रथा के बधनो को नही मानते थे। भारतीय चिंतन-धारा की विशेषता यह रही है कि उसने हर युग मे अप्रगतिशील रूढियो का स्वत. विरोध किया है। इस कारण से वह जागरूक बनी रही। अत. पूर्व मध्य काल के कई पथ तीर्थ यात्रा, व्रत, प्रतिमा-पूजन मे विश्वास न कर निरजन या निरकार (निर्गुण) की उपासना करते थे।[86] ये शरीर मे छिपी शक्तियो, शरीर और चित्त शुद्धि मे विश्वास करते थे।[87]

अत भक्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व भारतीय ही अधिक थे। वह उपनिषदो, गीता और महाकाव्यो की परपरा की ही अगली कडी थी, बाहर से आयातित नही। इन्ही ग्रथो ने उसे दार्शनिक आधार-भूमि भी प्रदान की थी।

भक्ति का दार्शनिक आधार

भक्ति को दार्शनिक आधार तभी मिला होगा जब मानव ने अपने नियत्रण से परे, किसी पारलौकिक सत्ता के नियत्रण को मान्यता देकर, उसके प्रति भय से प्रेरित हो, अनुराग और समर्पण का भाव प्रदर्शित किया होगा। यद्यपि यह भावना उस समय आदिम रही होगी। मानव सभ्यता के विकास के साथ उसे भी शाब्दिक और ठोस आकार मिलता चला गया। अतएव भक्ति की उत्पत्ति और दार्शनिक आधार आदिम युग की देन था। सिधु-सभ्यता मे वह पूरी तरह से फली-फूली। आर्यो के वैदिक साहित्य मे वह मुखर हुई और उपनिषदो ने उसे दर्शन की लाक्षणिक भाषा मे बाधकर ठोस आधार प्रदान किया।

श्वेताश्वतरोपनिषद मे भक्ति-दर्शन का स्पष्ट निरूपण किया गया। भक्ति दर्शन का आधार परमात्मा के अस्तित्व को मानकर उसके प्रति पूर्णरूपेण समर्पण तथा अनुराग को प्रदर्शित करना है। कठोपनिषद ईश्वर के अस्तित्व का समर्थन करता है—'अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन'—ईश्वर के अस्तित्व मे दृढ विश्वास करने पर वे साधक को अवश्य मिलेंगे।[88] साधक (भक्त) ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलबनो मे श्रेष्ठतम मानकर उसे ही चरम आलबन मानना चाहिए।[89] परमात्मा के श्रेष्ठ नाम की शरण मे जाना चाहिए।[90] इसके लिए ज्ञान आदि की विशेष आवश्यकता नही है। अपनी बुद्धि या साधन आदि पर विशेष भरोसा न करके केवल उनकी (परमात्मा) कृपा की प्रतीक्षा करते रहनेवाले साधक (भक्त) अवश्य ही भगवत की कृपा-प्राप्ति करता है। परमात्मा योगमाया का पर्दा हटाकर उसके सामने अपने सच्चिदानद रूप मे, प्रकट हो जाते हैं।[91] कठोपनिषद 'आत्मा', 'परमात्मा'[92] के साथ ही दोनो के मध्य ,'योगमाया'[93] की उपस्थिति को

मध्यकाल मे श्रेष्ठ सत हिंदी साहित्य को दिये। अभी तक धर्म व आध्यात्मिक मामलो मे दक्षिण सदैव उत्तर का ऋणी रहा परतु अब धर्म तथा दर्शन के क्षेत्र मे नया योगदान देकर दक्षिण ने उस ऋण को एक बडी सीमा तक चुका दिया।[124] पूर्व मध्य युग भक्ति के उत्थान का द्वितीय काल था।[125] इस काल के दक्षिणी भक्त सत अधिकाशतया तमिल देश के वासी थे। वे सभवत बहुत शिक्षित न थे।[126] परतु उन्होने इसे जन-आदोलन का रूप प्रदान किया। इन सतो द्वारा प्रतिपादित भक्ति नये प्रकार का स्वरूप लेकर आयी थी। ईसा के पूर्व और बाद की सदियो के भागवतो की शात और गौरवशाली शरणागति से वह अलग थी। वह पूर्णरूपेण सरल समर्पण तथा विनय पर आधारित थी, क्योकि इस काल के सत और आचार्य सभी प्रकार के साप्रदायिक दृष्टिकोण से परे थे।[127] दक्षिण मे भी भक्ति दो स्तरो पर विकसित हुई। सत भक्तो ने जहा उसे भावनामय सरलता दी वहीं आचार्यो ने उसे दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान की।[128A]

दक्षिण मे वासुदेवोपासना की स्थापना पूर्व मे हो ही चुकी थी। ईसा पूर्व के प्रथम शतक के आसपास महाराष्ट्र मे सकर्षण तथा वासुदेव पूजे जाने लगे थे।[128] भागवत मे उल्लिखित द्राविड भक्त ग्यारहवी सदी के पहले ही[129] इस क्षेत्र में भक्ति-प्रचार मे सलग्न हो गए थे। ये आळवार द्राविड-भक्त ही गीता तथा रामानुज के बीच की कडी थे।[130] शैव और वैष्णव सतो ने शकराचार्य के पूर्व ही भक्ति की सुगबुगाहट आरभ कर दी थी।[131]

भक्ति की यह भावना दक्षिण भारत मे शैव सिद्धातियों के माध्यम से ईसा के पहले ही विद्यमान थी। ईसा की पाचवी छठी शताब्दी मे बौद्ध-जैनो के प्रतिरोध के रूप म वैष्णवो के साथ ही शैव भक्तो ने भी सिर उठाया और अपनी पूरी शक्ति से बौद्धो-जैनो के पैर उखाड दिये।[122] ये भक्त तमिल देश को जैन बौद्ध होने से बचाना चाहते थे।[133]

शैव-नायनार भक्त

इनम शैव भक्तो का योगदान विशेष उल्लेखनीय था। इन शैव भक्तो ने, जिनमे वीर शैव विशेष उल्लेखनीय हैं, अपने पूर्ववर्ती नाना शैव भक्तिपरक सप्रदायो से प्रेरणा ली थी। वीर शैवो के कई शताब्दी पहले तामिलनाडु मे शैव भक्तो ने व्यापक भक्ति आदोलन चलाया था।[134] ये शैव भक्त 'नायन्मार' के नाम से दक्षिण मे विख्यात थे।[135] इन्हे 'नायनार' भी कहा गया।[136] परपरानुसार इनकी सख्या 63 थी। इन नायनारो ने अपने लाखो समयुगीनों को भक्ति गीतो से ओतप्रोत किया। इनमे करइक्कल की एक नारी भक्त, आदनूर का पारिया,[137] नदन तथा पल्लव सेना का सेनापति श्रीतोन्दर भी थे।[138] नम्बी-आन्दार-नम्बी ने प्राप्य शैव भक्ति गीतों को ग्यारह 'तिरुमुरई' नामक ग्रथो मे सकलित किया। इनमे मे आरभिक सात

सयुक्त रूप से 'देवारम' (भगवत-प्रेम के हार), माणिक्य वाचकर कृत आठवा 'तिरुवाचकम्' (पवित्र वाणी) एव नवम 'तिरू इशैया' कहलाते हैं।[139] इन भक्तो को 'समयाचार्य' भी कहा गया, क्योकि इन्होने समय समय पर विदेशी धर्म-प्रचारको से शास्त्रार्थ करके अपने अकाट्य तर्कों द्वारा उनके धर्मों की न केवल नि सारता घोषित की, बल्कि अपने निर्मल हृदय से निकले हुए भक्ति भरे भावो से ऐसे मधुर गीत गाये कि तामिलनाडु की जनता का हृदय शिव-भक्ति से ओतप्रोत हो गया।[140] इन ग्रथो ने शिव भक्ति के साथ ही शैव-सिद्धातो का भी प्रतिपादन किया। विशेषकर 'तिरूमुरै', जो 'तिरूमदिरम' भी कहलाता है, मे शिव-दर्शन से सबधित 'पति पशु-पाश' की व्याख्या की गयी। 'तिरुमुरै' को पेरियपुराणम' भी कहा गया।[141]

शैवो मे तिरूनावुकरसु अप्पर, तिरूज्ञान सबधर, सुदरार तथा माणिक्य-वाशग नामक चार श्रेष्ठ सत हो गए हैं। अप्परार ने शिवभक्ति मे श्रेष्ठतम भक्ति-गीतो का प्रणयन किया। एक स्थान पर वह स्पष्ट कहता है—' धर्म के बाह्य बधन बेकार हैं, हमे मात्र उस प्रभु (शिव) की दया पर ही आधारित रहना चाहिए। वह जानता है कि कोई भी कर्मकाण्ड सहायक नही होते। गगा-स्नान, कन्याकुमारी की तीर्थयात्रा, वैदिक मत्रो का उच्चारण और शास्त्रो का अध्ययन, सन्यास, उपवास आदि मोक्ष के मार्ग मे बिलकुल भी सहायक नही होते। उनकी तो भक्ति ही श्रेष्ठ है।"[142] वह पुन कहता है—"वह हमारा पिता और माता है। वही हमारा बधु-भगिनी है। वह तीनो लोको का सर्जक है। वह पुष्य नगरी का वासी अदृश्य प्रभु हम सबका सहायक-रक्षक है।"[143] अप्पार ने 81 वर्ष तक घूम-घूमकर शिव-भक्ति का प्रचार किया।[144] अपने जीवन मे उसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा पर शिव-कृपा से वह सभी मे सफल हुआ। अप्परार का 'शिव' ब्रह्मा विष्णु, अग्नि, आकाश, पर्वत और समुद्र सभी मे छाया हुआ है।[145] अप्परार के भक्ति-गीतो ने तमिल देश को शिव-प्रेम से ओतप्रोत कर दिया।

तिरूज्ञान सबधर दक्षिण मे नाना सबधर नाम से विख्यात था। अपनी कम आयु मे ही उसने दस हजार भक्ति-गीतो की रचना कर डाली थी।[146] सबधर ने अप्परार के कार्य को गति प्रदान की। कौंडिन्य गोत्रीय यह ब्राह्मण पुत्र तजौर जिले के शियाली ग्राम का वासी था। आज भी तमिल देश के अनेक शिव मदिरो मे नाना की भक्ति की जाती है। ऐसी मान्यता है कि नाना ने मदुरा के कई जैन विद्वानो को शास्त्रार्थ म न केवल परास्त किया वरन वह पाण्डय राज को शैव धर्म मे दीक्षित करने मे भी सफल हुआ।[147] अपने शिव का वर्णन करते हुए सबधर कहता है—"सर्प उनका कर्णफूल है, वह बैल की सवारी करते हैं और उनका मस्तक शुद्ध, धवल अर्द्धचद्र से सुशोभित है। वे भस्म से मडित हैं, पुष्प की सुगधित मालाए उनकी शोभा को बढा रही है • वास्तव मे वह चोर है जिसने मेरी आत्मा को चुरा लिया है।"[148] नाना, शिव भक्ति की प्रेरणा देता है, क्योकि "माता पिता

की मृत्यु के बाद तुम्हारी बारी आयेगी, क्योंकि यम उस क्षण की राह देख रहा है जब प्रत्येक को ले जाए। हे आत्मा, तुम अपने को यहा सदैव के लिए बाध रखना चाहती हो पर तुम्हे भी खीच लिया जाएगा। यदि तुम कल्याण व परम सुख चाहती हो तो मृत्यु का भय छोडकर तिरूवारूर की शरण लो।"[149]

सुदरार अथवा सुदरमूर्ति तृतीय नायनार सत था, जिसने भक्ति-आदोलन को विकासमान बनाने मे स्पृहणीय सहयोग दिया था। वह 'देवराम' के सहयोगी लेखको मे से एक था। सबधर के समान सुदरमूर्ति भी ब्राह्मण था। उसका जन्म दक्षिण अर्काट जिले के नावलुर मे हुआ था। जाति-बधनो मे उसका विश्वास न होने से उसने विजातीय स्त्रियो से दो बार विवाह किये। सुदर की सुदरता से प्रभावित हो उसका लालन-पालन एक स्थानीय शासक नरसिंघ मुनयदारियन ने किया। सभवतया वह क्षत्रिय था। उसकी एक पत्नी तिरूवालूर की नर्तकी और दूसरी तिरूवारियर की शूद्रा थी।[150] अन्य नायनार सतो के समान उसके विषय मे भी अनेक सिद्धि-कथाए प्रचलित थी। सुन्दरमूर्ति के भक्ति-भजनो मे जन्म-मृत्यु के चक्कर से भक्ति के माध्यम से छुटकारा पाने की तीव्र आकाक्षा है। वह कहता है—"न मैं मरूगा न पुन जन्म लूगा और न ही जन्म लेकर वृद्धावस्था को प्राप्त होऊगा, क्योकि मैं तेरे कमल रूपी चरणो का भक्ति-भाव से ध्यान कर अपने सासारिक बधनो को सदैव के लिए काट फेंकूगा।"[151] "हे स्वामी, मैं तुम्हारे चरणारविदो मे पहुच गया हू, क्या तुम मुझे नही बचाओगे ?"[152] यद्यपि सुदरार स्वत को "शिव-भक्तो और उन सभी का दास दर्शित करता है जो उसके आराध्य शिव के साथ हैं" परन्तु उसकी भक्ति मे दास्य भाव की अपेक्षा 'सख्य-भाव' है। इसी कारण दक्षिण में सुदरार को 'तम्बिरान-तोलन' Tamb ırān-Tolan 'ईश्वर का मित्र' बिरुद से भूषित किया गया।[153]

मानिक्यवाशगर ने सुदरार के एक शताब्दी[154] के बाद भक्ति की धारा को आगे बढाया। उसे मानिक्यवाचकर भी कहा जाता है। तिरूवयूर के ब्राह्मण परिवार मे जन्मा यह सत इन चारो म श्रेष्ठ स्थान रखता है। इस प्रतिभावान भक्त ने सोलह वर्ष की अल्प आयु मे सस्कृत मे उच्चता पा ली थी।[155] परिणमस्वरूप एक परपरानुसार उसे पाण्ड्य नरेश ने अपना प्रधानमत्री बना लिया। परन्तु शीघ्र ही वह यह पद त्याग कर भक्ति के प्रचार मे लग गया। शास्त्रार्थ मे उसने कई बौद्ध व जैन पडितो को परास्त कर समस्त तमिल देश को शिव भक्ति से ओतप्रोत कर दिया। दक्षिण को जिस व्यक्तिगत देवता की भक्ति उपासना की आवश्यकता थी उसे माणिक्यवाशगर ने पूरा किया।[156] उसके भावप्रवण भक्ति से पूरित भजन 'तिरूवासगम्' कहलाते हैं। माणिक्य तो अपने शिव का ही अनन्य भक्त है। वह स्वीकारता है, 'इन्द्र, विष्णु या ब्रह्म के देवत्वमय मोक्ष का मैं काक्षी नही हू, मैं तो तेरे सतो के प्रेम का पुजारी हू।"[157] 'उसकी सुदरता के दिग्दर्शन ने मुझे उसका

बना दिया है। मैं उससे मिलने के लिए व्याकुल हू।"[158] माणिक्य की प्रपत्ति और शरणागति अन्य सतो से अधिक पूर्ण है।[159] इसीलिए उसके रचित 'तिरुवाशगम्' मे मानवता और विनम्र दीनता के दर्शन होते हैं।

इन चार सर्वोत्तम सत-भक्तो के अतिरिक्त भी अनेक शैवो ने भक्ति के प्रचार मे अपना जीवन अर्पित किया था। इनमे तिरुमुलर, नक्किरार, नबियादार नबी, शेक्किरार, अरुण्डनदि शिवचारियार, मेयकडर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन शैव सतो ने रहस्यात्मक धार्मिक अनुभवो का जो निरूपण किया, वह भक्ति साहित्य का अनुपमेय परिच्छेद है। यद्यपि उन्होंने जाति-पाति, वेद, कर्मकाड का विरोध किया, परतु वे कभी भी धार्मिक परपरा से अलग न रहे। इसीलिए एक स्थान पर उन्होंने कहा—"वेद एक गाय है, आगम उसका दूध, तेवाराम-तिरुवाशगम् उससे निकला हुआ घी है और मेयकडर का शिव ज्ञान बोधम उस घी का सार है।"[160] शिव-भक्ति से आप्लावित इन सतों ने तमिल देश की लाख लाख जनता को भक्ति-गगा मे अवगाहित कर दिया।

वैष्णव-आळवार-भक्त

भक्ति को सर्वजन-प्रिय बनाने मे दक्षिण के वैष्णव-आळवारो का विशिष्ट योग रहा। शैवो की अपेक्षा वैष्णवो ने इस क्षेत्र मे अधिक काम किया। भागवत पुराण मे भविष्य-वाणी शैली मे कलियुग मे नारायण भक्तों का द्राविड देश मे होना लिखा है।[161] इस आधार पर आळवारो की तिथि निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है। इन्हे 'आडवार'[162] और 'आळवार'[163] नामो से भी सबोधित किया गया है। आळवार का शाब्दिक अर्थ 'डूबे हुए' होता है, अर्थात जो भक्त ईश्वर के ध्यान मे डूबे हुए हैं, वे आळवार ही हैं।[164] इन्हे 'ज्ञान की गहनता से पूरित' भी कहा गया।[165] आड-वार का अभिप्राय कदाचित ऐसे महात्मा से था जिसने ईश्वरीय ज्ञान-भक्ति के समुद्र मे भलि भाति अवगाहन कर लिया हो और जो निरतर परमात्मा के ध्यान मे ही लीन रहा करता हो। फिर 'सत' शब्द की भाति 'आडवार' भी कालातर मे भक्तो के लिए रूढ-सा हो गया।[166] इनका प्रमुख तत्व प्रेममय भक्ति और शरणा-गति ही थी, अतएव इन्हे भगवत्प्रेम की गहनता का अनुभवी माना जा सकता है। *भगवत्प्रेम मे गहरे डूबे इन आळवारों न जो आनदानुभूति पायी उसे जन जन मे* अपने भजनों के माध्यम से बिखेर दिया। इन आळवारो की सख्या 12 है। इनका काल ईसा पूर्व की पाचवी शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी के मध्य रखा गया।[161] परतु बहुसख्यक इतिहासकार इन्हे पूर्व मध्य युग का ही मानते है।[168]

आळवार सतो के तमिल के साथ ही सस्कृत नाम भी मिलते हैं। डा० एम० कृष्णस्वामी आयगार ने इन्हें तीन वर्गों मे रखा है, और वशावली के आधार पर उनका पूर्वापर-क्रम निर्धारित किया है।[169] प्रथम श्रेणी मे—पोयगै आळवार

(सरोयोगिन), भूतत्तार (भूतयोनिन), पैयाळवार (महायोगिन या भ्रान्त-योगिन), तिरूमलिशै आळवार (भक्तिसार) है। इन्हे प्राचीन भक्त कहा गया। दूसरे वर्ग मे—नम्म आळवार (शठकोप), मधुरकवि आळवार, कुलशेखर आळवार, पेरि आळवार (विष्णुचित्त) तथा आडाल (गोदा) थे; इन्हे मध्य-कालीन माना गया। तृतीय श्रेणी मे—तोडरडिप्पोडि (भक्ताडि घ्ररेणु, तिरुप्पण आळवार (योगी वाहन), तिरूमगै आळवार (परकाल) थे। ये अतिम थे। यद्यपि इन्हे तमिलवासी माना गया, परन्तु ये दक्षिण के विभिन्न भागो के थे। प्रथम चार आळवार पल्लव देश से; जब कि अतिम तीन चोल देशवासी थे। कुलशेखर चेर के और बचे हुए पाण्ड्य नाडू के थे। इनमे भी नाम आळवार और आडाल के रहस्यवादी गीतो ने इस क्षेत्र मे बडी लोकप्रियता पायी।[170] इनके द्वारा रचित प्रबधो की सख्या चार हजार है। इन्हे 'नालियार-प्रबधम्' मे सकलित किया गया। *ज्ञान, भक्ति, प्रेम, सौंदर्य तथा आनदानुभूति से ओतप्रोत होने के कारण* 'नालियार प्रबधम्' तमिल भाषा-भाषियो के मध्य 'द्राविड-वेद' अथवा 'द्राविडोप-निषद' *के रूप मे विख्यात हैं। जन अथवा लोक-भाषा मे लिखित होने के कारण* ये जन-जन मे प्रिय हुए। आज भी सादर इन्हे गाया जाता है।

आळवारों ने महाकाव्यो और पुराणो से ही प्रेरणा प्राप्त की थी।[171] इसी कारण से वे जाति-पाति, वर्णभेद, स्त्री-पुरुष तथा पडित-पामर का भेद नही मानते थे।[172] नायनारो के समान आळवार भी समाज के विभिन्न वर्गों से आये थे। उनका सामान्य ध्येय ईश्वर-प्रेम-भक्ति की प्राप्ति ही था।[173] वे 'भागवत एवं गीता' के इस दर्शन मे विश्वास करते थे कि भगवान एक है, वह प्रेमपूर्ण और दयामय है। वे भक्ति तथा प्रपत्ति द्वारा जाति-कुल, स्त्री पुरुष इत्यादि के भेद-भाव बिना सबको प्राप्त होते हैं।[174] इसीलिए आळवारो मे आडाल नामक स्त्री-भक्त, वल्लाल जाति से नामाळवार, डाकुओ मे से तिरूमगई,[175] राज-परिवार से कुल-शेखर और ब्राह्मणो से पेरियाळवार मिलते हैं। भागवतो के समान इनका भी विश्वास था कि 'कुल तरुम शैल्व तदिडुम' अर्थात भागवत धर्म ही भक्तो को कुल, सम्पत्ति आदि प्रदान करता है।[176] उन्होने भागवतो का मत्र 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' अपना कर, वासुदेव-नारायण-विष्णु-कृष्ण की अनन्य भक्ति की साधना मे बाह्य-जगत को भुला दिया।[177] इस समय तक भागवत धर्म, पाचरात्र, सात्वत और एकातिक धर्म[178] का ही पर्यायवाची बन गया था। गीता, पुराण, भागवत एव महाकाव्य उसके प्रेरणा-स्रोत थे।

अधिकाश आळवार विष्णु के परम भक्त और नायनारो के समान बौद्ध-जैन विरोधी थे।[179] परिणामस्वरूप इन्होने समस्त दक्षिण मे उनसे शास्त्रार्थ आदि कर उन्हे प्रभावहीन बना दिया। ये स्वय इतने प्रसिद्ध हो गए कि दक्षिण भारत के अनेक मदिरो मे इनकी मूर्तिया स्थापित कर उन्हे देव रूप मे पूजा जाने लगा। इनके

जीवन की प्रभावशाली घटनाएं नाटक के रूप मे आज भी उपदेश के लिए दिखलाई जाती हैं।[180] सबसे अधिक भजन तिरूमगई ने लिखे। वे नामाळवार सतो मे सर्वोच्च माने गए। नाम के भक्तिगीतो—'तिरूवोयमोली', 'तिरुवैश्वरीयम', 'तिरूविरुत्तम' तथा 'तिरूवदादि' की गणना चार वेदो के समान, दक्षिण मे की जाती है।

प्रथम तीन आळवार—पोयगै, भूतत्तार और पेयाळवार—अत्यत प्राचीन और समकालीन माने जाते हैं। इन तीनो की जीवनी के साथ जनश्रुतियां जुडी हुई हैं। जिसके अनुसार तीनो का जन्म क्रमश कमल पराग, माधवी पुष्प और लाल कमल अथवा इदीवर से हुआ था। ये तीना पुष्प, पुत्र-ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के अवतार थे। इन्होंने अपना अधिकांश समय तीर्थ-यात्रा मे बिताया। इनमें से प्रत्येक ने एक हजार भजनो की रचना की थी जिनमे विष्णु के विभिन्न अवतारो की प्रशसा की गई। मुख्य रूप से ये कविताए प्रभु के प्रति उत्कट प्रेम, रहस्यात्मक याचना और शरणागति का मुख्य आधार थी।[181] भूतत्तार ने 'माधव-नाम स्मरण' को वेदादि का निचोड माना। पोयगै ने लक्ष्मीपति की आराधना की प्रेरणा दी ताकि मृत्यु के आसपास घूमने वाले जीवन को मोक्ष दिलाया जा सके। पेयाळवार ने 'चक्रधारी' की दर्शनानुभूति प्राप्त कर ली।[182] तिरुमलसै ने बौद्धो-जैनो के साथ शैवो का भी सामना किया, क्योकि वह कट्टर वैष्णव था। उसने विष्णु की प्राप्ति के लिए कठोर सयम-अनुशासन का उपदेश दिया। "आज, कल या भविष्य मे उस भगवान की अनुकम्पा प्राप्त होगी, क्योकि मैं तुम्हारी अपेक्षा किसी अन्य की शरण मे नही जाऊगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि, नारायण, आप कभी भी मेरा परित्याग नही करेंगे।[183] ये 'विष्णु योगी' नाम से भी विख्यात हुए। एक अन्य पद्य में वे प्रार्थित हैं, "मैंने ब्राह्मणो की श्रेष्ठ जाति मे जन्म नही लिया। मुझे चार वेदो का ज्ञान भी नही। इद्रिय निग्रह किसे कहते हैं, यह मुझे मालूम नही। मैं तो हे श्रीहरि, तेरे पद्मपाद को ही जानता हू। हे देव, तुम्हारे इन स्वर्ण-चरणो के सिवाय मेरा कौन रक्षक है।'[183A]

नामाळवार विष्णु के उत्कट भक्त थे। उनकी कविताओ मे प्रभु की अनन्य भक्ति के साथ ही रहस्यवाद का पुट भी दृष्टिगोचर होता है। नामाळवार ने "सृष्टि की समस्त वस्तुओ और धर्मों मे उसी प्रभु के दर्शन किए। उन्हे ज्ञान व इद्रियो से नही पाया जा सकता, क्योकि वे तो आत्मा, जो जीवन का स्रोत है मे वास करते हैं। सासारिक विघ्न बाधाओ से हटकर ध्यान करने पर ही उन्हे पाया जा सकता है।"[184] ये विष्वक्सेन के अवतार माने गए। 'तिरूक्कुरूकर' गाव के ब्राह्मण परिवार मे जन्मे नाम ने 35 वर्ष तक दक्षिण मे भक्ति का प्रचार किया। ये शठकोप या पराशकु मुनि के नाम से जाने गए। शठकोप की उपासना गोपी-भाव की थी। इन्होने भगवान को नायक और अपने को नायिका रूप में अकित किया।[185] 'अपनी कृपा अभी तक आपने अपने कृपाकाक्षी पर नही बरसाई है। आपकी उदासीनता से त्रस्त होकर वह प्राण त्यागे, इसके पूर्व ही कृपया थोडी दया बरसा दें।"[186] नाना

स्पष्ट कहता है, "मेरे-तेरे के भाव को त्याग कर प्रभु की शरण मे जाना ही श्रेष्ठ है।"[187] वह पुन प्रार्थित है, "हे महाप्रभु श्रीरग, गजेंद्र के मोक्षदाता, अपने दास पर भी जागृत हो अपनी कृपावृष्टि करिये।"[187] अपनी दास्य भक्ति की दीनता को नाम ने प्रकट किया, "प्रभो, यह सत्य है कि मैं बडा पापी हू। दामोदर, हे दामोदर, पुकार-पुकार कर मेरा मन फटा जा रहा है। आसुओ की धार बह रही है। आप मुझ पापी को दर्शन दें। मुझे 'तू पापी है' कह कर चले जायें। इसी बहाने आपके दर्शन का सौभाग्य तो एक बार मुझे मिल जाएगा।"[188A]

मधुरकवि ने ब्राह्मण होते हुए भी अपने आभिजात्य का त्याग कर दिया था। तीर्थयात्रा पर वे उत्तर भारत भी आये थे। ये नामाळवार के शिष्य थे। उन्ही के कारण वे वैष्णव बने। अपने गुरु की प्रशसा मे उन्होंने कई गीत रचे।

केरल-राज कुलशेखर राजा होते हुए भी भक्त, ज्ञानी और विरक्त थे। वे प्रभु-भक्ति मे निमग्न रहते थे। जब उनकी भक्ति दिनोदिन पूजा-उपासना मे बढती ही चली गई तो राजपाट त्याग कर वे श्रीरगम मे भगवान रगनाथ की पूजा-उपासना मे निमग्न रहने लगे। तब उन्होंने 'मुकुदमाला' की रचना कर डाली। भाषा की मधुरता और भावो की कोमलकात पदावलियो के कारण यह दक्षिण की गीत-गोविंद बन गयी। कुलशेखर कृष्ण-भक्ति की उत्कटता मे अपने को पागल कहने लगे,[188] ' वे (सासारिक बधनो मे बधे) मेरे लिए पागल के समान हैं। और मैं उन्हें पागल लगता हू। पर इन चर्चाओ से क्या लाभ ? हे कृष्ण रगनाथ, मैं तो तेरे लिए पागल-विह्वल हो रहा हू।"[189]

पेरियाळवार (विष्णुचित्त) ने रससिक्त सैकडो भक्त पदो की रचना की। ये 'तिरूपल्लाडु' और तिरूमोळि' मे सकलित किये गये। तिन्नावेली के विल्लीपुत्तर नामक स्थान मे श्री मुकुदाचार्य और पदमा के यहा इनका जन्म हुआ। ये गरुड के अवतार माने गये। भक्ति के वात्सल्य रूप का सुदरतम आदर्श इन्होंने प्रस्तुत किया। जिससे प्रभावित होकर पाड्य राज वल्लभदेव ने इन्ह 'पिट्टर पिरान'[190] की उपाधि से भूषित कर अपना गुरु बना लिया।[191] आळवारो मे एकमात्र भक्त नारी आडाल (गोदा) अथवा रगनायकी, विष्णुचित्त की गोदी-पुत्री थी। उसने उत्कट भक्तिभाव मे अपने को प्रभु की पत्नी मान लिया। वह दक्षिण की मीरा थी। स्वत को गोपी मान कर उसने कृष्ण की उपासना की। उसके भक्ति गीत नाभियार तिरुमोलि' तथा 'तिरूप्पावई' मे सकलित हैं। आडाल की भक्ति माधुर्य से पूर्ण गोपी भाव लिए हुई थी।[192] उसके गीतो मे 'यमुना', 'मथुरावासी कृष्ण' और 'ग्वालो' का उल्लेख मिलता है।[193] वह एक पद्य मे कहती है, ' हे गोविंद, हम तो तेरे दास हैं, हम तो सात जन्मो तक तेरी ही सेवा (भक्ति) करेंगे।"[194] इस प्रकार उसने एक रहस्यात्मक सबध अपने कृष्ण से स्थापित कर लिया था।[195]

तिरूप्पन (योगवाह), तोडरडिप्पोलि (भक्तपदरेणु) तथा तिरूमगई (परकाल)

ने इस भक्ति धारा को आगे बढाया। ब्राह्मण तोडरडिप्पोलि रगनाथ भगवान के भक्त थे। एक सुदर देवदासी 'देवदेवी' के रूपजाल मे फसने के कारण इन्हे कारा-वास का दु ख भी उठाना पडा। परतु शीघ्र ही वे रगनाथ की उपासना मे लीन हो गए। इन्होने कई भक्ति पदो की रचना की। अत्यज जाति के तिरुप्पन ने अपनी भक्ति के बल पर आळवार सतो मे स्थान बना लिया। ये 'मुनिवाहन' भी कहलाते थे। यद्यपि इन्हे श्री रगजी के दर्शन का लाभ अपनी जाति के कारण न मिला परतु स्वय ये भक्तो मे आराध्य बन गए। 'अमलनादीप्पीरान' मे रचित इनके भजनो मे 'लक्ष्मी रगनाथ' की प्रार्थना मुक्त हृदय से की गई है।

शैव परिवार मे जन्मे, चोल देश वासी तिरूमगे अपनी योग्यता से सेनापति के पद पर जा पहुचे। परतु अपनी पत्नी सुदरी कुमुदवल्लभी की प्रेरणा से ये विष्णु-उपासक बन गए। इनका जीवन विविधता लिये था। थोडे समय य डाकू भी रहे। परतु स्वय विष्णु ने इन्हे भक्ति-मत्र देकर इनका उद्धार किया। इनके रचित छ पद्यग्रथ तमिल के वेदाग माने जाते हैं। इन्होंने 'दास्य-भाव' से विष्णु की आराधना की थी। अन्य सतो मे इड्डेक्काडर, कल्लाडर, और पेरून्देवनार ने भी भक्ति के प्रचार मे बडा योग दिया। पेरून्देवनार ने 'तमिल महाभारत' और कल्लाडर ने 'कल्लादम' की रचना थी। इन सभी सतो ने भक्ति की जडें दक्षिण मे पूर्व मध्य युग मे इतनी गहरी जमायी कि अमर बेल बनकर वह मध्य युग मे उत्तर भारत म छा गयी। इन्होने भक्ति के जिन रूपो—वात्सल्य, दास, गोपी या मधुर तथा सख्य—का उपयोग किया, उ ह ही सूर-तुलसी आदि ने हिंदी मे प्रतिष्ठित किया।

दक्षिण भारत के भक्ति के आचार्य

आळवार भक्तो ने भक्ति के भावनात्मक पक्ष को जहा परिपुष्ट किया, वही आचार्यों ने उसे दार्शनिक-बौद्धिक पृष्ठभूमि प्रदान कर दी। इसका यह अर्थ नही कि आळ-वार 'जीव माया ईश्वर' के तत्त्वो से अपरिचित थे। वरन् इनसे सबधित दार्शनिक विचार उनकी भक्ति-रचनाओ मे बिखरे पडे थे।[196] इन आचार्यों ने तो उन्हे व्यवस्थित कर दर्शन की लाक्षणिक भाषा प्रदान की। उनके प्रेरणा-स्रोत तो ये आळवार ही थे।[197] आळवारो की शरणागति, जन्म-मृत्यु, जीव-परमात्मा के सबधो को ही इन आचार्यों ने उठाया था। उन्होंने उसके भावनात्मक पक्ष के स्थान पर इन तत्त्वों पर अधिक जोर दिया। इनका योगदान आळवारो की भक्ति के साथ वेद प्रतिपादित ज्ञान तथा कर्म के सुदर समन्वय मे था। इन आचार्यों ने भक्ति आदोलन को एक नूतन धारा मे प्रचारित किया। इन्होने अपने गहन अध्ययन के बल पर तमिल एव सस्कृत वेदो मे सामजस्य का दिग्दर्शन कराया। सामजस्य की इसी प्रवृत्ति के कारण ही ये 'उभय वेदाती' कहलाये।[198] इन्ही के कारण यह 'श्री वैष्णव' नाम से भी जाने गये। व्यवहार पक्ष मे इनका लक्ष भक्ति या प्रपत्ति तथा

अध्यात्म पक्ष मे यह 'विशिष्टाद्वैत' मत कहाया ।[199]

वैष्णव दर्शन के प्रवर्त्तको मे आद्य आचार्य रगनाथमुनि हैं जो 'नाथ मुनि' नाम से अधिक विख्यात थे। इन्हे रगनाथाचार्य भी कहा जाता था। ये आळवार परपरा से सबधित थे। इनकी गणना शठकोपाचार्य की शिष्य-परपरा मे की जाती है। ये मधुरकवि (जो शठकोपाचार्य के शिष्य थे) के शिष्य पराकुशमुनि के शिष्य थे।[200] इन्होंने आळवार भक्तो की ईश्वरोपासना पद्धति और प्रेम-साधना पथ को दार्शनिक स्तर पर उचित ठहराया।[201] अपने 'न्याय तत्त्व' नामक ग्रथ मे इन्होंने 'विशिष्टाद्वैत दर्शन' का पहली बार प्रणयन किया। इसके अतर्गत नाथमुनि ने 'प्रपत्ति' अथवा प्रभु के प्रति पूर्णरूपेण शरणागति को मान्यता प्रदान की।[202] उनकी यह मान्यता 'गीता' तथा पाचरात्र दर्शन पर ही आधारित थी। अधिकाश आळवार सतो ने इसे व्यावहारिक रूप प्रदान कर ही दिया था। नाथमुनि ने पूर्व-वर्त्ती आळवार सतो के बिखरे हुए अनेक भक्ति-पदो का सकलन कर न केवल उनका उद्धार किया वरन् उसे दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर उसका प्रचार भी किया। इन्होंने प्रभाकर, सर्वस्वामिन, कुमारिल और मडन द्वारा प्रतिपादित पूर्व मीमासा अथवा कर्मकाडी सिद्धात के विरोध मे भक्ति का समर्थन किया।[203] जिसको उनकी शिष्य परपरा ने आगे बढाया। इन्होने शकराचार्य के अद्वैत का भी समर्थन नही किया। इनका दूसरा ग्रथ 'योग रहस्य' था जिसका उल्लेख 'वेदातदेशिक' मे किया गया है।

रगनाथ द्वारा प्रणीत आचार्य पीठ पर उनके शिष्य आचार्य पुडरीकाक्ष अथवा उदयकोदर आसीन हुए। उन्हे यह विरुद अपने गुरु से ही मिला था। उनके उप-रात राम मिश्र को आचार्यत्व मिला। इन दोनो ने गुरु-परपरा का निर्वहन मात्र किया। परतु इनके शिष्य और रगनाथ के पौत्र श्री यामुनाचार्य ने इस क्षेत्र मे प्रशसनीय काम किया। यामुनाचार्य को 'आलवदार' अर्थात् 'विजयी' का विरुद मिला। वीरनारायणपुर मे इनका जन्म हुआ था। अपने गुरु राम मिश्र के निर्देश पर इन्होन राजसी जीवन का परित्याग कर सन्यास ग्रहण कर, बाकी का जीवन वैष्णव धर्म के प्रचार मे लगाया। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अनेक शिष्य व अनुयायी इनके पास एकत्र हो गए। इन्होने भक्ति-दर्शन सबधी साहित्य की रचना की, उसका प्रचार किया। इस हेतु शास्त्रार्थ करके अपने विरोधियो को परास्त किया। इन्होंने 'गीतार्थ-सग्रह', 'श्री चतु श्लोकी', 'सिद्धित्रय' और 'महा-पुरुष निर्णय' मे विष्णु की श्रेष्ठता दर्शायी। अपने 'आगम प्रामाण्य' मे पाचरात्र की प्रामाणिकता सिद्ध की तथा 'आलवदार स्तोत्र' मे 'आत्म समर्पण' जो कि भक्ति का मुख्य बिंदु है, के सत्तर पद्यो द्वारा प्रपत्ति सिद्धात का निरूपण कर डाला।[204] यामुनाचार्य ने 'आत्मा' के वास्तविक अस्तित्व के साथ ही उसकी स्वतत्र सत्ता को स्थापित किया था।[205] और 'ब्रह्म' के प्रति उसके सबधो का सुदर विवेचन किया।

उन्होंने आलवदार स्तोत्र मे ज्ञान-कर्म के स्थान पर भक्ति की श्रेष्ठता कायम कर दी। एक स्तोत्र मे वे स्पष्ट कहते है, 'हे भगवान, धर्म मे मेरी निष्ठा नही है, जिससे कर्मकाड का उपासक बन मैं स्वर्ग का अधिकारी बनू। न मैं आत्मज्ञानी हू कि ज्ञान के बल पर मुक्ति पा लेता। बस मुझ निर्धन की तो आपके चरण कमलो मे ही गति है। मैं आपकी शरण को छोड कर कही और नही जा सकता, क्योकि मेरे पास तो आपके चरण कमलो की भक्ति भी नही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके चरण-कमल ही मेरे उद्धार का एकमात्र शरण-स्थल हैं।''[206]

रामानुजाचार्य ने वैष्णव आचार्यों मे सर्वाधिक कीर्ति पायी। अद्वैत दर्शन मे जो स्थान आद्यशकराचार्य को मिला वही विशिष्टाद्वैत मे रामानुज को प्राप्त हुआ। सन् 1017 ई० मे मद्रास के निकट श्री पेरूमबुदूर मे केशव और कातिमति के यहा इनका जन्म हुआ था। ये यामुनाचार्य के सबधी और श्री शैलपूर्ण के भागिनेय थे। शकराचार्य के दर्शन से प्रभावित होकर इन्होने उस सप्रदाय के आचार्य यादव प्रकाश का शिष्यत्व ग्रहण कर कुछ समय तक उसका अध्ययन किया।[207] परतु शीघ्र ही मतभेद हो जाने के कारण ये शकराचार्य के सप्रदाय को छोडकर वैष्णव सप्रदाय मे सम्मिलित हो गए। श्रीरगम मे यामुनाचार्य की मृत्यु के बाद ये आचार्य पद पर अधिष्ठित हुए। इन्होने अपना अध्ययन जारी रखा। इन्होने सत नाबि से अष्टाक्षर मत्र 'ओम नमो नारायण' प्राप्त कर उसका सभी प्राणियो के उद्धार हेतु प्रचार किया।[208] अपनी पत्नी से विग्रह हो जाने से ये सन्यासी बन गए और तब इन्होंने अपने अनुयायियो के साथ उत्तर भारत की यात्रा काश्मीर तक कर भक्ति का प्रचार किया।[209] चोल नरेश कोलुतुग प्रथम से विग्रह हो जाने के कारण उन्हे काफी कष्ट उठाने पडे। तब उन्होने होयसलराज विष्णुवर्धन की राजसभा मे शरण ली और उन्हे वैष्णव धर्म मे दीक्षित किया। इस प्रकार रामानुज का जीवन विविधता लिए था।

अपने गुरु यामुनाचार्य के निर्देश पर रामानुज ने उसी 'ब्रह्मसूत्र' को आधार बना कर अपने विशिष्टाद्वैत और भक्ति-दर्शन का प्रतिपादन किया, जिस पर शकराचार्य ने भाष्य लिखकर अपने अद्वैत को प्रणीत किया था।[210] इसका नाम 'श्री भाष्य' था। वेदात सार' मे रामानुज ने भी ब्रह्मसूत्र की सक्षिप्त टीका की। जबकि 'वेदात-प्रदीप' मे भी ब्रह्मसूत्र पर ही विस्तृत चर्चा की गयी थी। 'गद्य-त्रय' मे रामानुज ने प्रपत्ति पर तथा ब्रह्म पर प्रकाश डाला। 'गीता-भाष्य' और 'वेदार्थ-सग्रह' मे भी उन्होंने भक्ति के महत्त्व और 'आत्मा-ब्रह्म' के सबधों की ही चर्चा की। वेदार्थ-सग्रह मे तो उन्होंने स्पष्ट रूप से शाकर मत तथा भेदाभेदवादी भास्कर मत का खडन किया।

रामानुज ने विशिष्टाद्वैत सबधित भक्ति और प्रपत्ति को प्राचीन मान लिया था। अपने समर्थन मे उन्होंने प्राचीन आचार्यों बोधायन, टक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि,

भारुचि आदि को प्रस्तुत किया। विशिष्टाद्वैत को उन्होंने उपनिषद सिद्धांतों पर आश्रित बतलाया। क्योंकि इन वेदांताचार्यों ने ब्रह्म के स्थान पर ईश्वर को प्रतिस्थापित किया था।[211] अतः रामानुज ने भक्ति को तमिल संतो और प्रबन्धम् से ही प्रसूत न माना वरन प्रस्थान-त्रयी (वेदांत सूत्र उपनिषद-गीता) में भी उसकी उपस्थिति निरूपित की। इसके साथ ही उन्होंने अ-वैदिक पाचरात्र को भी वैदिक साहित्य की मान्यता दिला दी।[211A] वैसे भी गीता में ज्ञान-कर्म-भक्ति का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। ज्ञान-कर्म-भक्ति को रामानुज ने स्वीकारते हुए भक्ति को इनमें सर्वोत्तम और भक्ति में भी प्रपत्ति को श्रेष्ठतम दर्शाया क्योंकि इसमें ज्ञान, कर्म और योगसाधना की आवश्यकता न थी। प्रपत्ति सर्वसुगम और सबसे छोटा मार्ग है। इसमें मानवमात्र सर्वतोभावेन' भगवान की शरण में गिरता है। शरणागति पाते ही भगवान उसे तुरंत अपना लेते हैं।[212]

रामानुज का विशिष्टाद्वैत एवं धार्मिक दर्शन है जो ईश्वर या ब्रह्म के आध्यात्मिक अनुभव को प्रस्तुत करता है।[213] प्रस्थानत्रयी पर आधारित होने से वह उपनिषदों के इस सत्य को स्वीकारता है कि ब्रह्मानुभूति के साथ ही सभी कुछ साध्य हो जाता है। विशिष्टाद्वैत तीन सिद्धांतों— चित्त (जीव या जीवात्मा)', 'अचित् (जड जगत या प्रकृति)' तथा 'ईश्वर' में विश्वास करता है। ये तीनों नित्य तत्व हैं। चित्त और अचित् दोनों उस ईश्वर के ही अंश और रूप हैं।[214] वे उसी के गुण हैं। इतना होते हुए भी वे नित्य तथा स्वतः स्वतंत्र पदार्थ हैं। फिर भी ईश्वर अंतर्यामी रूप से इनमें विद्यमान रहता है। इसीलिए वे उसके अधीन हैं। ईश्वर व आत्मा का संबंध चिद्‌चिद् है। वे शरीर-आत्मा के समान एक-दूसरे से संबंधित हैं।[215]

ईश्वर को रामानुज समस्त जगत का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं। वह पुरुषोत्तम और समस्त गुणों का समूह है। वह अपनी असीमित इच्छाओं को पूर्ण करने में सक्षम है। वह सर्जक, संहारक और पालक है। वह शून्य से नहीं वरन एक तत्व से दूसरे में सृष्टि करता है। वह समस्त चेतन-अचेतन में व्याप्त है। 'एकमेवाद्वितीयम' श्रुति ईश्वर हेतु ही है। वह पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा अर्चावतार के पाच रूप धारण करता है। वह 'आधार' 'विधातृ' और 'विधेय' है। वह 'सत्य', 'ज्ञान' और 'अनंत' भी है।[216] परंतु वह निर्गुण नहीं है।[217] क्योंकि संसार के समस्त पदार्थ सगुण हैं। और रामानुज ईश्वर की सगुणोपासना पर विशेष जोर देते हैं। वे उसे कल्याण-गुण गुणाकार, अनंत, ज्ञानानंद-स्वरूप, कल्याण गुण-विभूषित तथा सृष्टि स्थिति-संहारकर्ता निरूपित करते हैं। वह 'रक्षक' और कल्याणकारी तथा मोक्ष का दाता है। प्रत्येक 'कल्प' के बाद 'प्रलय' से 'सृष्टि' का नाश होता है और सभी 'तमस' में लीन हो जाते हैं। ईश्वर-इच्छा होते ही वह अनेक रूप धारण कर पुनः सृष्टि का निर्माण करता है। वह एक से अनेक हो जाता

प्रत्यक स्वतत्र जीव भी उसी का स्वरूप है। वह पाच वर्गों—नित्य (जन्म-मृत्यु से परे), बधनहीन प्रभु सेवक), कैवल्य (पवित्र आत्माए), मुमुक्षु (मोक्ष के चाहन वाले) तथा बद्ध या बधन मे लिपटे हुए—मे विभाजित है।[218] ईश्वराश होने से जीव भी स्वप्रकाशित, अनत, आनदमय है। परतु वह ईश्वर के नियन्त्रण मे ही रहता है। जीव 'अविद्या' और 'कर्म' के बधनो के कारण सासारिक चक्र मे लिपायमान है। अत 'मुक्ति' या मोक्ष के लिए उसे कर्म करते हुए भी भक्ति-मार्ग अपनाना चाहिए। भक्ति मे प्रपत्ति या शरणागति श्रेष्ठ एव सरल है। ईश्वर समस्त जीवनो का जीवन है। जो मुमुक्षु मोक्ष चाहता है उसके लिए प्रपत्ति उत्तम है। श्रीभाष्य भक्ति-प्रपत्ति हेतु 'साधन-सप्तक', विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुधर्ष अपनाने का आग्रह करता है। इसके साथ ही भक्ति को प्रभावशाली बनाने हेतु कर्मयोग के अधीन सभी कर्मो के सपादन व ज्ञान योग मे ज्ञान पाने के साधनो को भी वे मानते है। वे गीता की अनासक्ति को भी स्पृहणीय बतलाते हैं। तीर्थयात्रा, तपश्चरण, देवपूजन, दान व यज्ञ भी उचित है। आत्म-निवेदन के साथ 'भगवान रक्षा करेंगे' की भावना, रक्षा के निमित्त उनकी स्तुति व आत्मसमर्पण और कार्पण्यभाव ही सच्ची प्रपत्ति है।[219] रामानुज का मोक्ष, ब्रह्म मे लीन होना नही है वरन उनका सुख तो मरणोपरात भी आराध्य के गुण-गान मे ही है। मृत्यु के बाद भी एक अन्य शरीर पाकर वे अनत काल तक वैकुठ मे ईश्वर का सामीप्यलाभ करते हुए वहा भी भक्ति की साधना किया करते हैं।[220]

रामानुज ने प्रपत्ति और भक्ति के द्वार सभी के लिए खोल दिए। उन्होंने प्रपत्ति मे किसी जातिभेद को न माना। यहा उन्होंने पूर्ववर्ती आळवार सतो का ही अनुकरण किया जो समाज के सभी वर्गों से थे। अत वर्ष मे कुछ दिन उन्होंने नियत कर दिये जब शूद्र भी हिन्दू मदिरो मे दर्शनार्थ जा सकते थे। उन्होने सतानीक नामक शूद्र जाति को अपने उपदेश भी दिए और उन्हें अपने सप्रदाय से सबधित कर लिया।[221] इस मामले मे उन पर लिंगायतों का भी प्रभाव पडा हो तो आश्चर्य नही। कालातर मे रामानुज की शिष्य-परपरा ने उनके काम को आगे बढाया। आचार्य निम्बार्क और आनदतीर्थ या मध्व ने दो उलग-अलग शाखाओ का गठन किया। भक्ति एव प्रपत्ति इस युग की सास्कृतिक जीवन-धारा बन गई।

आदिम सभ्यता की बीज रूप भक्ति ने पूर्व मध्य युग के धार्मिक जीवन मे प्रमुख स्थान बना लिया। वह एक वटवृक्ष बन गई। उसने सभी प्रमुख और छोटे सप्रदायो मे घर कर लिया। वह पूर्व मध्य युग तक ही सीमित न रही, वरन आगामी सदियो के धार्मिक जीवन को भी उसने अनुप्राणित किया। वह धर्म के माध्यम से उत्तर और दक्षिण को जोडनेवाली राष्ट्रीय कडी सिद्ध हुई।

सदर्भ

1 रामचद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 63 64
2 ताराचद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 84
3 भागवत स्कध 3, अध्याय 25, पृ० 32-33
4 भक्तिचद्रिका, पृ० 5 (सम्पादक गोपीनाथ कविराज)
5 नारद भक्तिसूत्र श्लोक 1, 2, 3, 4, 5
6 वही, श्लोक 25
6A बल्देव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, पृ० 57
7 भागवत पुराण, *10* स्कध, *5/31-32*
8 वही, *11* स्कध, *5/40-42*
9 वही, *11/23-24*
10 वही, 11-48
11 वही।
12 वही, 1/2-6
13 वही, 11/19-40
14 "अजात इत्येव कश्चिद्भीरु प्रपद्यते"—श्वेताश्वतरोपनिषद् 4-21 (कल्याण)
15 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 289
16 रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 30
17 दिनकर सस्कृति के चार *अध्याय, पृ० 289*
18 वि० च० पाण्डे *प्राचीन भारत का राजनैतिक-सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 74 75*
19 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 289
20 द वैदिक एज, पृ० 191
21 हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० 47
22 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 289
23 वही।
23A वही।
24 ऋग्वेद *1-164-46*, अथर्ववेद *8 10-28*
बलराज मधोक *इडीयनाइजेशन, पृ० 9*
24A बार्थ द रिलिजन्स आफ इडिया, पृ० 11-13
24B ऋग्वेद पुरुष सूक्त, 10-90-2
24C बार्थ एड हापकिन्स द रिलिजस आफ इडिया, पृ० 396
24D निरुक्तक 7-4 8 9—
महाभाग्याद देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तयेत।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यगति भवति॥
25 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत-परपरा, पृ० 18 19
26 बल्देव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, पृ० 64
27 ऋग्वेद *: 1-156 3*
27A वि० च० पाण्डे प्राचीन भारत का राजनैतिक-सास्कृतिक इतिहास, *पृ० 124*

27B राधाकृष्णन इंडियन फिलासफी भाग 1 पृ० 78

'द थइज्म आफ वैष्णवाज एंड भागवताज, विथ इट्स एफेसिज आन भक्ति, इज टु बी ट्रेस्ड टु द वैदिक वर्शिप आफ वरुण विथ इट्स कांशसनस आफ सिन एंड ट्रस्ट इन डिवाइन फार्गिवनेस।"

28 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० 22

29 एम० एल० विद्यार्थी इंडियाज कल्चर, पृ० 219

30 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 9

31 वही, पृ० 33

32 वही, पृ० 216

33 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 289

34 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की संत परंपरा, पृ० 21

35 श्वेताश्वतर उपनिषद्, 1-6-7 (कल्याण)

36 वही, 2 2

37 कठ उपनिषद् 2 23 माडूक्योपनिषद्, 3 2 3

38 श्वेताश्वतर उपनिषद्, 2 5

39 वही, 2 7

40 वही, 5 14

41 वही, 4, 2 3-4

42 वही, 3, 2-4 5 6

43 वही, 4-10

44 वही।

45 वही, 6-13

46 वही।

47 वही, 6-23

48 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 126-27
ईश्वर के प्रति समर्पण 'शरणमप्रपद्ये' का भाव कई स्थानों पर है—6 18 23

49 बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 74

50 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 9 11

51 देखिए—अध्याय 5

52 महाभारत, अध्याय 334-335

53 पाद्य तंत्र 4 2 88

54 सूत्र कृतंग II, 2 79

55 अष्टाध्यायी, 5 2 76, 4-3 98, 3 2 21

56 कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग I, पृ० 376

57 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 11

58 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 386

59 वही, पृ० 387

60 वही, पृ० 425

61 वही, पृ० 426

62 महाभाष्य 1 1-54 पृ० 66
63 वही, 2-2-24, पृ० 369
64 इण्डियन एंटीक्वेरी, भाग III, पृ० 305 भाग V पृ० 363
विस्तृत चर्चा हेतु, देखिए अध्याय 5
65 हर्षचरित (चौखंबा)
66 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स, भाग I, पृ० 159, भाग II पृ० 91
67 हर्षचरित अष्टम उच्छ्वास
68 ताराचद इन्फ्ल्यूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 84 109
69 इडियन एंटीक्वेरीज, भाग III, पृ० 308, भाग IV, पृ० 183
70 भक्तिमार्ग, एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एड इथिक्स, भाग II
71 द वैदिक एज, पृ० 143 171
72 बल्देव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 91-92
73 अलबीरूनी भाग I पृ० 19 20, 27 31
74 श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय 6, श्लोक 18-23
75 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 26-27
76 वही पृ० 27 28
77 ताराचद इन्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 86-87
78 वही।
79 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 27
80 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 452
81 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 26
82 अलबीरूनी भाग I, पृ० 113
83 रामानुज सर्वदर्शन-सग्रह, पृ० 43
84 गीता 9-32
85 ताराचद इन्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 102
86 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 207
87 वही, पृ० 199
88 कठोपनिषद, 213-13 (कल्याण)
89 वही, 1/2 17
90 कल्याण के व्याख्याकार ने उक्त व्याख्या को अधिक समीचीन माना है। वैसे अन्य अर्थ भी निकल सकता है।
91 कठोपनिषद् 1/2 23
92 वही, 1/2-20
93 वही, 1/2 23
94 ईशावास्योपनिषद् 2 5-6-7, 13 14 15
95 श्वेताश्वतरोपनिषद् 6 18
96 वही, 4-14, 4, 1-7
प्रश्नोपनिषद् 6-6-4
गीता 7-7

132 हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 202
ह्वाइल इट प्रिव्हेल्ड इन साउथ इंडिया इव्हन बिफोर द क्रिश्चियन इरा, इट रिसिव्ह्ड ए ग्रेट एक्सेस आफ स्ट्रेंथ फ्राम इट्स अपोजीशन टु, बुद्धिज्म एंड जैनिज्म विथ इट, एलाग विथ वैष्णवइज्म ओव्हर केम अबाउट द पिरियड मार सिक्स्थ सेंचुरी आफ्टर क्राइस्ट —एस० राधाकृष्णन्।
133 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया
134 *हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 190*
135 द क्लासिकल एज, पृ० 327
136 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 423
137 दक्षिण की एक छोटी जाति।
138 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया
139 द क्लासिकल एज, पृ० 328
श्रीनिवास आयगर, तमिल स्टडीज
140 *हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति आदोलन, पृ० 202*
141 सुदरम् पिल्लई सम माईल स्टोन्स इन द हिस्ट्री आफ तमिल लिट्रेचर
142 किंग्सबरी एंड फिलिप्स हायमस आफ द तमिल शैवाइट सेंट्स, पृ० 57
143 सी० वी० नारायण अय्यर ओरिजिन एंड अर्ली हिस्ट्री आफ शैविज्म इन साउथ इंडिया, पृ० 462-70
144 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 424
145 किंग्सबरी एंड फिलिप्स हायमस आफ तमिल शैवाइट सेंट्स, पृ० 57-58
146 *द क्लासिकल एज, पृ० 330*
147 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 424
148 कोटेड बाय क्लासिकल एज, पृ० 330
149 वही।
150 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 425
151 द क्लासिकल एज, पृ० 332
152 किंग्सबरी एंड फिलिप्स हायमस आफ द तमिल शैवाइट सेंट्स, पृ० 79
153 *एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 425*
154 वही।
155 सी० यू० पोप भविष्य वाशर, XXXVI
156 वही।
157 किंग्सबरी एंड फिलिप्स हायमस आफ द तमिल शैवाइट सेंट्स, पृ० 89
158 वही पृ० 127
159 द क्लासिकल एज, पृ० 331
160 जी० सुब्रह्मण्य पिल्लई इंट्रोडक्शन एंड हिस्ट्री आफ शैव सिद्धांत, पृ० 12
161 भागवत पुराण स्कंध 11, अध्याय 5, श्लोक 38-40
162 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की संत परंपरा, पृ० 81
163 हिरण्मय हिंदी-कन्नड पृ० 191
164 वही।

165 द क्लासिकल एज, पृ० 332
166 परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की सत परपरा, पृ० 81
167 एस० कृष्णास्वामी आयगर ऐंसिएंट इडिया एड साउथ इडियन कल्चर, भाग II, पृ० 738
168 आर० जी० भडारकर वैष्णव, शैव एव अन्य धार्मिक मत, पृ० 426
एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साऊथ इडिया, पृ० 426
ताराचद इम्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 93
169 एस० कृष्णास्वामी आयगर एसिएट इडिया एड साउथ इडियन कल्चर, पृ० 735-40
सतांक—कल्याण, पृ० 404 419
170 द क्लासिकल एज, पृ० 333
171 ताराचद इम्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 93
172 दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 283
173 द क्लासिकल एज पृ० 333
174 गीता 9 32
175 तिरुमगई दक्षिण के वाल्मिकी थे।
176 हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 192
177 वही।
178 पाद्म तत्र, 4/2/88
179 ताराचद इम्फ्लूएस आफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर, पृ० 93
180 बल्देव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, पृ० 187
181 द क्लासिकल एज, पृ० 334
182. वही।
183 गोविंदाचार्य द डिवाइन विजडम आफ द्रविडियन सेंट्स, पृ० 85-100
183A एम० यामुनाचार्य आलवार गुल, पृ० 13
184 द क्लासिकल एज, पृ० 335
185 बल्देव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, पृ० 190
186 गोविंदाचार्य द डिवाइन विजडम आफ द्रविडिएन सेंट्स, पृ० 54
187 वही, पृ० 12
188 जे० एस० एम० हूपर हायमस आफ द आलवार्स, पृ० 64 87
188A एम० यामुनाचार्य: आलवार गुल, पृ० 53
189 द क्लासिकल एज, पृ० 338
190 हिरण्मय हिंदी-कन्नड मे भक्ति आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 195
191 बल्देव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, पृ० 194
192 वही।
193 हूपर हायमस आफ आलवार्स, पृ० 51
194 वही, पृ० 57
195 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 427
196. द क्लासिकल एज, पृ० 327
197 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 312

198 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 245
199 बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 200
200 वही ।
201 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 429
202. द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 312
203. वही ।
204 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 246
205. एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 429
206. न धर्मे निष्ठोस्मि न चात्मवेदी, न भक्तिमांस्तवच्चरणारविंदे ।
अकिंचनो नन्यगति शरण्य त्वत्पादमूल शरण प्रपद्ये ॥—स्तोत्ररत्न
207 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 437
208 बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 204
209 ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम आॅन इंडियन कल्चर, पृ० 100
210 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 437-38
211 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 294
211A ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम आॅन इंडियन कल्चर, पृ० 100
212 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 294-95
213 कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भाग III, पृ० 300
214 श्वेताश्वतरोपनिषद् भी ब्रह्म के त्रिविध रूप—भोक्ता, भोग्य एवं प्रेरक ब्रह्म का समर्थन करता है ।—1-12
215 श्रीभाष्य, 2-1-9
216 कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भाग III, पृ० 304 305
217 सर्वदर्शन संग्रह, पृ० 43
218 गीता में भी इसकी चर्चा है ।
219 आर० जी० भंडारकर वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ० 62
220 दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 295
221 ताराचंद इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम आॅन इंडियन कल्चर, पृ० 102

अध्याय 8

धर्म का तत्कालीन संस्कृति पर प्रभाव

पूर्व मध्य काल मे धर्म भारतीयो के जीवन और आचरण का नियमन करता रहा। इसी रहस्यमय प्रेरणा के कारण राजा-नरेश युद्ध करते और मदिर बनवा कर ब्राह्मण-साधुओ को दान देते रहे। धर्म की इस प्रवृत्ति को सतुष्ट करने के लिए स्त्रिया शातिकाल मे सती होती तथा युद्ध के समय जौहर करती थी।[1] धर्म ने इतना व्यापक स्वरूप धारण कर लिया कि कला, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज, प्रशासकीय व्यवस्थाए, आर्थिक गतिविधिया आदि सभी धर्म की चेरी बन गई। धर्म का सार्वजनीन और सर्वयुगीन प्रभाव भारतीयो को सचालित और निर्देशित कर रहा था। यहा तक कि 'मनुस्मृति' और 'शुक्र नीति' मे वर्णित विधि एव कानून भी धार्मिक निर्देश के रूप मे ही लिये गये।

इसमे सदेह नही कि इस काल मे हमे धर्म मे अनेकता दिखाई देती है। उसमे बाह्य आडबर और भ्रष्टाचार भी आने लगा था।[2] धार्मिक अध-परंपराओ, अध-विश्वास के जाल मे देश ऐसा जकड गया था कि वह स्वतत्र विचार, स्वतन्त्र कर्म एवं स्वतन्त्र विश्वास एक हद तक बहुत कुछ खो चुका था।[3] तत्कालीन धर्मों मे तान्त्रिक वाममार्ग और उस से सबधित धार्मिक व्यभिचार ने, जिसे धार्मिक स्तर पर मान्यता मिल गई थी, देश के जीवन को दूषित कर दिया था।[4] परतु इसका प्रभाव किस सीमा तक पडा और उसने किस हद तक देश के जन-जीवन की चेतना को भ्रष्ट किया इसका सही मूल्यांकन नही किया जा सकता।[5]

उक्त कमियो के बावजूद धर्म के क्षेत्र मे, पूर्व मध्य युग मे राजनीतिक अराजकता और अव्यवस्था के चिह्न दृष्टिगोचर नही होते। इसके विपरीत देश मे धर्म के माध्यम से एक प्रकार की राष्ट्रीय-सास्कृतिक एकता कायम हो गयी थी। 'आर्यावर्त चेतना' (Aryavarta-Consciousness)[6] अर्थात् 'धार्मिक स्वतत्रता'[7] इस देश मे पूर्व मध्य युग मे पूरी तरह से स्थापित थी। इसी ने भारतीय मस्तिष्क की चेतना और शक्ति तथा दर्शन के क्षेत्र मे उसकी उच्चता को इतना अधिक प्रभावशाली तरीके से बनाए रखा कि उनके समसामयिक अरबी विद्वान भारतीय

सस्कृति और ज्ञान की गरिमा से अभिभूत हो गए ।[8] डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी का यह कथन समीचीन है कि इस युग के अनेक बौद्धिक धार्मिक आदोलनो ने जिनका गठन श्रेष्ठ चितको और कर्मठो ने किया था, सास्कृतिक धारा को अविच्छिन्न रखा ।[9] इसी कारण से पूर्व मध्य काल, शकराचार्य और कुमारिल जैसे श्रेष्ठ दर्शनज्ञ इतिहास को प्रदान करने मे सफल हुआ। धार्मिक ह्रास और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए दक्षिण मे आळवार-नायनार सतो ने भगीरथ प्रयत्न किया ।[10] वे दक्षिण मे जातिगत बुराइयो को दूर करने मे सफल हुए । अत धर्म के स्तर पर पूर्व मध्य युग मे चित्र उतना धूमिल व आलोच्य न था ।

धर्म व शासन

राज्य तथा प्रशासन धर्म पर आधारित थे ।[11] उसका ध्येय जन-कल्याण के लिए कार्य करना था। परतु वह मुस्लिम सल्तनत के समान एक धर्म-राज्य (Theocratic State) न था वरन वह धर्म द्वारा निर्देशित होता था। राजा की शक्ति का *आधार प्राचीन धर्म व स्मृतिग्रथ थे। उन्ही के निर्देशानुसार काम करने की अपेक्षा* की जाती थी । स्मृतिकार नारद ने दुष्ट राजा पर प्रहार करने को पाप निरूपित किया है, क्योकि उसमे देवता निवास करता है ।[12] इस प्रकार राजा मे 'दैवी सत्ता' (Divine Theory of Kingship) के सिद्धात का आरोपण कर दिया था। परतु यह देवत्व यूरोपीय सिद्धात जैसा न था। *अन्य धर्मग्रथो ने स्पष्टतया निर्देश दिया* कि राजा को इस प्रकार शासन करना चाहिए कि प्रजा की सुख-समृद्धि मे वृद्धि हो। यह उसका धार्मिक कर्तव्य है । ऐसी प्रतिज्ञा उसे करनी पडती थी ।[13] राजा होना एक शुभ कर्म माना जाता था और इस शुभ कर्म हेतु ही राज-सत्ता उसे दी जाती थी ।[14] अनाचारी राजा के विरुद्ध विद्रोह करना धर्माचरण के अनुकूल *था।*[15] *देवत्व का विधान श्रेष्ठ आचरण के राजा के लिए ही था।* इस समय राजपद को दैवी बताया गया था न कि किसी राजकीय व्यक्ति को ।[16] स्मृतिकारो ने स्पष्ट लिखा कि ईश्वर ने राजा को स्वामी का स्वरूप दिया है, परतु वास्तव मे वह सेवक है जो करो के माध्यम से अपनी जीविका प्राप्त करता है, ताकि उनकी *समृद्धि के लिए कार्य कर सके।*[17] *राजत्व के भारतीय धार्मिक सिद्धात को किसी* भी युग मे दैवीय कपट के बहाने अपवित्र निरकुश राजशाही मे पतित होने की अनुमति नही दी गयी ।[18]

पूर्व मध्य कालीन शासको के सामने अपने पूर्ववर्ती चक्रवर्ती सम्राटो के आदर्श थे। *पौराणिक कथाओ मे वर्णित सम्राटो के कार्यों ने उन्हे अनुप्राणित और अनुप्रेरित* किया हो तो आश्चर्य नही। हर्ष का आदर्श कि, "जीवित प्राणियो को मन, वचन तथा कर्म से अपना कर्तव्य करना चाहिए, क्योकि पुण्य का यही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है ।"[19] इस युग के लिए भी सहायक था ।

प्राचीन 'मनुस्मृति' के साथ ही पूर्व मध्ययुगीन लेखको के ग्रथों, जीमूतवाहन का *'व्यवहार मातृका' तथा 'दाय भाग' (सन 1100-1150), 'शुक्र नीति सार'*, गोविंदराज कृत 'मनु टीका' (सन 1080-1110), लक्ष्मीधर लिखित 'कृत्यकल्पतरु' (राजनीति काड) (सन 1100-1130) और विज्ञानेश्वर के 'मिताक्षर' (सन 1080-1100) ने प्रशासन और राजनीति के रूप का निर्धारण कर दिया था।[20] यहा तक कि राजा भोज ने भी 'चाणक्य राजनीतिशास्त्र', 'व्यवहार समुच्चय' पर कलम चलाकर राजनीतिक आदर्शों का प्रतिपादन किया।[21] धर्म के साथ राजनीति-प्रशासन का समन्वय कर दिया गया था। इसी कारण से इस काल के राजा राजनीति को भी 'राज धर्म' ही मानते थे,[22] उनका राजनीति मे किया गया प्रत्येक कार्य इस राज धर्म से ही निर्देशित होता था। मनु द्वारा निर्देशित 'राज धर्म' को मेधातिथी ने *अपनी टीका मे स्पष्ट किया।*[23] विश्वरूप *ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर* भाष्य लिखकर राज-धर्म की विशद व्याख्या प्रस्तुत की।[24] कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' भी *मान्य था। अपरार्थ ने याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र निबध' (सन 1110-1130)* तथा देवानभट्ट ने 'स्मृति-चद्रिका' (सन 1200 1225) के माध्यम से राज धर्म को स्पष्ट निर्देश प्रस्तुत किये थे। इनमे वर्णित विधि और विधानो को धर्म की सज्ञा दी गयी थी।[25] जहा एक ओर राजा को राज्यरूपी वृक्ष का मूल, मत्री परिषद को स्कध, सेनापति को शाखा, सेना को पत्तिया, प्रजा को फल तथा देश के ऐश्वर्य को वृक्ष का फल बतलाया, वही सपूर्ण देश को बीज माना गया।[25A]

राजा व शासन को अपने पद व राज-कोष का दुरुपयोग न करने की चेतावनी दी गयी। स्पष्ट कहा गया कि राज कोष मात्र सार्वजनिक हित के लिए है उसका अपने तथा परिजनो के लिए उपयोग करने पर राजा नरक का वासी होता है।[26] धर्म के माध्यम से नरक का भय दिखाकर स्मृतिकारो ने शासको की राजनीति को धर्म की सीमाओ से जकड दिया। उस काल के नरेशो पर आधुनिक युग के समान *कोई सवैधानिक रोक न होते हुए भी धर्म की सीमा-रेखाओ मे जो आनुषगिक बधन* और नैतिक सीमाए लगा दी थी, वे परपरापुष्ट आदर्श सविधानो से भी बलिष्ठ थी।[27]

राज्यारोहण से लेकर मृत्युपर्यंत कई धर्मकार्य जन साधारण के समान राजा-महाराजाओ को भी करने पडते थे। राज्याभिषेक अपने-आपमे एक बडा धार्मिक समारोह था।[28] राजा के लिए 'अभिषिक्त' शब्द इस काल के अनेक शिलालेखो मे प्रयुक्त किया गया। धर्म के ध्वज ब्राह्मण, राजकार्यों को नियत्रित और निर्देशित करते थे। क्योकि स्मृतियां, मत्रियो के चुनाव के समय ब्राह्मणो को प्रधानता देती हैं।[29] ये ब्राह्मण राजा को धर्म से विमुख नही होने देते थे। ब्राह्मणो की सम्मति के बिना बने राजा को धर्म सम्मत नही माना जाता था।[30]

धर्म ने राजाओ के लिए 'क्षात्र धर्म' प्रस्तुत कर दिया था। युद्ध करना शास्त्र-

प्रमाणित क्षत्रियो का स्वधर्म था।[31] उसे कभी भी 'न निवर्तेत सग्राम', सग्राम से निवृत्त नही होना चाहिए। 'क्षात्र धर्म मनुस्मरण' क्षात्र-धर्म का स्मरण करते हुए उन्हे युद्ध मे सलग्न हो जाना चाहिए।[32] उनका आदर्श धर्मशास्त्रो के अनुसार स्वधर्म के लिए उत्सर्ग करना था; न कि शैया पर पडे-पडे मरना। शैया पर मरना क्षत्रिय के लिए घोर अधर्म माना गया।[33] अत: युद्ध क्षत्रियो के लिए धार्मिक कर्म बन गया। प्राचीन और पूर्व मध्य युगीन राज-वशो ने इन धार्मिक निर्देशो का पूरी तरह से पालन किया। फलस्वरूप राज्यो का उत्थान-पतन पूर्व मध्ययुगीन इतिहास की साधारण घटना बन गयी। उनका सर्वोच्च आदर्श स्ववश को सत्तारूढ बनाये रखना था और उनकी उच्चतम आकाक्षा 'चक्रवर्ती-पद' को अगीकार करवाना।[34] एक साधारण सामत की भी यही आकाक्षा रहती थी।

युद्ध, धर्मसम्मत बन जाने से पूर्व मध्य युग मे वह अकारण कई युद्धो का कारण बन गया। वह क्षात्र धर्म का एक परमावश्यक अग था। पूर्व मध्य युग के शासको के लिए किसी आदर्श, देश, जाति या धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना धर्म न था, प्रत्युत युद्ध मात्र करना ही वे अपना धर्म मानने लगे। युद्ध उनके लिए किसी उच्च *उद्देश्य का उपायमात्र नही रह गया किंतु निष्प्रयोजन, अकारण युद्ध करना ही धर्म* हो गया।[35] इसी से वे अपने समकालीन नरेशो से लडते रहे। उनके अहकार को शायद इससे तृप्ति मिलती थी।

युद्ध-विद्या एक जाति विशेष की सपत्ति, शक्ति और कला बन गई।[36] इसने समाज के अन्य वर्गों को सैनिक प्रशिक्षण से वचित कर दिया।[37] इसका यह अर्थ नहीं कि समाज के अन्य वर्ग पूरी तरह से सेना से दूर रहे।[38] सकटालीन परिस्थितियो मे ब्राह्मण[39] आदि को भी शस्त्र उठाने की अनुमति थी।[40] परतु बहुसख्यक जनता सैनिक मामलो को शायद क्षत्रियो का विशेषाधिकार ही मानती थी। इसने उन्हें तत्कालीन राजनीति और विशेषकर सैनिक व्यवसाय और गतिविधियो के प्रति उदासीन बना दिया हो तो आश्चर्य नही। प्रजा की रक्षा और उन पर शासन करना राजाओ का धार्मिक कर्तव्य था। इसी हेतु उनका निर्माण किया गया था।[41] युद्ध, क्षत्रिय-राजपूतो का विशेषाधिकार था। परतु *युद्ध के समय नागरिक जनता* पर अत्याचार करना, मदिरो और उपासना-स्थलो को लूटना तथा गो-ब्राह्मणो की *हत्या एक गभीर, अनैतिक एवं अधार्मिक कृत्य माना जाता था। शासको की दृष्टि* मे नारी का सम्मान और सतीत्व, सर्वोच्च स्थान रखता था।[42] शत्रु देश की प्रजा पर अत्याचार धर्मशास्त्रो के निर्देशो के विरुद्ध था। युद्ध काल मे भी जनता अबाध रूप से अपने कामो मे लगी रहती थी।

परतु पूर्व मध्ययुग के ग्यारहवी-बारहवी सदी के मुस्लिम हमलो ने देश को स्तभित कर दिया। हमलावर मुसलमानो के व्यापक अत्याचारो, लूटपाट, बलात्कार, मदिरो-उपासनागृहो को तोडने व लूटने, बलात धर्म-परिवर्तन तथा गो-

ब्राह्मणो और आम नागरिक जनता के कत्लेआम से देश व भारतीय इतिहास स्तभित रह गया। निश्चित ही यह श्रेष्ठ भारतीय धार्मिक-सास्कृतिक परपराओ के विपरीत और घृणास्पद था। इसीलिए भारतीय इतिहास मे महमूद गजनवी और उसके साथी आततायी व लुटेरो के रूप मे आज भी याद किये जाते हैं।[42A] जबकि अपनी कमियों के बावजूद भी भारतीय इस स्तर पर, उस काल मे, मुसलमानो की बर्बरता की तुलना मे श्रेष्ठ थे।

धर्म-निर्देशित विधानो का पालन हर नरेश का कर्तव्य था। अत उन्होने धार्मिक विधानो की मर्यादा सहित शासन किया। उनकी निरकुशता सदैव प्रजाहित मे ही प्रयुक्त हुई। शासक वर्गों के विशेषाधिकार यूरोपीय सहयोगियो की तरह अत्याचारो के जनक न थे। चदल-वशी धगदेव का दान-पत्र, धर्म (विधान) के प्रति राजा हर्षवर्मनदेव की दृढ भक्ति का परिचायक है।[43] उसी दान पत्र मे धगदेव द्वारा अपने पौरुष से शत्रु समूह को विघटित करने का श्रेय भी धग धर्म के प्रति आस्था और सुशासन को ही देता है।[44] युद्धो मे विजय पाने के बाद धर्मानुसार धार्मिक कृत्य करना भी क्षत्रियो का कर्तव्य था। पाड्यराज नेंदुजेलियान ने कई वैदिक यज्ञ जीत की खुशी मे किये थे।[45] अतः धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करना राजाओ का परम कर्तव्य था।[46] हिंदू धर्मशास्त्रकारो ने सकटकाल मे क्षत्रियो द्वारा खेती, व्यापार आदि के कर्मों की व्यवस्था भी कर दी थी।[47]

वेदो से शुक नीति पर्यन्त (शुक नीति का सकलन कई कारणो से सन 800 से बारहवी शती माना जाता है) राजा के कर्तव्यो की एक परपरा, मर्यादा चली आई है। इस सबध मे एक छोर पर मनु और दूसरे पर कौटिल्य था।[48] यद्यपि उच्चादर्श इन ग्रथो मे दिए गए थे परतु अनुपम राज्यादर्श को भूलकर पूर्व मध्य युगीन नरेश, *राष्ट्रीय तथा देशपरक के स्थान पर केवल सकुचित दृष्टि और वैयक्तिक ही रह* गए। रूढिवाद ने इनको इतना जकड लिया कि उनमे भोज जैसे बडे प्रतिभाशाली विद्वान, अनेक विद्याओ के पडित, कवि, लेखक हुए किंतु उनका ज्ञान उन्हे मानसिक स्वतत्रता न दिला सका।[49] अत धर्म व उससे प्रेरित उच्च आदर्शों सिद्धातो मे किसी प्रकार का दोष न था, वरन उसका क्रियान्वयन ठीक न था। इसीलिए वे धर्म और देश-जाति की रक्षा विदेशी मुस्लिम आक्रमण से करने मे असफल हुए।

शासन ने लोगो के धार्मिक विश्वासो और रीति-रिवाजो मे कभी भी हस्तक्षेप नही किया। इसके विपरीत *उन्होंने सभी धर्मों को सरक्षण दिया*[49A] और धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी। धार्मिक शास्त्रार्थ पूर्व मध्य युग की विशेषता थी।[49B] इस कारण देश मे शासकीय स्तर पर धार्मिक सामजस्य था। युद्ध मे शत्रु को परास्त करने के बाद भी विजेता मदिरो को नही लूटते थे वरन दान देते थ।[49C]

धर्म व समाज

पूर्व मध्ययुगीन समाज भी धर्मशास्त्रों से बधा हुआ था। बौद्ध-जैन-हिंदुओ के धर्म उसे बाधे थे। गुप्त काल से ही बौद्ध-जैन धर्मों के विरुद्ध श्रेष्ठता पाने के लिए ब्राह्मण प्रतिक्रिया आरभ हो गई थी।[50] ब्राह्मणो की श्रेष्ठता के साथ ही चतुर्वर्ण व्यवस्था को महत्त्व मिलने लगा था। ब्राह्मणो द्वारा प्रारभ की गई प्रतिक्रिया के सामने बौद्ध-जैन व्यवस्था टिक न सकी। ब्राह्मण प्रति-सुधारणा (Brahmanical Counter Reformation) जोर पकडती चली गयी।[51] पूर्व मध्ययुगीन नरेश चूकि हिंदू धर्म के अनुयायी थे, इसलिए उन्होने समाज व्यवस्था के धार्मिक स्वरूप को कायम रखने मे सहयोग दिया।

समाज वर्णाश्रम-व्यवस्था पर आधारित था। इसे 'वर्ण-धर्म' की सज्ञा दी गयी थी।[52] *यह वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था ही हिंदू-समाज-पद्धति का मुख्य स्तभ थी।*[53] प्राचीन सूत्रो[54] और मध्य कालीन ग्रथो[55] मे भी चार वर्णों का ही उल्लेख है। इनमे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। पूर्व मध्य युग मे भी मोटे तौर पर इनकी सख्या चार ही थी, क्योकि तत्कालीन अभिलेखो मे प्रत्येक प्रमुख जाति की उपजातियों की जानकारी नही मिलती।[56] परतु समकालीन साहित्य मे अवश्य ही कई जातियो का उल्लेख मिलता है। कल्हण,[57] कायस्थ आदि 64 जातियो की जानकारी देता है। अनुलोम-प्रतिलोम क्रमो के कारण भी कई उपजातिया हो गई थी।[58]

धर्मशास्त्रो के निर्देशानुसार प्रमुख तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए *उपनयन सस्कार आवश्यक था।*[59] *इसी प्रकार 'आश्रम-धर्म'*[60] *याने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास का भी प्रावधान था। परतु पूर्व मध्य काल मे* आश्रम-धर्म की अनिवार्यता समाप्त हो गयी थी। समाज के सभी वर्णों का जीवन जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत धार्मिक कर्मकांडो और रीति-रिवाजो से बधा हुआ था। गर्भाधान, पुसवन, सीमतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण आदि 48 धर्म-सस्कार सपन्न करने पर ही व्यक्ति 'ब्रह्मलोक' पा सकता था।[61] पूर्व मध्य काल के लक्ष्मीधर के 'कृत्यकल्पतरु' के 'गृहस्थकाड' मे गृहस्थो के धार्मिक कृत्यों का निर्धारण कर दिया गया था।

धर्मग्रथो ने समाज मे *ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि माना था। ब्राह्मण माता-पिता से उत्पन्न, विद्वान तथा ब्राह्मणो के लिए नियत धार्मिक कृत्यो को करने-*वाला ब्राह्मण कहलाता था।[62] जन्म, विद्या और कर्म इन तीन बातो ने वर्ण का निर्धारण किया था। विद्या-तपहीन, जन्म से ब्राह्मण भी ब्राह्मण कहलाता था। पर वह सम्माननीय न था।[63] पूर्व मध्य काल तक आते-आते बुद्धि सस्कार से विरल, केवल जन्म से ब्राह्मण होनेवाला व्यक्ति भी माननीय था।[64] अलबीरूनी भी लिखता है, "ब्राह्मण सबसे उच्च वर्ण के हैं। हिंदू धर्मग्रथ उन्हे ब्रह्मा के सिर से

उत्पन्न मानते हैं।"[65]

ब्राह्मण कई उपवर्गों में बटने लगे थे। उनमे द्विवेदी (अवस्थी), अग्निहोत्री, दीक्षित आदि वर्ग बन गए थे। यह विभाजन उनके धार्मिक कृत्यों के कारण हुआ था।[66] स्थान व जनपद भेद से भी ब्राह्मणो मे गौड, सारस्वत, कान्यकुब्ज, सरयूपारीण, महाराष्ट्रीय, औदिच्य आदि भेद पाणिनी-काल मे ही हो गए थे। काशिकाकार ने सुराष्ट्रब्रह्म, अवंतिब्रह्म आदि का भी उल्लेख किया है।[66A]

श्राद्ध, यज्ञ, धार्मिक कृत्य, वेदो और धर्मग्रंथो का पठन-पाठन, दान आदि देना[67] और लेना भी उनका काम था। ब्राह्मणों को धार्मिक अवसरो पर भोजन कराना पुण्य का काम समझा जाता था। ब्राह्मणो को भोजन कराने की प्रथा अन्य वर्णों में थी।[68] लोग ब्राह्मणो को भोजनार्थ घर पर आमंत्रित करते थे। ब्राह्मण भी निमंत्रण की प्रतीक्षा करते थे। याचक ब्राह्मण भोजन तैयार होते ही यजमान के घर जा धमकते थे।[69] पूर्व मध्य युग मे ऐसे ब्राह्मणो की सख्या में वृद्धि ही हुई होगी। शायद कुछ ब्राह्मण श्राद्ध-भोजन नही करते थे।[70] सुरापान ब्राह्मणो के लिए निषिद्ध था। उसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक विशेषाधिकार मिले हुए थे।[71] वह अवध्य था।[72] हत्या आदि अपराध करने पर उसे मात्र प्रायश्चित्त ही करना पडता था, क्योकि धर्मशास्त्रानुसार प्रायश्चित से पाप धुल जाते हैं।[73] परतु कुछ स्मृतिग्रंथ प्राणदड[74] व चोरी करने पर अग भग[75] का निर्देश देते है। धार्मिक निर्देशानुसार ब्राह्मण, करो से मुक्त थे।[76] राजा नरेशो को पुण्य व धार्मिक कार्य कराने के लिए राजपुरोहित के पद पर ब्राह्मणो की नियुक्ति उनका धार्मिक विशेषाधिकार था।[77] धार्मिक निर्देशानुसार ब्राह्मणो को चारो वर्णों की स्त्रियो से विवाह करने की अनुमति थी।[78] धार्मिक विशेषाधिकारो के कारण ही उन्हे यह उच्च दर्जा प्राप्त था।

क्षत्रियो का स्थान समाज मे दूसरा था। दान देना, वेदों का अध्ययन, विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान[79] और प्रजा की रक्षा[80] हेतु शस्त्र-ग्रहण करना उनका प्रमुख कार्य था। मनु ने क्षत्रियो के पाच कर्म—प्रजारक्षण, वेद पठन, दान, यज्ञ और सासारिक विषयों से विरक्ति—नियत किये थे।[81] परतु पूर्व मध्य युग मे क्षत्रियो मे विलासिता का अभाव न था। चाहमान, प्रतीहार, परमार आदि की उत्पत्ति इतिहास के विवादग्रस्त विषय हैं। उन्हे विदेशी[82] और प्राचीन क्षत्रियो की सतान[83] माना गया। तत्कालीन समाज व्यवस्था मे उन्हे पूरा स्थान मिल गया था। उन्होंने अपने पूर्ववर्तियो का सही मानो मे अनुसरण करने का प्रयत्न किया। लक्ष्मीधर उन्हे शस्त्र-धारण देश के निष्पक्ष शासन और वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का निर्देश देता है।[84] निधनपुर अभिलेख से पता चलता है कि भास्करवर्मन ने वर्णाश्रम की पुन स्थापना की, जो गडबडा गए थे।[85] प्राचीन क्षत्रियो के समान पूर्व मध्ययुगीन राजपूत-क्षत्रिय भी धार्मिक आधार पर विशेषाधिकारो का उपभोग कर रहे थे।

धर्मानुसार वैश्यो का सामाजिक दर्जा तीसरे स्थान पर था। खेती, गो-रक्षा एव पालन, और व्यापार, वैश्यो का धर्म (कर्तव्य) था।[86] ब्राह्मणो की आवश्यकता पूरी करना भी उनका धर्म था।[87] वैश्य जाति ने पूर्व मध्य युग मे कृषि कर्म छोड दिया था। वे अन्य व्यवसाय करने लगे थे।[88] खेतीहरो की गणना अब शूद्रो मे होने लगी थी।[89] वैसे अलबीरूनी ने कई वैश्यो को खेती करते देखा था।[90] कालातर मे वैश्य और शूद्रो मे कोई अतर नही रह गया।[91] शास्त्रानुसार वेदो का अध्ययन वैश्यो के लिए निषिद्ध था। वेदाध्ययन करने पर उन्हे दडित किया जाता था।[92] वैश्य जाति भी कई उप-जातियो मे विभाजित हो गयी थी।[93] जैन धर्म के अनुयायी वणिको की अपनी अलग जाति थी। वैश्यो के धार्मिक कृत्य ब्राह्मण पुरोहित द्वारा ही सपादित होते थे। वैश्य ऊन का जनेऊ धारण करते थे।[94] ब्राह्मण द्वारा निर्धारित अडतालीस धर्म सस्कार वैश्यों को भी करने पडते थे।

धर्मशास्त्रो ने शूद्रो का स्थान अतिम और चौथा निर्धारित किया था।[95] द्विजो—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो—की सेवा तथा सब प्रकार की शिल्प-रचना शूद्रो का धार्मिक कर्तव्य था।[96] उन्हे वेदाध्ययन, ईश-प्रार्थना, होम हवन आदि से वचित रखा गया था। पर ईश्वर-भक्ति, धार्मिक कर्म और दान आदि उनके लिए वर्जित न था।[97] वैसे गीता ने भक्ति के द्वार सभी प्रकार के पापयोनि वाले शूद्रो, वैश्यो, स्त्रियो के लिए खोल दिये थे।[98] और उसे ही आधार बनाकर पूर्व मध्य युगीन दक्षिण-भारतीय आळवार-नायनार सतो ने जाति-बधनो का विरोध किया। आचार्य रामानुज ने शूद्र और अत्यजो को मदिर-प्रवेश की अनुमति दी थी।[99] परतु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के रूढिवादी सकुचित दृष्टिकोण ने शूद्रो-अत्यजो को अस्पृश्य मान लिया था।[100] परतु लक्ष्मीधर ने विशुद्ध शूद्र को ब्राह्मण से श्रेष्ठ माना और शूद्र द्वारा प्रदत्त चावल को पका कर खाने की अनुमति ब्राह्मण को दी है।[101]

अत्यजो की स्थिति और भी निचले स्तर पर थी। वे पूर्णतया 'अस्पृश्य' माने जाते थे। चाडाल फक्कस, भिल्ल, पारधी, केवट, बहेलिये, कसाई, राजक (धोबी) आदि अस्पृश्य जातिया थी।[102] समाज मे अनुलोम-प्रतिलोम विवाहो के कारण भी कई वर्णसकर सतानें हो गई थी और इनके बारे मे धर्म-शास्त्रो मे विधान कर दिया गया था।

सामाजिक रीति रिवाज, जातियों के आपसी सामाजिक व्यवहार, यहा तक कि व्यक्तिगत आचार-विचार भी धर्म द्वारा निर्देशित होने लगे थे। विवाह एक धार्मिक कृत्य था। रजोदर्शन होने पर तुरत कन्यादान न करने पर नरकवास मिलता था।[103] कन्यादान के समय किये जानेवाले कर्मकाड का विधान धर्मशास्त्रो ने कर रखा था।[104] ये विधान सभी जातियो और वर्णों के लिए अनिवार्य थे। अनुलोम-प्रतिलोम विवाह हेय दृष्टि से देखे जाते थे। परतु उनके लिए भी धार्मिक नियम बना दिये गये।[105] मेधातिथि[106] ने तो कन्या के विवाह की आयु भी निश्चित कर

थी। सगोत्र[107] और सपिंड[108] विवाह धर्मानुसार वर्जित थे। पूर्व मध्य युग मे व्यावहारिक स्तर पर कई बातें धर्म-विरुद्ध भी हुई धर्म-शास्त्रो ने अक्सर सदैव एक-पत्नीत्व की शालीनता का समर्थन किया।[109] परन्तु पूर्व मध्य युगीन नरेशो ने कभी भी इनका पालन नही किया। अधिकाश युद्ध पृथ्वीराज चौहान ने पत्नियो की प्राप्ति हेतु ही लडे। उनकी आठ रानिया थी।[110] चेदिराज गागेयदेव ने अपनी सौ रानियो के साथ प्रयाग मे मुक्ति हेतु स्नान किया था।[111] तत्कालीन साहित्य-ग्रथ 'नवसाहसाक चरित', 'विक्रमाक देव चरित्र', 'कथा सरित्सागर' आदि बहुपत्नीत्व के उदाहरणो से भरे पडे हैं। इन विवाहित पत्नियो के अलावा अनेक उपपत्नियो, दासियो, वेश्याओ से सबध रखना भी सामान्य बात थी। 'कुट्टनीमतम्' इसका ज्वलत उदाहरण है। राजघरानो ने काम-लिप्सा, शौर्य-लिप्सा और सतान-लिप्सा से प्रेरित होकर ही इसे अपनाया था। वरना जनसाधारण एक-पत्नीत्व के आदर्श को ही मान्यता देता था।

धर्म ने व्यक्तिगत व्यवहार और आचार का भी निर्धारण कर दिया था। धर्मशास्त्रो ने खाद्य और अखाद्य वस्तुओ का विश्लेषण, स्नान के नियम, बडो के प्रति आदर, उदय और अस्त के समय सूर्य दर्शन का वर्जन, भार से लदे व्यक्ति, गुरु-जनो तथा गर्भिणी को मार्ग देने, नग्न स्त्री, कुआ आदि न देखने, हत्या-स्थान, भस्म तथा घृणित वस्तुओ को न लाघने आदि, समग्र व्यवहार की बातो को भी धर्म की सीमा-रेखाओ मे बाध दिया था।[112] पति-पत्नी के व्यक्तिगत सबध भी धर्म द्वारा शासित थे।[113] मृत्यु पर किया जानेवाला अशौच, दाह-सस्कार एव पिंडदान के कर्तव्यो का सीमाकन हो गया था।[114] इसके बाद भी श्राद्ध पक्ष मे पितृ-देव का श्राद्ध करना जरूरी रहता था।[115] श्राद्ध-भोजन हेतु ब्राह्मण आमत्रित किये जाते थे।[116]

मूर्तिपूजा के प्रचार ने प्रत्येक घर मे देवालय की स्थापना कर दी थी। पतजलि काल से ही देव-मूर्तिया बनाकर वेची जाने लगी थीं।[117] जिन्हे घर ले जाकर लोग पूजा आदि करते थे। व्रत, उपवास, दान-धर्म, गृह-नक्षत्रो की शाति हेतु उनका पूजन, महापातक, गुप्त पापो के प्रायश्चित, पापनाशक स्तोत्रो का पठन, प्रायश्चित प्रतिपदा से चतुर्दशी तक के व्रत-उपवास आदि नियत कर दिये गये थे।[118] देव-प्रतिमाओ की प्राण-प्रतिष्ठा सबधी नियम, प्रतिमाओ के लक्षण, पुरातन मदिरो व देव-मूर्तियो के जीर्णोद्धार सबधी विधियां, ध्वजारोहण आदि ऐसा कोई विषय न बचा था जिसे धर्म ने स्पर्श न किया हो।[119] फलस्वरूप समस्त जीवन, धर्म की लक्ष्मणरेखाओ मे घिर गया था।

धर्म के निर्देशक तत्वो ने पूर्व मध्य युग मे रूढियों का रूप धारण कर लिया था। दैनिक चर्या मे बाह्य आडबर, पाखड, जड-पूजा, जात-पांत के भेद तथा जन्मना ब्राह्मणों का वर्चस्व सर्वथा अनुचित था। समाज के प्रति घातक, आतक, अध-

विश्वासो आदि अनेक पतन की ओर ले जानेवाली परपराओ की दिनोदिन वृद्धि हुई। सामाजिक शरीर, इन अघपरपराओ के जाल मे इतना जकड गया कि वह विचार, कर्म और विश्वास की स्वतत्रता, बडी सीमा तक खो बैठा।[120] धर्म ने जनसाधारण को पारलौकिक चिताओ से अधिक ग्रसित कर रखा था। इस कारण वे कलियुग की हीनता मे विश्वास और अपने वर्तमान एव भविष्य मे अनास्थावान हो गये थे। इसने दैववाद अथवा भाग्यवाद के सिद्धातो को समाज मे स्थान देकर मानव-व्यक्तित्व व पुरुषार्थ को दबा दिया। फलित ज्योतिष मे अनुचित आस्था ने मानव की क्रिया-शक्ति को शिथिल कर दिया।[121] धर्म ने सामाजिक बिखराव को ही जन्म दिया। उसने राष्ट्रीय-राजनीतिक चेतना को कुठित कर दिया।

धर्म और अर्थ-व्यवस्था

सभी वर्णों के लोगो के व्यवसाय एव आर्थिक कार्यों का निर्धारण भी धर्मशास्त्रो ने कर दिया था। ब्राह्मणो का प्रमुख काम वेदाध्ययन और पठन-पाठन था। प्रत्येक ग्राम मे पुरोहित का पद ब्राह्मणो के पास ही रहता था। उन्हें राजसभा की ओर से जीवन निर्वाह वृत्ति के रूप मे दान, दक्षिणा, उपहार आदि मिलता था।[122] धार्मिक कृत्य और पुण्य कार्य कराने से जो आय होती थी, वही उनकी जीविका का साधन थी।[123] पूर्व मध्य काल म भी वे यही कार्य करते थे।[124] देव मदिरो के प्रमुख कर्ता धर्ता ब्राह्मण ही होते थे। उन्ह राजा नरेशों की ओर से ग्राम-स्वर्ण मुद्राए आदि दान मे मिलती थी।[125] अत वे सेवको द्वारा खेती कराते थे। ग्रामवासी भी ग्राम-देवालय के ब्राह्मण पुरोहित को दान आदि द्वारा खुश रखते ही होगे। यज्ञ हवन, धार्मिक-कृत्य, विवाह, उपनयन, श्राद्ध, पिड-दान आदि करना उनके मुख्य कर्तव्य थे। अन्य आपातकालीन कार्य भी धर्मशास्त्रो ने उन्हें करने की अनुमति दी थी।

ब्राह्मणो को व्यापार की अनुमति नही दी गयी थी।[126] परतु अलबीरूनी ने कई ब्राह्मणो को व्यापार करते देखा था। इस काम मे ब्राह्मण, वैश्य की सहायता ले सकते हैं। उन्हे घोडे, गाय आदि पशुओ का व्यापार नही करना चाहिए। न ही व्यापार मे छल, कपट, झूठ बोलना चाहिए।[127] परन्तु महोबा अभिलेख से पता चलता है कि भट्टवाहक का पुत्र घोडो का व्यापार करता था।[128] ब्राह्मण को ब्याज के धधे की अनुमति भी दी गयी थी।[129] अनेक ब्राह्मण राज-सेवा भी करने लगे थे। वे मत्री,[130] नगर मुख्य,[131] कायस्थ (लेखक), दड-नायक,[132] आदि काम भी करते थे। शिवरत्न नामक ब्राह्मण ने कायस्थ (लेखक) का कार्य स्वीकार किया था।[133]

पूर्व मध्ययुग मे ब्राह्मणो ने न केवल सैनिक-वृत्ति अपना ली थी, वरन राज्यो का निर्माण भी किया था। दक्षिण भारत का वनवासी का कदब वशी राज्य मानव्य गोत्रीय ब्राह्मण था। वनवासी को राजधानी बनाकर राजा मयूरशर्मा ने इसकी स्थापना की थी।[134] काश्मीर नरेशो की सेना मे कई ब्राह्मण सैनिक थे, जिन्होंने

युद्ध मे भाग लिया था ।[135] चदेलराज परर्मादि ने मदनपाल शर्मन को अपना सेनापति नियुक्त किया था ।[136] वैसे यह आपातकालीन कार्यों मे आता है ।[137] परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ब्राह्मण अन्य व्यवसायो को भी करने लगे थे ।

क्षत्रियो का कार्य मुख्यत सैनिक-वृत्ति था । पूर्व मध्य युग म प्रधानतया सेना क्षत्रियो की ही होती थी । फिर भी कई क्षत्रिय, सेवको भृत्यो से कृषि और पशु-पालन का कार्य कराते थे । इन्हे भी शास्त्रकारो ने क्षत्रियो के आपातकालीन कर्मों के अतर्गत रखा है ।[138] फिर भी सामत-प्रथा के कारण कृषियोग्य काफी भूमि क्षत्रियो के पास थी । क्षत्रिय पुत्र मेमाक तो स्वय खेती करता था ।[139] यदि कुछ क्षत्रिय, व्यापार और अन्य शिल्पज्ञ का काम करते हो तो आश्चर्य नही ।[139A]

व्यापार, कृषि, पशु पालन और खेती का व्यवसाय वैश्यो के हाथ मे था ।[140] गीता ने भी वैश्यो को यही काम करने की अनुमति दी थी ।[141] परन्तु वैश्यो ने कृषि-कर्म कम कर दिया था । वे अन्य व्यापारिक कार्यों मे लग गये थे ।[142] फिर भी वे तेल, नमक, मद्य, शहद, मास, दूध आदि का व्यापार नही करते थे । यदि तिल, उनके खेत मे उत्पन्न हुआ तो वे उसे बेच सकते थे ।[143] कई वैश्य ब्याज व लेन-देन आदि का धधा भी करते थे । इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागो से प्रसिद्ध वस्तुओ का आयात निर्यात भी वैश्य वर्ग के पास ही रहा होगा ।

शूद्रो को शिल्प रचना का कार्य दिया गया था ।[144] उन्हे कृषि-कर्म से वचित रखा गया था ।[145] परतु कई शूद्र इस कार्य को करते थे ।[146] कृषि एक ऐसा व्यवसाय बन गया था कि सभी वर्णों के लोग इसे करने लगे थे ।[147] शूद्र सेवक, भृत्य पशु चराने और ब्राह्मण-क्षत्रियो वैश्यो की ओर से काश्तकार का काम भी करता था ।[148]

व्याध (बहेलिए), शौति (कसाई), शाकुनिक (चिडीमार), मृगयु (शिकारी), कैवर्त (केवट) रजक (धोबी) आदि के काम अस्पृश्यो को सौप रखे थे ।[149] अत्यजो मे ही चमडे का काम करनेवाले विश्वण (चम्हार) भी थे[150] बास की टोकरी और ढाल का काम करने के व्यवसाय को अत्यजो को ही सौंप रखा था ।[151] बजारा, बुनकर, हाडी, चाडाल आदि का काम करनेवाले भी थे ।[152] नट, बाजीगर, शिल्पज्ञ आदि का काम भी होता था । इस काल के भव्य मदिर वास्तुकारो की श्रेष्ठता के परिचायक हैं । कई ब्राह्मण मूर्तिकार[153] और अभिलेखो[154] के निर्माता थे । धन्धे और व्यवसाय अक्सर कुलक्रमानुगत थे ।[155] यद्यपि धर्मशास्त्रो ने जातिगत व्यवसायो का निर्धारण कर दिया था फिर भी व्यावहारिक रूप मे लोग उनके निर्देशो का उल्लघन कर रहे थे ।

देश की आर्थिक समृद्धि के कारण ही सोमनाथ, मथुरा, कन्नौज, महाबलिपुरम् के मदिरो मे प्रचुर मात्रा मे स्वर्ण, रत्नादि एकत्र हो गए थे । मोक्ष की चिंता से ग्रसित समाज के सभी वर्गों ने इन मदिरो को अपनी क्षमतानुसार दान देकर इन्हे

धर्मशास्त्रकारो ने शिल्प कला निर्माण सबधी निर्देश प्रदान किये थे। महर्षि शुक्राचार्य ने देव-प्रतिमाओ की सृष्टि करते समय शिल्पी को केवल आध्यात्मिक दृष्टि को ही आधार बनाने का निर्देश दिया था, न कि मानवेंद्रियो द्वारा गम्य होने वाले तत्त्वो को। वे आगे निर्देशित करते हैं, "कृति की सार्थकता इसी मे है कि उसके कृतिकार की साधना और योग मे कितनी प्रेरणा मिलती है। अत मूर्तिकार को साधक और उपासक होना चाहिए। इसके बिना मूर्ति के गुण-शील की अनुभूति प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नही है—प्रत्यक्ष निरीक्षण भी नही है।"[170]

परतु पूर्व मध्य युगीन कला ने अपने युग की धार्मिक आवश्यकताओ के अनुरूप भी नये प्रतिमान कायम किये। खजुराहो, कोणार्क, पुरी, भुवनेश्वर ही नही मालवा मे ऊन के मदिरो मे भी रति मूर्तियो को व्यापक पैमाने पर उत्कीर्ण किया गया था। लेखक को खडवा मे भी इस प्रकार की मूर्तियो का वलय देखने को मिला है। हिंदू-बौद्ध ही नही वरन जैन कला भी इससे अछूती न थी। धर्म और काम-कला के समन्वय ने, आधुनिक कला प्रेमियो और इतिहास के चाहनेवालो को, आश्चर्य मे डाल दिया है।

ऐतिहासिक-धार्मिक दृष्टि से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष भारतीय सास्कृतिक जीवन के अनिवार्य पहलू है। जीवन इसी सत्य-चतुष्टय पर आधारित है।[171] पूर्व मध्य काल मे धर्म ने अर्थ, समाज सबको आच्छादित कर लिया था। साथ ही इस युग मे बौद्धो हिंदुओ मे शाक्त व तात्रिक पद्धतियो का व्यापक पैमाने पर धार्मिक क्षेत्र मे प्रचार हो रहा था।[172] हीनयान ने शीघ्र ही महायान को स्थान दिया। पूर्व मध्य युग तक वज्रयान और उससे सबधित मत्रयानी बौधो ने सिद्धि प्राप्ति के लिए हठयोग और नारियो का सहारा लिया। फलत सिद्धो ने विहारो-मठो मे मत्रों और हठयोग के साथ मैथुन को प्रश्रय दिया।[173] 'प्रज्ञा' तथा उपाय' क्रमश नारी, मुद्रा, भगवती वज्रकन्या युवती मे बदल गए।[174] परिणामस्वरूप वज्रयानी बौद्ध सिद्धो ने पत्नी, माता, पुत्री और बहन मे भी कोई भेद न रखा।[175]

जहा एक ओर बौद्धो से सबधित सिद्धो ने भोग और लिप्सा की भावना को अपनाया वही हिंदुओ से सबधित शाक्त-शिव-तत्र पद्धति ने भी इसका स्वतत्र रूप से विकास किया। परतु वह भी सिद्धो का पर्यायवाची ही थी।[176] हिंदू-शैवो शाक्तो मे वह शिव शक्ति का रूप लेकर आयी।[177] कालमुख और कापालिक सप्रदायो और नाथों ने इसे बढावा ही दिया। समयुगीन साहित्य ग्रथो मे भी हमे इसकी प्रतिध्वनि दृष्टिगोचर होती है कृष्ण मिश्र का नाटक 'प्रबोध चद्रोदय' और 'कुट्टनीमतम्' की विलासिता इसी की कडी थे।

यद्यपि जैन धर्म मे व्यापक स्तर पर इसका प्रचार न था। परतु वह भी इससे अछूता न बचा था। उसम भी कई गुह्य प्रवृत्तिया घर करने लगी थी।[178] 'निर्वाण' को एक सुदरी मान लिया था जिसे सभी पाने की इच्छा करते थे। शून्यता का

भाव स्वीकार कर लिया गया था, जिस पर केंद्रित करना जरूरी था। वही समरस भाव प्राप्त करने मे सहायक होगा।[179] वे शिव शक्ति के युग्म को समस्त सृष्टि का कारण मानने लगे थे। और इसे अपने आप मे ही पाया जा सकता था।[180] जैनो मे भी नाथ-सिद्ध सप्रदायो के समान, गुह्य समाजी, पारसनाथी-मिननाथी सप्रदायो का गठन हो गया था।[181] समृद्धिशाली जैन-समाज का स्वय का जीवन विलासमय था। उन्होंने कई चैत्यो, जिनालयों को अभूतपूर्व राशि दान मे दी थी। वे नृत्य, सगीत आदि का आनद उठाने लगे थे।[182] अनेक जैन-साधु आनद मनाने व पर-दारा के साथ भोग विलास मे ही मोक्ष ढूढने लगे थे।[182A] अत रति विषयक प्रवृत्तिया जैन मदिरों मे प्रगट हुई हो तो आश्चर्य नही।

मदिरो से सबद्ध देवदासी की प्रथा को भी धार्मिक मान्यता मिली हुई थी।[183] इसने देवालयो की वेश्यावृत्ति (Temple Prostitutions) को जन्म दिया।[184] धार्मिक स्तर पर देव-दासियो के मुख्य काम देव मदिर मे नृत्य, गायन और काम क्रीडा थे, जिसे समाज ने निंदनीय नही माना था।[185] गुजरात के मदिरो म बीस हजार से अधिक देवदासियो व नर्तकिया थी।[186] जब मदिरो म काम-क्रीडा को धार्मिक मान्यता मिल गयी तो फिर कला उससे कैसे अछूती रह सकती थी। देवालय, आराधना के स्थान पर काम-लिप्सा, कामिनियो के शृगारपूर्ण पायलो की रुनझुन और कामोद्दीपक नयन-कटाक्षो का स्थल बन गए थे। वे काम-मदिर व काम शास्त्र की शिक्षा के केंद्र हो गए। शिल्पकार इन सम सामयिक प्रवृत्तियो से बच न सका।

काम, वैसे भी भारतीय कला मे अस्पृश्य नही माना गया था। भारतीय साधना के सप्रदायो मे उनका अपना स्थान रहा। साँची, अमरावती, मथुरा की कला के तारतम्य मे ही एलोरा के कैलाश मदिर को देखा जा सकता है। कोणार्क-खजुराहो तो उसकी अगली कडी थे। एलोरा के शिव पार्वती की मैथुन-मुद्राए, मैथुन-साधना का निर्माणात्मक स्वरूप ही प्रस्तुत करती है। उसे पूर्व मध्य युगीन धर्म व समाज ने एक सामान्य व आवश्यक जीवन गति के रूप मे ही स्वीकार कर लिया था।[187] राजा-सामतो का व्यक्तिगत जीवन तथा उनके द्वारा शासकीय मान्यता, विशेषकर धर्म की सम्मति की अभिव्यक्ति उस काल की कला मे स्पष्ट दिखायी देती है।

धार्मिक समन्वय एव सामजस्य

भारतीय धर्मों मे प्रमुख शैव, शाक्त और वैष्णव मतो का अध्ययन यह स्पष्ट दर्शाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से उनका स्वरूप समन्वयात्मक अधिक है। आर्य-अनार्य सस्कृतियो को सघर्ष इतिहास की एक सामान्य परिणति था। आर्यो ने पूर्व वैदिक काल में म अनार्य देव, शिव को सरलतापूर्वक नही अपनाया। शिव भयजन्य देव

और वैष्णव मत अपने समन्वित रूप मे ही इस काल में हमारे सामने आते हैं। समन्वय की इस नीति ने भारतीय धार्मिक जीवन को विविधता-अनेकरूपता के साथ अंतर्निहित एकरूपता भी प्रदान की। अत भारत के प्रमुख धर्म संघर्ष-समन्वय के ही परिणाम हैं। आगामी सदियो मे भी इसे अपनाया गया।

भक्ति भी मानव-सभ्यता की आदिम भावना है। वह पूर्व मध्य युग की देन नही है। पूर्व एव मध्य युग तो उत्कर्ष का स्वर्ण युग था। बीलाघाटी की गुफाओ मे प्राप्त सीगधारी मानव के आसपास खडे मानव व पशु, भक्ति की इस भावना के परिचायक है। सिंधु-सभ्यता की मूर्ति पूजा ने भक्ति और समर्पण की इस भावना को अधिक स्पष्ट रूप मे मुखरित किया। वैदिक साहित्य मे उसे वाणी और भाषा मिली। ऋग्वेद म भक्ति के भाव, यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे पडे हैं। उपनिषदो ने भक्ति और समर्पण के भावो को दार्शनिक लाक्षणिकता देकर उन्हे अधिक विकसित किया। वैष्णवो की एकातिक भक्ति और अवतारवाद की भावना ने भक्ति को नया उन्मेष दिया। इसन व्यक्तिगत देवता की भक्ति और विशेषकर विष्णु के अवतारो, उनमे भी राम और कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण और आत्म-निवेदन को अधिक मान्यता दी। भक्ति-दर्शन का विकास इसी अधार पर हुआ और भक्ति के दास्य, सख्य, मित्र, वात्सल्य आदि प्रकार भी प्रचलित हुए। दक्षिण के आळवारो ने भक्ति के इन रूपो को प्रस्तुत किया। कालातर मे मध्ययुग मे इन्ही का उत्तर भारत म प्रचार हुआ। नायनारो ने शिव के प्रति इन्ही उद्‌गारो को प्रगट किया। भक्ति की आदिम भावना, पूर्व मध्य युग मे अपने चरमोत्कर्ष पर अपने समस्त भारतीय उपादानो के साथ जा पहुची। उसे विदेशी देन नही कहा जा सकता।

पूर्व मध्य कालीन भारत अनेक प्रमुख और उनके उप-समुदायो मे विभाजित हो गया था। विष्णु शिव और शक्ति की कई रूपो मे पूजा होने लगी थी। धर्मावलबियो की अधिकता ने अनेकानेक देव-मदिरो के निर्माण की प्रेरणा देश के धर्म जिज्ञासुओ को दी। इसने कई तीर्थस्थलो को महत्व दिलाया।[188] सूर्य, शिव-परिवार के सदस्य, गणेश, भैरव, काल-भैरव आदि भी पूजित थे। आचार्य आनदगिरी ने उस सदी के प्रतिस्पर्द्धी धार्मिक सम्प्रदायो का अत्यत ही रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। देश मे भूत वेतालो के भी भक्त थे।[189] तान्त्रिकता ने जादू-टोने और तन्त्र-मन्त्र को भी धार्मिक जीवन मे स्थान दिला दिया। तन्त्र-मन्त्र की चमत्कारिता ने कई लोगो को चमत्कृत कर रखा था। अलबीरुनी लिखता है, 'मन्त्र-जन्त्र और जादू-टोने में हिंदुओ का अडिग *विश्वास है। और इनके प्रति उनका झुकाव भी है।"*[190] जादू-टोने और *भूत-प्रेत की भावना ने समाज के धार्मिक*, नैतिक स्तर को गिराया ही।[191]

धर्म के प्रति लोग इतने श्रद्धावान थे कि प्रयोग[192] के सगम-स्थल पर प्राणोत्सर्ग पुण्यवान धार्मिक कृत्य माना जाता था। धर्म के नाम पर धार्मिक अत्याचारो

की कमी थी। इसका यह अर्थ नही कि धर्म के नाम पर सघर्ष नही हुए। दक्षिण मे जैनो और रामानुज को भी इसका शिकार होना पडा।[193] परतु धर्मों की बहुलता ने धार्मिक उदारता और सामजस्य को ही जन्म दिया था। इसने धार्मिक चिंतन की विविधता, व्यक्तिगत धार्मिक स्वतत्रता तथा असाप्रदायिक भावना को विकसित किया। यह व्यक्तिगत स्वतत्रता, साप्रदायिक अनुयायिता की आत्मा में विकास का ही परिणाम थी।[194]

शासकीय स्तर पर सभी धर्मों को मान्यता थी। राजनीतिक सघर्षों के बावजूद भी पूर्व मध्य युगीन नरेश शत्रु-देश के मदिरो व धार्मिक परपराओ का सम्मान करते थे। चोल नरेश विजयालय न तजौर जीतने के बाद वहा निशुभसूदनी (दुर्गा) के मदिर का निर्माण कराया था।[195] हिंदू नरेशो की बौद्ध रानियो द्वारा बौद्धो को दान आदि के कई उदाहरण मिलते हैं। न केवल भारत में भारत के विभिन्न सप्रदाय वरन समुद्र किनारे के नगरो मे बसे अरब, चीनी, यहूदी,[196] ईसाई और सिंध मे बसे मुसलमान[197] भी स्वतत्रतापूर्वक अपने-अपने धर्मों का पालन करते थे। चेर राज्य मे रोमवासी कई यहूदी व्यापारी बस गए थे। इन्होंने मुजिरिस में आगस्टस का एक मदिर बनवाया था। चेर नरेशो ने इसकी न केवल अनुमति दी वरन दसवी सदी मे रविवर्मन ने यहूदी और इसाई धर्म प्रचारको को अपने धर्म-प्रचार की सुविधा भी दी थी।[198] मुसलमानो की धार्मिक कट्टरता और सकुचित दृष्टि-कोण का, भारतीयो मे अभाव था। धार्मिक विचारो की बहुलता के कारण वे 'सर्वधर्म समभाव' को विकसित करने मे सफल हुए थ। अनेक कमियो के बाद भी धर्म ने जिस समन्वय, सामजस्य और उदारवादी सहिष्णु दृष्टिकोण को विकसित किया वह भारतीय सस्कृति की थाती है।

सदर्भ

1 एम० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 18
2. रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 370
3 पी० शरन मध्य युगीन भारत, पृ० 15
4 यू० एन० घोषाल स्टडीज इन इडियन हिस्ट्री एड कल्चर, पृ० 525
5 वही।
6 के० एम० मुशी भूमिका—द स्ट्रगल फार एम्पायर
7 हबीब मज आस्पेक्ट्स आफ रिलिजन एड पालिटिक्स इन इंडिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ सेंचुरी—भूमिका
8 ईश्वरीप्रसाद भूमिका—मेडिवल इडिया, पृ० XXXI
9 लोकल गवर्नमेंट इन एसिएंट इडिया
10 रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 371

11 ईश्वरीप्रसाद . मेडिएवल इंडिया, भूमिका, पृ० XX
12. नारद स्मृति 18/3
13 यक्षात्र धर्मोनीत्युतको दण्डनीतिपपाश्रय ।
तमशङय कमरिष्यामि स्ववशो न वदाचन ॥
—महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 9
14 बील बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स, भाग V, पृ० 212
15 शुक्नीति सार 1-87
16 *ए० एस० अल्तेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० 5, 59*
17 स्वभाग भृत्या दारयत्वे प्रजाना च नृप कृत ।
ब्रह्मणास्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा ॥
—शुक्नीति सार, 4-2 130
18 के० पी० जायसवाल एंसिएंट हिंदू पालिटी, पृ० 58-59
19 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ग्राफ द वैस्टर्न वर्ल्ड, भाग V, पृ० 210-13
20 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 295
21 वी० एन० लुणिया युगयुगीन धार
22 द एज ग्राफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 232
23 *मनुस्मृति मेधातिथि की टीका, सम्पादक डा० गगानाथ झा (कलकत्ता)*
24 विश्वरूप—टीका, त्रिवेंद्रम सस्कृति मिरीज
25 के० एम० मुशी भूमिका—द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० IX
25A शुक्नीति सार 12
26 वल प्रजारक्षणार्थं धर्मार्थं कोप सग्रह ।
परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यनस्तु दुखद ॥
—शुक्नीति सार, 4 2, 3 5
27 ए० एस० अल्तेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, 5/63
28 वाणभट्ट कादम्बरी, पृ० 335-338
29 *एपीग्राफिका इंडिका, भाग I,* पृ० *197, 208 211*
30 राजतरगिणी, अष्टम स्तरग, पृ० 733
31 गीता 2/31-32
32 मनुस्मृति 1/4
33 'अधर्म क्षत्रियश्चैव यच्छ्यया मरण भवेत"
—शुकनीति सार 47, पृ० 305
34 पी० मरन मध्ययुगीन भारत, पृ० 17
35 *वही ।*
36 ए० के० निजामी सम ग्रास्पेक्ट्स ग्राफ रिलिजन एड पालिटिक्स इन इंडिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ सेंचुरी, पृ० 213
37 वही ।
38 पी० सी० चक्रवर्ती आर्ट ग्राफ वार इन एंसिएंट इंडिया, पृ० 78 82
39 मनुस्मृति 8/348-49
राजतरगिणी, 7/1480

40 बी० के० मजुमदार द मिलेट्री सिस्टम इन एंसिएंट इंडिया, पृ० 19
41 अलबीरूनी भाग I पृ० 104
42. के० एम० मुंशी भूमिका—द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 11
42A मुहम्मद हबीब महमूद आफ गजनी
ए० एल० श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ० 62-63
43 एपीग्राफिया इंडिका, भाग XV, पृ० 204
44 वही।
45 द एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० 232
46 पराशर स्मृति, 1/66
47 लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ कांड, पृ० 191
48 पी० सरन मध्ययुगीन भारत, पृ० 17
49 वही।
49A एस० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 20-49
49B वही।
49C. एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 174
50 द क्लासिकल एज पृ० 560
51 वही।
52. अग्नि पुराण, अध्याय 108
53 सी० वी० वैद्य मध्य भारत, भाग II पृ० 312
54 शतपथ ब्राह्मण 5-5-49
'गुण समुदायवृत्तेः ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य शूद्र इति
—पतंजलि महाभाष्य, 5 1 115, पृ० 347
55 समरांगण सूत्रधार 7-49
56 सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, भाग II पृ० 313
57 राजतरंगिणी 3/489 7/2407
58 शुक्रनीति सार 4-521
59 अग्निपुराण 166-4 8
60 वही।
61 वही, 9-17
62. पतंजलि महाभाष्य 2 2 34, पृ० 391
63 वही, 2 2-6 पृ० 340
64 '[illegible]'
—हर्षचरित, पृ० 20
65 [illegible], भाग I पृ० 100
66. वही, भाग I पृ० 102
66A बी० डी० अग्निहोत्री पतंजलिकालीन भारत, पृ० 190
67 मनुस्मृति 1 88 याज्ञवल्क्य स्मृति 5 118 अलबेरूनी, भाग II पृ० 111
68 पतंजलि महाभाष्य 1 2 45, पृ० 538
69 वही 1 1-47 पृ० 374

70 पतजलि महाभाष्य, 2 1-17, पृ० 232
71 लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु
72 नारद स्मृति 9 11
73 अलबीरूनी, भाग II, पृ०162
लक्ष्मीधर गृहस्थ काड, पृ० 297, राजधर्म काड, पृ० 91-92
74 विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्य स्मृति, 2-21
75 अलबीरूनी, भाग II, पृ० 162
76 लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु राजधर्म काड, पृ० 252
77 वही राजधर्म काड, पृ० 176
78 अथर्ववेद 5 17 8-9
79 अग्नि पुराण, 151, 2 9
80 पराशर स्मृति, 1 66
81 प्रज्ञाना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्व सक्तिश्च क्षत्रियस्य समासत ॥
—मनुस्मृति, 1 89
82 टॉड एनल्स एड एटीक्वीरीज आफ राजस्थान, भाग I, पृ० 73-97
83 गौरीशकर ओझा राजपूताना का इतिहास, भाग I
सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, भाग II
84 कृत्यकल्पतरु राजधर्म काड, पृ० 175
85 बी० के० बरुआ ए कल्चरल हिस्ट्री आफ आसाम, भाग I, पृ० 103
86 अग्नि पुराण 151/2-9
87 अलबीरूनी भाग II पृ० 136
88 सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, भाग II पृ० 318
89 वही।
90 तहकीक ए मालिल ए हिंद, भाग II, पृ० 136
91 ए० एस० अल्तेकर द राष्ट्रकूटाज एड देयर टाइम्स, पृ० 332-336
अलबीरूनी, भाग I, पृ० 101
92 वही, भाग II, पृ० 136
93 एपीग्राफिया इडिका, भाग XIX, पृ० 58
74 अग्निपुराण, 153/10-12
95 वही, 151/2-9
96 वही।
97 अलबीरूनी, भाग II पृ० 136
98 मा हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये पिस्यु पापयोनय ।
स्त्रियो वैश्यस्तथाशूद्रस्ते पियान्ति पारगतिम् ॥
—गीता, 9 32
99 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इडिया, पृ० 430
100 अपरार्क याज्ञवल्क्य स्मृति भाष्य, पृ० 293
101 कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ काड, पृ० 336, 427

102 अपरार्क याज्ञवल्क्य स्मृति भाष्य, पृ॰ 293
103 पराशर स्मृति, 7/7 8
104 अग्निपुराण, अध्याय 154 विवाहविषयक विधान
105 याज्ञवल्क्य स्मृति, 4/91 92, मनुस्मृति, 10-12
मेधातिथी मनुस्मृति भाष्य, भाग II, पृ॰ 18-20
106. वही, भाग IX, पृ॰ 4
107 मनुस्मृति 3-5, अलबीरूनी, भाग II, पृ॰ 155
108 वही।
109 नारद स्मृति 95, आपस्तम्ब सूत्र, 2-5, 12-13
110 पृथ्वीराज रासो
111 एपीग्राफिया इंडिका, भाग II, पृ॰ 4
112 अग्निपुराण, अध्याय 115, आचार वर्णन
113 मनुस्मृति, 3/56, 9-101, 102
114 अग्नि पुराण, अध्याय, 157, अलबीरूनी, भाग II, पृ॰ 156-57
115 पतंजलि महाभाष्य, 1/1/72, पृ॰ 448
116 वही, 1-1-43, पृ॰ 257, 5-2-85, पृ॰ 401
117 पी॰ डी॰ अग्निहोत्री पतंजलिकालीन भारत, पृ॰ 552
118 अग्नि पुराण देखिए अध्याय 142, 171, 172 से 200 तक
119 वही, अध्याय 41-103
120 पी॰ सरन मध्ययुगीन भारत, पृ॰ 17
121 रा॰ ब॰ पाण्डे प्राचीन भारत, पृ॰ 372
122 हर्षचरित 91, 113 एव 124
123 राजतरंगिणी लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु—राजधर्म कांड, पृ॰ 176
124 वही, 4 190-195
125 वही।
126 मनुस्मृति, 10/86-116
127 अलबीरूनी भाग II पृ॰ 132
128 एपीग्राफिया इंडिका भाग I, पृ॰ 184, 478
129 लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ कांड, पृ॰ 214 21
130 राजतरंगिणी, 8 108
131 वही।
132 एपीग्राफिया इंडिका, भाग II, पृ॰ 301
133 राजतरंगिणी, 8-238
134 रा॰ ब॰ पाण्डे प्राचीन भारत
135 राजतरंगिणी, 7 1480, 8 1013, 1071
136 इंडियन एण्टीक्वेरी, भाग XXV, पृ॰ 205
137 शुक्रनीति सार, 4 1013
138 लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु गृहस्थ कांड, पृ॰ 191
139 एपीग्राफिया इंडिका, भाग I, पृ॰ 154

139A सी० वी० वैद्य मध्य युगीन भारत, भाग II, पृ० 323
140 अलबीरूनी, *भाग I, पृ० 103*
141 'कृषि गोरक्ष वाणिज्य वैश्यकर्म स्वभावजम् ।'
—गीता, 18-43
142 सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, भाग II, पृ० 326
143 वही ।
144 *अग्निपुराण, 151/2 9*
145 अलबीरूनी भाग II, पृ० 137
146 अल-इद्रीसी भाग I, पृ० 76 (अनु० इलियट एड डाउसन)
सी० वी० वैद्य मध्ययुगीन भारत, भाग II, पृ० 323
147 वही ।
148 *द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 475*
149 अपरार्क याज्ञवल्क्य स्मृति भाष्य, पृ० 1196
150 मनुस्मृति 10-49
151 वही, 10-37
152 अलबीरूनी भाग I, *पृ० 102, मनुस्मृति, 10-51 55*
153 गिरनार अभिलेख
154 एपीग्राफिया इडिका, भाग II, पृ० 394
155 एम० एल० शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, पृ० 283
156 वही, पृ० 258
157 *द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 355*
158 विंटरनिट्ज हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, भाग II, पृ० 478
159 द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 355
160 वही ।
161 *द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 468*
162 द कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III, पृ० 151
163 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 468
164 श्लोक वार्तिका, विद्याधिकर्ण, पृ० 330 340
प्रमाण समुच्चय
द कल्चर हेरिटेज आफ इडिया भाग *III, अध्याय 7*
द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 468-70
गगानाथ झा पूर्व मीमांसा
165 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० 239
166 ब्रह्मसूत्र भाष्य 3/3/53
167 वही ।
द कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया, भाग III अध्याय 11-12
द एज आफ इपीरियल कन्नौज, पृ० 359 61
सी० वी० कृष्णास्वामी अय्यर शकर फिलासफी, पृ० 106-156
168 वासुदेव उपाध्याय पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ० 139

169 एम० एल० शर्मा भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० 247
170 शुक्रनीति सार, 414, 147-150
171 केशवचंद्र मिश्र चंदेल और उनका राजत्वकाल, पृ० 245
172 वी० एस० उपाध्याय द जर्नल आफ बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, भाग V, पृ० 227 (1940)
173 वही, 230-31
174 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 409
175 गुह्य समाज तंत्र, पृ० 120-136
176 वी० एस० उपाध्याय जर्नल ग्राफ बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, भाग V, पृ० 232-34
177 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 409
178 बुद्ध प्रकाश ग्रास्पेक्ट्स आफ इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, पृ० 307
179 सण्णऊ मऊ इनायतन्हु वलि वलि जोइच जाइ।
समरसि भाऊ परेण सहू पुण्णुवि पाउण जोह ॥—282
योगेन्द्र परमात्मा प्रकाश—स० ए० वी० उपाध्याय,
कोटेड बाइ डॉ० बुद्धप्रकाश, पृ० 307
180 दोहादेवलि जो वसइ सत्तिहि सिइयउ देऊ।
को तिहि जोइय सत्ति सिउ सिग्घु गवेसहि मेऊ ॥—पद्य 38
रामसिंह पाहुडा दोहा—सम्पादक, एच० एल० जैन
181 बुद्धप्रकाश आस्पेक्ट्स आफ इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, पृ० 308
182 वही।
182A कृष्ण मिश्र प्रबोधचंद्रोदयम, अंक 3, श्लोक 5-6
183 बील बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स, भाग II पृ० 274
184 अलबीरूनी भाग II, पृ० 157
185 जयशंकर मिश्र ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० 161
186 द स्ट्रगल फार एपायर, पृ० 495 96
187 वही, पृ० 653
188 शंकर दिग्विजय, पृ० 3-7
187 वही।
190 अलबीरूनी भाग II पृ० 193
191 रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 372
192 अलबीरूनी भाग II पृ० 170-171
193 एन० के शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 430
194 ईश्वरी प्रसाद भूमिका—मेडिवल इंडिया, पृ० XXVIII
195 एन० के० शास्त्री हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया, पृ० 174
196 वही, पृ० 313
197 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० 463 64
198 रा० ब० पाण्डे प्राचीन भारत, पृ० 362

आधार एवं संदर्भ-ग्रंथ

आधार-ग्रथ

(अ) वैदिक साहित्य
1 अथर्ववेद
2 ऋग्वेद
3 सामवेद
4. यजुर्वेद

(आ) ब्राह्मण
1 ऐतरेय
2 गोपथ
3 शतपथ
4 पचविंश

(इ) आरण्यक
1 ऐतरेय
2 तैत्तिरीय
3 बृहदारण्यक

(ई) उपनिषद
1 ईशावास्योपनिपद गीता प्रेस, गोरखपुर
2 ऐतरेय ”
3 कठोपनिषद ”
4 केन गीता प्रेस, गोरखपुर
5 छादोग्य ”
6 तैत्तिरीय ”
7. प्रश्नोपनिषद ”
8 बृहदारण्यक ”

(ई) उपनिषद (क्रमश)
9 मुडकोपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर
10 श्वेताश्वतरोपनिषद ”

(उ) सूत्र साहित्य
1. श्रौत सूत्र
2 आपस्तब सूत्र
3 आश्वलायन
4 कात्यायन
5 जैमिनिय
6 बौधायन
7 द्राह्यायण
8 मानव
9 लाटयायन
10 वैतान
11 साखायन

12. हिरण्यकेशी

(ऊ) गृहसूत्र
1. आपस्तम्ब
2 आश्वलायन
3. कौशिक
4. खदिर
5. गोभिल
6. पारस्कर
7. बौधायन
8. भरद्वाज
9. मानव
10. सांख्यायन
11. द्राह्यायण

(ए) धर्मसूत्र
1. आपस्तब
2. गौतम
3 बौधायन
4. वशिष्ठ
5. विष्णु
6. हारीत

(ऐ) महाकाव्य
1. रामायण
2. महाभारत

(ओ) पुराण
1. अग्निपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. कूर्म ,,
3. गरुड ,,
4. नारद ,,
5. पद्म ,,
6. ब्रह्माड गीता प्रेस, गोरखपुर
7. ब्रह्मवैवर्त्त ,,
8. भविष्य ,,
9. भागवत ,,
10 मत्स्य ,,
11. मार्कंडेय ,,
12. लिङ्ग ,,
13. वराहपुराण ,,
14. वायु ,,
15. वामन ,,
16. विष्णु ,,
17. शिव ,,
18. स्कद

(औ) स्मृति
1. कात्यायन
2. देवल
3. नारद
4. पराशर
5. बृहस्पति
6. भरद्वाज
7. मनु
8. याज्ञवल्क्य

(अं) भाष्य
1. याज्ञवल्क्य पर अपरार्क का भाष्य
2. मनु पर कुल्लूक का भाष्य
3. पराशर पर माधव का भाष्य
4. मनु पर मेधातिथि का भाष्य
5. याज्ञवल्क्य पर विज्ञानेश्वर का भाष्य मिताक्षर

(अ) अन्य ग्रंथ
1. आचराग चूर्णि

2 आर्य मजुश्री मूलकल्प	8 सूत्त निपात
3 महाकाल सहिता	9 स्पद प्रदीपिका
4 देवी-सूक्त	10 सूत्र कृतग
5 कुलार्णव तत्र	11 सम्मोहन तत्र
6 गुह्य समाज	12 शिवसूत्र विमर्शिनी
7 प्रणोतिशिनी तत्र	13 खरतर पद्यावली

सदर्भ-ग्रथ

1 अपरार्क	याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य आनदाश्रम सस्कृत सीरीज, पूना, 1903 04
2 अत्रि स्मृति	धर्मशास्त्र सग्रह आनदाश्रम सस्कृत सीरीज, पूना, 1905
3 अमरसिंह	अमर कोष, क्षीरस्वामी टीका सहित, ओरिएटल बुक एर्जेसी, पूना
4 अनत देव	राजधर्म कौस्तुभ, गायकवाड ओरिएटल सीरीज, बडौदा, 1935
5 अग्निहोत्री प्रभुदयाल	पतजलि कालीन भारत, पटना 1963
6 अवस्थी रामाश्रय	खजुराहो की देव प्रतिमाए आगरा, 1967
7 अरिसिंह	सुकृत सकीर्तन, भावनगर 1917
8 आनदगिरी	शकर दिग्विजय, इडियन एटीक्वेरी, भाग 5 शकर दिग्विजय, तरक पचानन कलकत्ता 1868
9 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव	दिल्ली सल्तनत, आगरा 1955
10 अथर्ववेद	सम्पा० आर० रोथ एव डब्ल्यू० डी० व्हीटने, बबई, 1885 91
11 ऋग्वेद	सायण भाष्य सहित, 5 भाग, वैदिक सशोधन मडल, पूना, 1933 51
12 उदय प्रभा सूरि	सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, सम्पा० सी० डी० दलाल, गायकवाड, ओरिएटल सीरीज, न० 10
13 उदयचद्र मिश्र	भारतीय दर्शन, चौखबा, वाराणसी
14 उमाशकर शर्मा	सर्व दर्शन सग्रह (हिंदी अनुवाद), चौखबा, वाराणसी

15. ऐतरेय ब्राह्मण : त्रावणकोर विश्वविद्यालय, संस्कृत सीरीज, त्रिवेंद्रम
16 कमलाकर भट्ट : निर्णय सिंधु, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1935
17. कृष्ण यजुर्वेद : सम्पादक : काशीनाथ आगाशे, पूना, 1904
18. कल्हण : राजतरंगिणी, हिंदी अनुवाद : रामतेज शास्त्री पांडेय, काशी, 1960
अंग्रेजी अनुवाद आर० एस० पंडित, इलाहाबाद, 1935
19. कृष्ण मिश्र : प्रबोध चन्द्रोदय, चौखंबा, काशी
निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1904
20. कांतिचंद्र पांडे : शैव दर्शन बिंदु, चौखंबा
प्राचीन भारत का इतिहास (500-1200 ई० दक्षिण सहित) मेरठ, 1962
21. केशवचंद्र मिश्र : चंदेल और उनका राजत्व काल, नागरी प्रचारिणी, काशी
22. कात्यायन स्मृति : अनु : पी० वी० काणे, सम्पा० : नारायणचंद्र बंदोपाध्याय, कलकत्ता, 1917
23. कामंदक नीति सार : संपादक : आर० मित्रा, बिब्लियोथिक इंडिका, 1884
24. कालिदास : रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव, कालिदास ग्रंथावलि, विक्रम परिषद, काशी
25. कौटिलीय अर्थशास्त्र : हिंदी अनुवाद : उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925
26. गोपाल भट्ट : हरिभक्ति विलास, जीवस्वामी टीका सहित, मुर्शिदाबाद
27. गोपीनाथ : संस्कार रत्न माला, आनंदकम प्रेस
28. गोरखबानी : संपादक : डॉ० बरत्थवाल, हिंदी साहित्य समिति, प्रयाग
29 गौरीशंकर भट्ट : भारतीय संस्कृति — एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, दिल्ली
30 गौरीशंकर ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद
राजपूताने का इतिहास : भाग 1, अजमेर, 1936

31 गौतम धर्मसूत्र — हरदत्त की टीका सहित, आनदाश्रम सस्कृत सीरीज, 1910
32 चडेश्वर — गृहस्थ रत्नाकर, बिब्लियोथिका इडिका
कृत्य रत्नाकर "
राजनीति रत्नाकर, सपादक काशीप्रसाद जायसवाल, बिहार उडीसा रिसर्च सोसायटी, पटना 1936
33 चद्रभान पाडे — आध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास नेशनल, दिल्ली 1963
34 चतुरसेन शास्त्री — भारतीय सस्कृति का इतिहास, रस्तोगी, मेरठ 1958
35 चद्रशेखर भट्टाचार्य — शाक्त दर्शन
36 चर्यागीत पदावली — सेन सुकुमार, बर्दवान साहित्य सभा, बर्दवान, 1956
37 चर्यागीति कोष — सपादक पी० सी० बागची और शातिभिक्षु शास्त्री
38 चिंतामण वैद्य — मध्ययुगीन भारत, भाग 2 (मराठी) पूना, 1923
39 जल्हण — सूक्ति मुक्तावलि सपादक ई० कृष्णमाचार्य, गायकवाड ओरिएटल सीरीज न० 82
40 जवाहरलाल नेहरू — राष्ट्रपिता सस्ता साहित्य
41 जयसिंह सूरि — कुमार भूपाल चरित, सपादक शाति विजय गणि, बम्बई 1926
42 जयशकर मिश्र — ग्यारहवी सदी का भारत, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1968
43 जगदीशसिंह गहलोत — राजपूताने का इतिहास भाग 1, जोधपुर, 1937
44 जातक — हिंदी अनुवाद भदन्त आनद कौसल्यायन
45 जीमूतवाहन — दाय भाग, कलकत्ता, 1910
व्यवहार मातृका, कलकत्ता
काल विवेक बिब्लियोथिका इडिका, 1905
46 जिन मडन — कुमार पाल प्रतिबोध आत्मानद ग्रथमाला, 1910
47 दामोदर गुप्त — कुट्टनीमतम, हिंदी अनुवाद अत्रिदेव

विद्यालकार वाराणसी, 1961
48 देवाण भट्ट — स्मृति चद्रिका, सपादक एल० श्रीनिवासाचार्य 6 भाग, मैसूर, 1914 21
49 दोहा कोष — कलकत्ता सस्कृत सीरीज न० 25
50 दीनदयाल गुप्त — अष्ट छाप और वल्लभ सप्रदाय, प्रयाग
51 दिनकर, रामधारीसिंह — सस्कृति के चार अध्याय, दिल्ली 1956
52 धर्मशास्त्र सग्रह — सपादक जीवानद विद्यासागर, कलकत्ता, 1876
53 नारद स्मृति — कलकत्ता, 1885
54 नील कठ — दान मयूख, चौखबा
व्यवहार मयूख भडारकर ओरिएटल रिसर्च इस्टीटयूट पूना, 1926
55 पद्मनाभ — कान्हड दे प्रबध राजस्थान पुरातत्व ग्रथ माला
56 परमात्मा सरन — मध्य युगीन भारत, रणजीत, दिल्ली 1964
57 परशुराम चतुर्वेदी — वैष्णव धर्म, इलाहाबाद 1953
उत्तर भारत की सत परपरा, प्रयाग
58 परमेश्वरीलाल गुप्त — गुप्त साम्राज्य वाराणसी, 1970
59 पाणिनी — अष्टाध्यायी निर्णय सागर प्रेस, 1929
60 पी० सी० बागची — बौद्ध धर्म व साहित्य
61 बल्लाल — भोज प्रबध, चौखबा सस्कृत सीरीज, बबई, 1909
62 बाणभट्ट — हर्षचरित, चौखबा, वाराणसी
कादबरी, " "
63 बादरायण — ब्रह्मसूत्र, पाशुपत सूत्र
बी० एन० लूणिया — युगयुगीन धार, धार, 1964
65 बी० डी० शुक्ला — भारतीय सस्कृति का इतिहास, आगरा, 1959
66 बल्देव उपाध्याय — भागवत सप्रदाय, नागरी प्रचारिणी, काशी
भारतीय दर्शन
सस्कृत साहित्य का इतिहास
67 बाबू रामचद्र — अरब और भारत के सबध, इलाहाबाद
68 भवदेव भट्ट — प्रायश्चित प्रकरण, राजशाही 1927

69 भोज राज मार्तंड, भडारकर ओरिएटल रिसर्च, इस्टीट्यूट पूना
70 भक्तिचद्रिका सपादक गोपीनाथ कविराज
71 मनु स्मृति : मेधातिथि की टीका सहित, सपादक गगानाथ झा, कलकत्ता, निर्णय सागर प्रेस, बबई, 1946
72 मथुरालाल शर्मा भारतीय सस्कृति का विकास, शिवलाल, आगरा, 1957
73 एम० यमुनाचार्य : आळवार गळ
74 मुशीराम शर्मा भक्ति का विकास, चौखबा, वाराणसी, 1958, भक्तितरगिणी, चौखबा
75 महाभारत नीलकठ की टीका सहित, पूना, 1929-33
76 मेरुतुग प्रबध चितामणि, हिंदी अनु० डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सिंधी जैन सीरीज न० 1, 1933
77 यशपाल मोहराज पराजय गायकवाड ओरिएटल सीरीज न० 9
78 याज्ञवल्क्य स्मृति बबई, 1926
89 राजशेखर : कर्पूर मजरी, कलकत्ता, 1948
80 रामकृष्ण गोपाल भडारकर वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत (हिंदी अनुवाद) भारतीय विद्या, वाराणसी, 1967
81 राजशेखर कर्पूर मजरी, कलकत्ता, 1948
82 रतिभानुसिह नाहर प्राचीन भारत, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
83 राधाकुमुद मुकर्जी चद्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राजकमल, दिल्ली, 1962
84 रामशकर त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1968
85 राजबलि पाडे प्राचीन भारत, नदकिशोर, वाराणसी, 1962
86 रमेशचद्र मजूमदार एव अनत सदाशिव अल्तेकर वाकाटक-गुप्त युग, दिल्ली, 1968
87 रामकुमार राय वैदिक इडेक्स, मेडानल-कीथ का अनुवाद, वाराणसी, 1962
88 राहुल साकृत्यायन दोहा कोष
हिंदी काव्य धारा
89 रामचद्र शुक्ल • हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी

90 लक्ष्मीधर · कृत्यकल्पतरु, गायकवाड ओरिएटल सीरीज
ब्रह्मचारी काड ,,
दान काड ,,
गृहस्थ काड ,,
नियत काल कांड ,,
राजधर्म काड ,,
श्राद्ध काड ,,
मोक्ष काड ,,
व्यवहार काड ,,
तीर्थ विवेचन काड ,,
शुद्धि काड ,,
व्रत काड ,,

91. लेख पद्धति : गायकवाड ओरिएटल सीरीज

92. बल्लाल सेन दान सागर, बिब्लियोथिका इडिका, 1953

93 वासुदेवशरण अग्रवाल : पाणिनीकालीन भारत, चौखबा, वाराणसी
: कादबरी : एक सास्कृतिक अध्ययन ,,
: भारत सावित्री

94. वासुदेव उपाध्याय : पूर्व मध्य कालीन भारत, लीडर प्रेस, प्रयाग
गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 2 भाग, इलाहाबाद, 1939

95 वराह मिहिर : बृहत सहिता, वाराणसी

96 वात्स्यायन : कामसूत्र, चौखबा, वाराणसी

97. वाचस्पति गैरोला : कौटिल्य अर्थशास्त्र, चौखबा, वाराणसी

98. विमलचद्र पाडे : प्राचीन भारत का राजनैतिक-सास्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1968
प्राचीन भारत

99. वाल्मीकि : रामायण, चौखबा, वाराणसी

100 विज्ञानेश्वर : मिताक्षर, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, बबई

111. विश्वरूप : याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, त्रिवेंद्रम सस्कृत सीरीज

102. विष्णु धर्मोत्तर · वेंकटेश्वर प्रेस, बबई

103 व्यास स्मृति : धर्मशास्त्र सग्रह, भाग 2, कलकत्ता, 1676

104 शिव पुराण : पचानन तारकरत्न

105. शुक्ल यजुर्वेद : निर्णय सागर प्रेस, बबई, 1939

106. शुक नीति सार : मद्रास, 1882
107. श्री हर्ष : नैषध चरित, मोतीलाल बनारसीलाल
108. श्री गुह्य समाज तंत्र : गायकवाड ओरिएटल सीरीज, क्रमांक 53
109. सपूर्णानंद गणेश, हिंदू देव परिवार का विकास
110 सूर्यकांत · वैदिक कोष, बनारस
वैदिक देवशास्त्र (वैदिक मैथालाजी का अनु०) दिल्ली, 1961
111 साधन माला . गायक्वाड ओरिएटल सीरीज
112 सोमदेव कथासरित्सागर, हिंदी अनुवाद केदारनाथ शर्मा, विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, *1960*
113 मानसोल्लास (सोमेश्वर) गायक्वाड ओरिएटल सीरीज, 1939
114 स्मृति सदर्भ · पाच भागो मे स्मृतियो का सकलन, कलकत्ता, 1952
115. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका, बवई, 1944
116 हलायुध ब्राह्मण सर्वस्व, कलकत्ता, 1924
117 हाल सातवाहन गाथा सप्तशति, अनुवाद सदाशिव आत्मा-राम जोगलेकर, पूना
118 हेमचद्र : देशी नाममाला, भडारकर ओरिएटल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना, 1938
द्वयाश्रम, टीका सहित, बबई सस्कृत-प्राकृत सीरीज, 1925
कुमारपाल-चरित, पूना, 1926
लघु वराह नीति सार, अहमदाबाद, 1906
119 हेमाद्रि चतुर्वर्ग चितामणि
120 हेमचद्र रायचौधरी . प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1971
121. हिरण्मय हिंदी-कन्नड म भक्ति-आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, 1959
122 हीरालाल जैन . अपभ्रश भाषा और साहित्य
123 क्षेमेन्द्र : दशावतार चरित, निर्णय सागर प्रेस, बवई
समय मातृका
नीति कल्पतरु, भडारकर ओरिएटल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना

न्य सामग्री

1 वेदाक, गीता प्रेस, गोरखपुर
2 सतांक '
3 भारतीय सस्कृति अक "

ीनी विवरण

1 फाहियान — हिंदी अनुवाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा

अरबी-फारसी के हिंदी मे अनूदित ग्रथ

1 अल काजी नबी — असर-उल बिलाउद कुछ अशो का अनुवाद, एस० आर० शर्मा
भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास आगरा
अग्रेजी मे कुछ अश, डॉ० ईश्वरीप्रसाद, मेडीवल इडिया इलाहाबाद
2 अल-उत्बी — किताब उल-यामिनी, श्री एस० आर० शर्मा
भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास के कुछ अश
3 अल बिलादुरी — फतह उल-बुल्दान, मौलाना सैयद सुलेमान नदवी अरब और भारत के सबध हिंदुस्थान एकेडमी, इलाहाबाद, 1930
4 अल बीरूनी — तहकीक ए मालिल हिंद श्रीसतराम बी०ए०, 4 भागो मे
5 अल-बैहाकी — तारीख ए मसूरी, मौलाना सैयद सुलेमान नदवी, अरब और भारत के सबध, हिंदुस्थान एकेडमी, इलाहाबाद 1930
6 अल-मसूरी — मरूजज-ए जहब हिंदुस्थान एकेडमी, इलाहाबाद
7 इब्न खदीजा — किताब-उल मसालिब-उल ममालिक, हिंदुस्थान एकेडमी, इलाहाबाद
8 इब्न नदीम — किताब-उल फिहरिस्त "
9 इब्न-उल फकीह — किताब-उल-बुल्दान "
10 इब्न हौकल — सफरनामा "

11 मिनहाज-उस सिराज   तबकात-ए-नासिरी, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ
12 सुलेमान अबुजैद   : सिलसिल-तुत-तवारीख, हिंदुस्तान एकेडमी इलाहाबाद

सदर्भ ग्रंथ

1 Agarwal, V S —Matsya Puran—A Study, Varanası, 1963

2 Aıyar, C N K —Sankaracharya, Madras

3 Aıyangar, S K —Early Hıstory of Vaısnavısm ın South Indıa, London, 1920

4 Aıyangar, S Krıshnaswamı—Ancıent Indıa & South Indıan Hıstory, Poona, 1941.
Some Contrıbutıon of South Indıa to Indıan Culture, Calcutta, 1942
Jaınısm In South Indıa
Orıgın and Early Hıstory of Pallavas of Kanchı

5. Aıyangar, Srınıvas—Saıva Upanısads, Choukhamba, Tamıl Studıes, Madras, 1914

6 Aıyer, K V S —South Indıan Inscrıptıons, Madras, 1933

7. Allan, J —Catalogue of the Coıns of Ancıent Indıa, London, 1936

8 Altekar, A S —The Rastrakutas & Theır Tımes, Poona 1934

9 Bagchı, P C —Studıes ın Tantras, Calcutta, 1936.
Indıa and Chına
Dohakosa, Calcutta, 1938

10 Balasubramanıyam, S R —Early Chola Temples (A D 907 985), Orıent Longmans, 1971.

11. Banerjee, J N —The Development of Hındu Iconography, Calcutta, 1954
Puranıc & Tantrıc Relıgıon, Calcutta, 1966

12 Banerjı, R D —Hıstory of Orıssa

13. Barth, A —Relıgıons of Indıa, Eng Tr J Wood, London

14 Barua, B M — *Gaya & Bodh gaya*, 2 Vols , Calcutta, 1934

15 Barua, K L —*History of Assam, Shillong, 1933*

16 Barnett—Some Notes on History of Religion

17 Basak, R G.—History of North-Eastern India, Calcutta, 1934

18 Bapat, P V —2500 years of Budhism, Publication Division, Delhi, 1956

19 Beal—Budhists Records of the Western World, Trubner's Oriental Series, London

20 Bhandarkar, D R —Carmichael Lectures on Ancient India Calcutta, 1922

Ajivakas & Bhagvatas, Indian Antiquary, 1912

Vaishnavism, Saivaism & Minor Religious Systems, Varanasi, 1965

21 Bhattacharya, Benoytosh—The Indian Budhist Iconography, Calcutta, *1968*

An Introduction to Budhist Esoterism, Oxford, 1932

22 Bhargava, P L —*India in the Vedic Age*, Lucknow, *1956*

23 Bhatia, Pratipal—The Parmaras (*800-1305* A D), Delhi, 1970

24 Bhattasali, N K — *Iconography of Budhist & Brahmani*cal Sculptures in Dacca Museum, Dacca, 1929

25 Bhandarkar, R G —Early History of the Deccan, 3rd Ed Calcutta, 1928

26 Bhattacharya, B —Two Vajrayan works, Gaikwad Oriental Series Origin & Development of Vajrayan, I H Q 1927, Pages 737-746

27 Bhartiya Vidhya Bhavan Series—The Vedic Age

The Age of Imperial Unity

The Classical Age

The Age of Imperial Kanauj

The Struggle For Empire

28 Briffault,R --The Mothers, 2nd Ed , London, 1952

29 Briggs, John—Farishta The Rise of the Mohammadon Powers in India, Eng Tr , London, 1829

30 Brown, Percy—Indian Architecture—Budhists & Hindu 3rd Ed , Bombay, 1956

31 Bose, P N —Indian Teachers of Budhists Universities Madras 1923

32 Budha Prakash—Aspects of Indian History & Civiliza tion, Agra, 1965

33 Burgess, J —Indian Sects of Jains, London 1903 Archaeological Survey of Western India

34 Bulhar,G —Uber Die Indische Secte der Jainas, Eng Tr , The Indian Sects of Jainas by J Burgess, London, 1903

35 Chanda, R P —Indo Aryan Races, Rajshahi, 1916

Archaeology & The Vaisnav Tradition

36 Chakravarti, P K —Art of War in Ancient India

37 Chattopadhyaya Debiprasad—Lokayat, Delhi, 1968

38. Chattopadhyaya, Sudhakar—The Evolution of Hindu Sects, Delhi, 1970

39 Chatterjee, J C —Kashmir Saivism, Srinagar, 1914

40 Child, V G —The Aryans, London, 1926

41 Choudhary, R K —Vratyas In Ancient India, Choukhamba, Varanasi

42 Coomaraswami, A K —The History of the Indian & Indonesian Art, London, 1927

Budha & Gospel of Budhism London, 1928

43 Cowell, E B & Gough, A E —Sarva Darsan Samagrah, Eng Tra London, 1914

44 Cunnigham, Alexander—Ancient Geography of India, Calcutta

45 Dasgupta, S N —History of Indian Philosophy, 4 Vols Cambridge, 1955

46 Dasgupta, S B —Obscure Religious Cults, Calcutta, 1946 Introduction to Tantric Budhism, Calcutta, 1950

47 Dasgupta, N N —History of Budhism in Bengal

48 Das, Bhagvan—Krishna, A Study in the Theory of Avtar, Madras, 1929

49 Das, A C —*Rigvedic India*, Calcutta, 1931 Rigvedic Culture

50 De, N L —Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India, London, 1927.

51. Diwakar, R R —(Edited)—Bihar Through The Ages, Delhi, 1958

52 Dixit, S K —The Mother Goddess Poona, 1941

53 Dixit, R K —Chendalas and their Times, Gorakhpur

54 Dikshitar, V R R —Studies in Tamil Literature & History, Madras, 1936

55 Dhar S N —The Arab Conquest of Sindh, I H Q Vol XVI

56 Dubois Abbe, J A —Hindu Manners, Customs & Ceremonies, Oxford, 1947

57 Dutta, M N — Agni Puran, Choukhamba Varanasi

58 Ehrenfels, O R —Mother Right in India, Hydrabad, 1941

59 Elliot, C —Hinduism & Budhism, 3 Vols , London, 1921

60 Elliot, Sir Henry M —The History of India as told by its own Historians 8 Vols , London, 1867

61 Elphistone, Mount Stuart—The History of India—The Hindu and Muhammadan Periods with notes and additions by E B Cowell, 9th Ed , London, 1911

62 Farquhar, J N —An Outline of the Religious Literature of India, Oxford, 1920

63 Fergusson, J —History of India & Eastern Architecture, London, 1910

64 Fergusson, J —Tree and Serpent Worship, 2nd Ed, London, 1873

65 Fick, R —Die Sociale Gliederung im nordostlichen Indian Zu Budha's Zeit, Eng Trans The Social Organization in North East India in Budha's Time by S K Maitra, Calcutta, 1926

66 Finegan—Archaeology of World Religions

67 Fousboll—Cave Temples of India
Jataka, Vols I —IV

68 Gait E A —History of Assam, 2nd Ed, Calcutta, 1926

69 Ganguli, D C —History of the Parmara Dynasty, Dacca, 1953
The Eastern Chalukyas, Banaras 1937

70 Ghoshal U N —Studies in Indian History and Culture, Orient, Bombay, 1957

71 Ghure, G S —Rajput Architecture, Bombay, 1968
Caste & Class in India, New York 1950

72 Giffith, T H —Rigveda, 2 Vols, Choukhamba Varanasi
Hymns of the Atharveda, 2 Vols, Choukhamba
Hymns of the Rigveda, Choukhamba, Varanasi
Samveda, Choukhamba, Varanasi

73 Gokhale, B G —Ancient India, Asia, Bombay, 1956

74 Goldstucker, Theodore—Panini, Choukhamba, Varanasi

75 Gonda, J —Aspects of Early Vaisnavism, Utrecht, 1954.

76 Gopalan, R —History of the Pallavas of Kanchi, Madras, 1928

77 Gopinathrao, R A —Elements of Hindu Iconography, Madras, 1916

78 Goswami, K G —A Study of Vaisnavism, Calcutta, 1956

79 Goswami, B K —The Bhakti Cult in Ancient India, Calcutta, 1922

80 Govindacharya—The Divine Wisdom of Dravidian Saints

81 Grisvold, H D —Religion of Rigveda, London 1913

82 Guenther, H.V —The Tantric View of Life

83 Gupta, B A —Hindu Holidays and Ceremonials, Calcutta, 1916

84 Habib, Muhammad—Mahmud of Ghaznin, Bombay, 1927

85 Habibullah, A B M —Foundation of Muslim Rule in India, Lahore, 1945

86 Hamilton Buchanan—History of Eastern India, London, 1838

87 Havell, E B —Ancient & Medieval Architecture of India, London, 1915

88 Hazara, R C —Studies in the Puranic Records on Hindu Rites and Customs, Dacca, 1940

89 Hooper, J S M —Hymns of Alvars, Calcutta, 1929

90 Hopkins, E W —The Religions of India, Boston, 1895. Epic Mythology

91 Hugs—Origin of Brahmanism, Poona, 1863

92 Hunter, W W —The Indian Empire Trubner, London, 1882
The Annals of Rural Bengal

93 Iyengar, K R S —Musings of Basav—A Free Rendering

94 Iyer, C V Narayan—The Origin & Early History of Saivism in South India Madras, 1936

95 Ishwari Prasad—Medieval India, Allahabad, 1948

96 Jain, K C —Malwa Through the Ages, Motilal, Delhi, 1972

97 Jain J C—Life in Ancient India (As depicted in the Jain Canons) Bombay, 1947
98 Jaiswal, K P—Ancient Hindu Polity, Calcutta 1925
99 Jaiswal Suvira—Origin & Development of Vaisnavism, Munshiram, Delhi, 1967
100 Kane, P V—History of Dharmasastras, 5 Vols Poona, 1930 53
101 Karmarkar, A P—The Religions of India, Lonavala, 1950
102 Kaye, G R—History of Dharmasastra, Vol. I, Poona, 1930
103 Keith, A B—Religion & Philosophy of the Vedas & Upanishad, 2 Vols H O S, 1925
History of Sanskrit Literature, Oxford, 1928
Sanskrit Drama, Oxford 1924
The Glories of Magadha, Calcutta, 1927
104 Kingsbury & Phillips—Hymns of Tamil Saiva Saints, Calcutta, 1920
Appar Hymns—Eng Trans
Nana Sambandhar Hymns—Eng Trans
105 Kosambi, D D—An Introduction to the Study of Indian History, Bombay, 1956
106 Kono, Sten & Tuxen, Paul—Religions of India, Copenhagen, 1949
107 Krishnarao, B V—A History of the Early Dynasties of Andhra Desa Madras 1942
108 Krishnarao M B—The Gangas of Talkad, Madras, 1936
109 Kripalani, J B—Gandhi, His Life and Philosophy
110 Kuppuswami, A—Sri Bhagvatpada Sankaracharya, Choukhamba, Varanasi, 1972
111 Law, B C—Holy Places of India, Calcutta, 1940
The Tribes in Ancient India
Rivers of India

112 Law, N N—Studies in Indian History and Culture, London 1925
113 Luard and Lele—Parmars of Dhar & Malwa
114 Macdonell A A & Keith, A B—Vedic Index of Names & Subjects 2 Vols, London, 1912
115 Macdonell, A A—The Vedic Mythology, Strasburg, 1897
116 Madhok, Balraj—Indianisation S Chand, Delhi, 1970
117 MacCrindle—Ancient India as described by Megasthenes & Arrian, Calcutta, 1926
118 Mackay E J H—The Indus Civilization—London, 1935
119 Macnicol N—Indian Theism, London 1915
120 Majumdar A K—History of Chalukyas of Gujarat, Bombay, 1956
121 Majumdar R C—Outline of Ancient Indian History & Civilization Calcutta 1927
History of Bengal, 2 Vols, Dacca 1943
Hindu Colonies in the Far East, Calcutta 1944
122 *Majumdar, B—Guide to Sarnath*
123 Majumdar, B K—The Military System in Ancient India
124 Maxmuller, F—Six Systems of Indian Philosophy, London, 1889
125 Marshall, J—Mohenjo-daro and the Indus Civilization, 3 Vols London 1931
Monuments of Ancient India
Guide to Sanchi
126 Mehata, Ratilal—Pre Budhist India Bombay, 1939
127 Mitra, S K—The Early Rulers of Khajuraho, Calcutta, 1958
128 Misra, *S B—Hinduism, Choukhamba, Varanasi*
129 Modi, Pilloo—Zulfi—My Friend, Thomson, Delhi 1972
130 Monier W M—Religious Thoughts & Life in India, 4th Ed, London 1891

131 Mookarji, R K —The Fundamental Unity of India, Bhavan Bombay, 1955
The Hindu Civilization, 2 Vols , Bhavan Bombay, 1957
Local Self Government in Ancient India
Asok, Rajkamal Delhi, 1955
Men & Thoughts in Ancient India

132 Moraes, G M —The Kadamba Kula, Bombay, 1931

133 Mitra, R C —The Decline of Budhism in India, Visvabharti, 1954

134 Munshi, K M —The Imperial Gurjaras, Bombay, 1955
Somnath, The Shrine Eternal, Bombay, 1951
The Glory that was Gurjaradesa Bombay, 1951

135 Nandimath, S C —A Hand Book of Virsaivism, Dharwar, 1942

136 Narsimhacharya R —Epigraphia Carnatica
History of Kannad Language, Mysore, 1934

137 Nehru, Jawaharlal—Discovery of India, 4th Ed , Meridian, London, 1956

138 Niyogi, R —The History of the Gahadavala Dynasty, Calcutta, 1958

139 Nizami, K A —Some Aspects of Religion & Politics in India During the Thirteenth Century, Aligarh, 1961

140 Pande C K – Panini & His Astadhyayi, Choukhamba

141 Pande, Rajbali—Chandragupta II Vikramaditya, Choukhamba, Varanasi 1972

142 Pargiter, F E —Ancient Indian Historical Traditions Banaras, 1962
Dynasties of Kaliage

143 Pannikkar, K M —The *Survey of Indian History* Bombay, 1947

144 Pathak V.S —History of Saiva Cults in North India From Inscriptions (700-1200 A D) Varanasi, 1960

145 Payne, E A —The Saktas, 6th Ed , Calcutta, 1965

146 Perry, W J —The Origin of Magic and Religion, London, 1923

147 Pillai, S S —The Historical Sketch of Saivism, C H I Vol II, Pages 235 247

148 Pillai, K S —Metaphysics of Saiva Siddhanta System

149 Pillai, Nallaswami—Saint Appar, Madras, 1910
Siva Jnana Bodham, Madras, 1895
Studies in Saiva Siddhanta Madras 1911

150 Pillai, G S —Introduction & History of Saiva Siddhanta

151 Pillai, Sundaram—Some Mile Stones in Tamil Literature

152 Pillai, V K —The Tamils Eighteen Hundred Years Age Madras, 1904

153 Pillai, K N S —The Chronology of Early Tamils, Madras, 1932

154 Pope, G U —The Tiruvasagam, (Sacred Utterances), Oxford, 1900
Manikka vasahar

155 Prasad, H K —The Political & Socio Religious Condition of Bihar, Choukhamba

156 Prabhakar Budha—Some Aspects of Indian Culture on the eve of Muslim Invasion, Punjab, 1962
Studies in Indian History & Civilization, Agra, 1962

157 Puri, B N —India in the Time of Patanjali, Bhavan, Bombay, 1957
India as described by Early Greek Writers, Allahabad, 1939

158 Purani A B —Studies in Vedic Interpretation, Chou khamba

159 Pusalkar, A D —Studies in the Epics and Puranas of India, Bombay, 1955

160 Radhakrishna, S —Indian Philosophy, London, 1927
The Hindu View of Life, Unwin, London, 1960

161 Raichaudhary, H C—The Early History of Vaisnav Sects, 2nd Ed, Calcutta, 1936

Studies in Indian Antiquities, Calcutta, 1932

162 Ralinson, H G—Intercourse between India and the Western World, Cambridge, 1916

163 Ramgopal—India of Vedic Kalpasutras, Delhi, 1954

164 Rangacharya, B—Pre Muslim India, 2 Vols, Madras, 1937

165 Rao, T A G—Elements of Hindu Iconography, 2 Vols, Madras, 1914 16

History of Shri Vaisnavas, Madras, 1923

166 Rao, V N—Ancient Hindu Dynasties, 2 *Vols*, Hindi, Bombay, 1920

167 Rao, B V K—A History of the Early Dynasties of Andhra Desa, Madras, 1942

168 Rastogi, N P—Inscriptions of Asoka, Choukhamba, Varanasi, 1972

169 Ray, J C—Ancient Indian Life, Calcutta, 1948

170 Ray, H C—Dynastic History of North India, 2 Vols, Calcutta, 1931-36

171 Renou, Louis—*Religions of Ancient India*

The Civilization of Ancient India, Trans P. Spratt, Calcutta, 1954

172 Reynolds, James—Kitab i-Yamini, A Translation of Utbi

173 Rice, E P—A *History of Kanarese Literature*, 2nd Ed, Calcutta, 1918

174 Sastri, K A N—A History of South India, Oxford, 1966

Foreign Notices of South India, Madras, 1939

Development of *Religion in South India*, Orient Long mans, 1963

The Cholas, 2 Vols, Madras 1937

The Pandyan Kingdom, London, 1929

175 Sastri H Krishna—South Indian Images of Gods & Goddesses, Madras, 1916

176 Sachau E C – Alberuni's India, London 1910

177 Sarkar, D C—The Successors of the Satvahanas Calcutta, 1939

Early Pallavas, Lahore, 1935

178 Saletore B A—The Wild Tribes in Indian History, Lahore 1935

Mediaeval Jainism Bombay, 1938

179 Sahu, N K —(Ed) History of Orissa Calcutta, 1956

180 Seal Rajendra Nath –Comparative Study in Vaisnavism & Christianity, Calcutta 1904

181 Sen Sukumar,—Old Bengali Text of the Charya giti kosha Indian Linguistics Calcutta, 1948

182. Sewell Robert – Archaeological Survey of South India 2 Vols Madras, 1884

183 Sankaranand Swami—Rigvedic Culture of the Pre historic Indus 2 Vols, Calcutta 1943-44

184 Sastri S S—Proto Indic Religion, Bangalore 1942

185 Sahu N K — (Ed) History of Orissa, Calcutta, 1956

186 Sengupta, Anima—Critical Study of the Philosophy of Ramanuj Choukhamba

187 Schrader, F O –Introduction to the Pancharatra and the Ahirbudhnya Samhita, Adyar, 1916

188 Shivapada Sundaram S—The Shaiva School of Hinduism, London, 1934

189 Shahidullah, M.—Buddhist Mystic Songs

190 Stevenson, Mrs S—The Heart of Jainism, Oxford 1915

191 Subramanian, K R—Origin of Saivaism & Its History in the Tamil Land, Madras, 1928

192 Slater, Gilbert—The Dravidian Elements in Indian Culture, London, 1924

193 Sukul, L K —A Study of Hindu Art and Architecture, Choukhamba, Varanasi, 1971

194 Sarkar, B K —Sukra Niti, Allahabad, 1914

195 Surya Kant—Kshemendra A Study, Poona, 1954

196 Takakusu, J —Essentials of Buddhist Philosophy, Honolulu, 1947

197 Tarachand—Influence of Islam on Indian Culture, Allahabad, 1946

198 Thomas P.—The Hindu Religion, Customs & Manners, Taraporevala

199 Thurston, Edgar—Castes and Tribes of South India, 7 Vols Madras, 1907

200 Thakur, Upendra—The Hunas in India, Choukhamba, Varanasi

201 Tod, Col James—Annals & Antiquities of Rajasthan

202 Tripathi, R S —History of Kanauj
History of Ancient India, Delhi

203 Upadhyaya, B S —India in Kalidas, Allahabad, 1947

204 Upadhayaya, Vasudeva—Socio Religious Condition of North India, Varanasi, 1964

205 Vaidya, C V —Mahabharat, A Criticism, Bombay, 1905

206 Vedic Hymns, Sacred Books of the East, Oxford, 1891

207 Vaidya, C V.—History of Mediaeval India, Vol II & III, Poona, 1926

208 Vaidya, C V —Epic India, Bombay, 1907

209 Venkataramanayya, N —Rudra Siva, Madras, 1941

210 Venkateswara, S V —Indian Culture Through the Ages, 2 Vols, London, 1932

211 Vidyarathi, M L —India's Culture Through the Ages, Kanpur, 1952

212 Venkataramanayya, N —The Eastern Chalukyas of Vengi, Madras, 1950

213 Waddell, L A —The Makers of Civilization in Race and History, London, 1929

214 Waddell, L A —Buddhism of Tibet, London, 1895

215 William, Monier—Hinduism, London, 1877

216 Winternitz, M —History of Indian Literature, Vol I, Calcutta, 1927

217 Wood, Rev J —Religions of India, Choukhamba, Varanasi

218 Woodroffe, S J —Sakti & Saktas, Madras, 1965 (6th Ed)

Introduction to Tantra Sastra, Madras, 1952

Tantra Tattav (Eng Trans)

Hymns of the Goddess

219 Whitney, W D —Atharva-Veda Pratisakhya, Chou khamba, 1971

220 Wright, Daniel—History of Nepal, Cambridge, 1977

221 Wall, O A —Sex and Sex Worship in the World, Inter India Publications, WZ-1086, Bassai Darapur, Bali Nagar, New Delhi 110015

Translations

1 Fa-Hien—Trans by H A Giles, The Travels of Fa hien Or Records of Buddhistic Kingdoms, Cambridge, 1923

2 Fa Hien—Trans by J H Legge Records of the Buddhistic Kingdoms, being an account of the Chinese monk Fa Hien's Travels, Oxford, 1886

3 I-tsing—Trans by J A Takakusu, Record of the Buddhistic Religion practised in India and Malaya Archipelago, by Itsing, Oxford, 1896.

4 Hiuen Tsiang—Trans by T Watters, On Yuan Chwang's Travels in India, Ed by T W Rhys Davids & S W Bushell 2 Vols , London, 1904 5

5 Taranath—B N Dutta—Mystic Tales of Lama Taranath, Calcutta, 1944

6 Tarikh i-Yamini of Al-Utbi, Trans by J Reynolds, London

7 Al Beruni's India, Trans by Dr Edward

8 Tantra Tattav, Trans by S J Woodroffe

9 Maha Nirvan Tantra, Trans by S J Woodroffe

10 Mahamaya, S J Woodroffe

11 Kularnava Tantra, Trans by S J Woodroffe

12 Principles of Tantra, Madras, 1952

Articles

1 Barua, B M —Trends in Ancient History, Calcutta Review, Calcutta, February, 1946

2 Chatterjee, S K —Dravidian Origin & Beginnings of the Indian Civilization, Modern Review, December, 1924

3 Krishna Deva—Ancient India, Bulletin of Archaeological Survey of India

4 Piggott, S —The Chronology of Pre historic North West India, Ancient India, No 1

5 Pusalkar, A D —Mohenjo daro & Rigveda Bharat Kaumudi, Part II

6 Sarup, L —The Rigveda & Mohenjo daro, Indian Culture, Part IV.

7 Stein, M A —On some River Names in the Rigveda, JRAS, 1917

8 Thomas, F W.—Mohenjo daro and the Indus Civilization, JRAS, 1932

General

1 Archaeological Survey of India Reports, 1902-14
2 Architecture of Western India 2 Vols , London 1905
3 Cambridge History of India, *Vol I, S Chand, Delhi,* 1955
4 Cultural Heritage of *India, Vols II & III Calcutta, 1953*
5 Epigraphica Indica, 34 Vols, Calcutta, Delhi
6 Epigraphica Carnatica, Bangalore
7 Encyclopaedia of Religion & Ethics, Edited by J Hastings Vols I XII

Journals & Periodicals

1 Journals of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta
2. Journal of Bihar & Orissa Research Society, Patna
3 Journal of Bombay Branch of Royal Asiatic Society, Bombay
4 Journals of Indian History Congress
5. Journals of Numismatic Society of India, Bombay & Banaras
6 Journals of Literature & Science Madras
7 Journal of University of Bombay Bombay
8 Journals of the Oriental Institute, Baroda
9 Journal of the Oriental Research, Madras
10 Journal of the Quarterly Review of Historical studies Calcutta
11 Journal of the Banaras Hindu University
12 Journal of the Orissa Historical Research Society
13 Journal of the Royal Asiatic Society
14 Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland
15 Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.
16 Asiatic Research
17 Bhartiya Vidya
18 Bharat Kaumudi
19 Harijan
20 Indian Culture
21 Islamic Culture,
22 Indian Historical